(भगवान महावीर 26 सौ वॉ जन्म-जयन्ती वर्ष)

तात्त्विक और सदाचार प्रेरक सशक्त, किन्तु
सरल एव सुबोध कथानक

संस्कार

लेखक

पण्डित रतनचन्द भारिल्ल

शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम॰ए॰, बी॰एड॰

प्राचार्य, श्री टोडरमल दिग जैन सिद्धान्त महाविद्यालय

ए-4 बापूनगर, जयपुर-302015

प्रकाशक

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-4, बापूनगर, जयपुर-302015

फोन (0141) 515458, 515581, फैक्स 517977

हिन्दी

प्रथम सात संस्करण	40 हजार 400
(1 जनवरी, 1991 से अद्यतन)	
अष्टम् संस्करण	5 हजार
(27 मई 2001 श्रुत पचमी)	
जैनपथप्रदर्शक में धारावाहिक प्रकाशित	3 हजार

मराठी

प्रथम एव द्वितीय संस्करण	5 हजार 100

गुजराती

प्रथम संस्करण	3 हजार
कुल	56 हजार 500

मूल्य अठारह रुपये (पक्की जिल्द)

एक प्रेरक पत्र

बड़ी प्रेरणा मिली

प्रिय शुद्धात्मप्रकाशजी भारिल्ल,

आप शुद्धात्मा का प्रकाश फैलाने मे सफल हों – यह मगल कामना है। श्रद्धेय पण्डित श्री रतनचन्दजी भारिल्ल साहिब को प्रणाम कहावे। उनके द्वारा लिखित 'इन भावों का फल क्या होगा' पढ़कर बड़ी प्रेरणा मिली। उनके लिखे तीनो उपन्यास अत्यन्त प्रभावी रहे हैं। इसी तरह वे और साहित्य सृजन कर जिनवाणी की सेवा करें – यह मगल कामना है।

सादर – शुभाकाक्षी

निहालचद अजमेरा

निहाल मेडीकल स्टोर

भीलवाड़ा (राज॰)

दीपावली दिनाक ११११९६

मुद्रक

जयपुर प्रिन्टर्स प्रा॰ लि॰

एम॰ आई॰ रोड, जयपुर

प्रकाशकीय

आजकल अन्य गद्य-पद्य साहित्य की अपेक्षा कथा-कहानी के रूप मे लिखा गया साहित्य अधिक लोकप्रिय हो रहा है। बालवर्ग और युवावर्ग तो पाठ्यपुस्तको के सिवाय शेष समय मे कथा-कहानियाँ और उपन्यास ही सबसे अधिक पढता है।

आजकल ही क्या पहले भी यही स्थिति रही होगी, तभी तो हमारे पूर्वाचार्यो ने भी इस जनरुचि को ध्यान मे रखकर प्रथमानुयोग के रूप मे कथासाहित्य का सृजन भी काफी मात्रा मे किया है। सस्कृत साहित्य मे भी पचतत्र जैसी प्रसिद्ध कहानियाँ इसी लोकरुचि का परिणाम है।

इस कथाशैली के माध्यम से कठिन से कठिन तात्त्विक सिद्धान्तो को भी सरलता से पाठको तक पहुँचाया जा सकता है। अत यदि हम अपने नन्हे-मुन्ने बालक-बालिकाओ तथा युवापीढी को कुछ तत्त्वज्ञान और सदाचार के सस्कार देना चाहते हैं, उनमे धार्मिक रुचि व नैतिक जागरण उत्पन्न करना चाहते है तो उनकी पसन्द को ध्यान मे रखकर उनकी भाषा-शैली मे भी जैनसाहित्य का निर्माण करना/कराना होगा। तभी वे तत्त्वज्ञान से व जैनाचार से परिचित हो सकेगे।

अब बडे-बडे ग्रथ और पुराण पढने का न तो उनके पास समय है और न वैसी रुचि है, इसकारण युगपरिवर्तन के साथ जिनवाणी के मूल भावो को सुरक्षित रखते हुए वर्तमान कथासाहित्य की शैली मे भी जैनसिद्धान्त और सदाचार की बातो को लिखने की जरूरत है।

यदि रामायण और महाभारत जैसे सस्कृत के बडे-बडे ग्रथो और पुराणो को टीवी सीरियलो के रूप मे परिवर्तित नही किया गया होता तो वे जन-साधारण मे इतने लोकप्रिय नहीं हो पाते।

अत क्यो न जैनसाहित्य की विषयवस्तु को भी ऐसे ही जनप्रिय बनाने का प्रयत्न किया जाए ? यदि हम भी बडे-बडे पुराणों के

कथानको को आधुनिक कथा-कहानियो और उपन्यासो की शैली मे प्रस्तुत कर सके तो हम जिनवाणी का अधिक प्रचार-प्रसार कर सकेगे।

डॉ॰ हुकमचन्द भारिल्ल द्वारा लिखित 'सत्य की खोज' उपन्यास और 'आप कुछ भी कहो' कहानी सग्रह इस दिशा मे सफल सिद्ध हुए हैं।

प्रस्तुत 'सस्कार' नामक कथानक के माध्यम से पण्डित श्री रतनचन्दजी भारिल्ल का भी इस दिशा मे किया गया यह एक सफल प्रयोग है। यद्यपि इसकी कथावस्तु मे पौराणिक आधार नही लिया गया है, इसकी विषयवस्तु पूर्ण स्वतत्र व मौलिक है, पर इसके अधिकाश अध्यायो मे जैनदर्शन का कोई न कोई सिद्धान्त और सदाचार प्रेरक प्रसग तो आया ही है।

इसमे धार्मिक सस्कारो के लाभ और कुसस्कारो की हानि को तो बहुत ही प्रभावक ढग से चित्रित किया गया है तथा उनके यथास्थान समाधान भी सुझाये है।

दुराचार और पापाचार के दुष्परिणामो का चित्रण करते हुए उनसे बचने का भी मार्गदर्शन दिया है।

सतान के बिगडने मे माता-पिता की आवश्यकता से अधिक सावधानी और जरूरत से ज्यादा लापरवाही दोनो का ही समान हाथ होता है। इसमे किसप्रकार के सतुलन की जरूरत है ? – इस बात को बहुत अच्छे ढग से प्रस्तुत किया गया है। दहेज के स्वरूप और विकृतियो पर भी मौलिक ढग से अच्छा प्रकाश डाला है।

इसप्रकार हम देखते है कि इसमे वर्तमान मे प्रचलित अधिकाश समस्याओ को किसी न किसी रूप मे पात्रो के माध्यम से बातो ही बातो मे समाधान सहित प्रस्तुत करने का उत्तम प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक की सबसे बडी विशेषता यह है कि इसमे साप्रदायिक सद्भाव को पूरी तरह सुरक्षित रखते हुए जैनाचार और तत्त्वविचार को बहुत ही सशक्त भाषा मे प्रस्तुत किया गया है। इसकारण यह कृति जैन-अजैन सभी सप्रदायो के लिए समान रूप से पठनीय एव सग्रहणीय बन गई है।

जब मैंने इसकी कई किस्तो को क्रमश जैनपथप्रदर्शक मे पढा तो मेरी भावना हुई कि क्यों न इसे पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया जाए ?

क्योकि किस्तो में पढने मे वह आनन्द नहीं आता जो एक साथ

धाराप्रवाह पढने में आता है।

जो भी इसे पढता है, वह अपने इष्ट-मित्रों व बधु-बान्धवों को भी इसे पढने की प्रेरणा दिए बिना नहीं रहता। यही कारण है कि लेखक की यह कृति भी पूर्व मे प्रकाशित 'णमोकार महामत्र' और 'जिनपूजन रहस्य' की तरह ही जनप्रिय हो रही है।

अबतक इस कृति के हिन्दी मे सात, मराठी मे दो एव गुजराती मे भी एक सस्करण प्रकाशित हो चुका है। — **नेमीचन्द पाटनी**

दि॰ 1 जनवरी 1991 महामत्री – पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर

अष्टम् सस्करण

हमे कल्पना भी नही थी कि इस कृति को इतनी जल्दी-जल्दी पुन-पुन प्रकाशित करना पडेगा। आपको यह जानकर सुखद आश्चर्य होगा कि इसका 5 हजार 2 सौ प्रतियो का प्रथम सस्करण दो-तीन माह की अल्प अवधि मे ही समाप्त हो गया था। द्वितीय सस्करण की 5 हजार 2 सौ प्रतियाँ भी 16 माह मे ही हाथो-हाथ उठ गईं। इस कारण तृतीय सस्करण 10 हजार प्रतियो का प्रकाशित कराया गया, वह भी दो वर्ष मे समाप्त हो गया। फरवरी, 1995 मे तथा दिसम्बर, 1996 मे प्रकाशित 5-5 हजार प्रतियो का चतुर्थ, पचम, छठवाँ, सातवाँ सस्करण पक्की जिल्द मे प्रकाशित किया गया। ये तीनो सस्करण भी 18-18 माह में समाप्त हो गये।

पाँच हजार प्रतियो का प्रस्तुत आठवाँ सस्करण आपके हाथो मे प्रस्तुत करते हुए हम गौरवान्वित है। इनके सिवाय इस लोकप्रिय कृति के मराठी मे दो एव गुजराती का एक सस्करण छप चुका है।

पाठको, विद्वानो, समीक्षको एव पत्र-पत्रिकाओ ने इस कृति की भूरि-भूरि प्रशसा की है। जन-सामान्य को पढने की प्रेरणा के लिए कतिपय महत्त्वपूर्ण अभिमत पुस्तक के अन्त मे प्रकाशित हैं।

कृति की उत्कृष्टता व लोकप्रियता का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है। इस सफलता के लिए लेखक को हार्दिक बधाई।

— **नेमीचन्द पाटनी**

२७ मई श्रुतपचमी} महामत्री, पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

जयपुर (राज.)

एक प्रेरक पत्र

Dr. Vishnu Saxena
GENERAL PHYSICIAN

DAYAL CLINIC TAHSIL ROAD
SIKANDRA RAO (ALIGARH) 204215
STD CODE 05725 PHONE 44380

श्रद्धेयास्पद
चरणवन्दन।

मेरे 'चरणवन्दन' लिखने पर आप अवश्य विस्मित होंगे। लेकिन आप मेरे लिये सर्वथा वन्दनीय इसलिये हैं कि एक तो आप मेरी पिता की आयु के हैं, दूसरे योग्यता मे भी मुझ नगण्य से कई गुना अधिक हैं।

शायद आपको ध्यान हो मेरी आपकी भेंट गतवर्ष मेरठ मे शाकाहार मेले में आयोजित कविसम्मेलन मंच पर हुयी थी। मैं भी एक कवि के रूप में बैठा था, तब आपने हम सभी कवियो को अपनी लिखी हुयी कुछ पुस्तकें भेंट की थी।

उन पुस्तको को लाकर मैने अपनी लाइब्रेरी मे सजा दिया। सोचा कभी फुरसत होगी तो पढूँगा। कवि सम्मेलनीय तथा चिकित्सकीय व्यस्तताओ मे वर्ष भर उलझा रहा, बरसात मे मैने आपकी उन किताबो का अध्ययन किया। एक तो अभी भी बढ़ रहा हूँ।

पुस्तके क्या है ! ये तो ज्ञान का सहज भडार है। मैं तो जैनदर्शन से पहले से भी प्रभावित था। आपकी पुस्तके पढने के उपरान्त तो यह आस्था और अधिक बलवती हो गयी है। सभी पुस्तके अत्यधिक सरल भाषा मे लिखी गयी हैं। जो जनसामान्य को भी सस्कारित करती हैं। जैन साहित्य के लिये आपकी ये पुस्तकें एक अनमोल निधि है। मै कायस्थ कुल में पैदा अवश्य हुआ हूँ, लेकिन आरम्भ से ही कुछ ऐसा प्रभाव रहा कि कोई व्यसन पास नहीं आ सका।

आपके इस सद्‌लेखन के लिये, आपको बधाई। 'संस्कार', 'विदाई की बेला' बहुत ही प्रेरणादायी हैं। आदरणीय 'हुकमचंद भारिल्लजी' की 'आप कुछ भी कहो' ने भी पूरे परिवार को झकझोर दिया। उन्हे भी मेरी बधाई प्रेषित कर दें।

आभार, शुभम् — आपका ही .

आशा है, सानन्द होंगे।

२४.८ ९६ — डॉ. विष्णु सक्सेना

प्रति,
विद्वत्‌वरेण्य पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल
प्राचार्य, श्री टोडरमल दि जैन महा. विद्यालय, जयपुर

अन्तर्भावना

कथा-साहित्य साहित्य-क्षेत्र की सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। सत्य और तथ्य को जन-जन तक पहुँचाने का इससे अधिक सशक्त और सुलभ माध्यम अभी तक कोई दूसरा विकसित नहीं हो सका है।

सत्साहित्य का निर्माण परमसत्य के उद्घाटन के लिए किया जाने वाला महान कार्य है, अतः इसका पठन-पाठन भी परमसत्य की उपलब्धि के लिए गभीरता से किया जाना चाहिए, पर आज इसे मात्र मनोरंजन की वस्तु बना लिया गया है।

इसप्रकार का दुरुपयोग कथा-साहित्य में सर्वाधिक हुआ है। साहित्य की सर्वाधिक प्रभावशाली एव शक्ति-सम्पन्न यह विधा आज लोगों का मनोरंजन करने मात्र में उलझकर रह गई है, - इससे बड़ा दुर्भाग्य साहित्य का व समाज का और क्या हो सकता है ?

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है, पर यह नहीं भूलना चाहिए कि साहित्य मात्र दर्पण नही, दीपक भी है, मार्गदर्शक भी है, प्रेरक भी होता है। जो साहित्य प्रकाश न बिखेरे, मार्गदर्शन न करे, सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा न दे, मात्र वर्तमान समाज का कुत्सित चित्र प्रस्तुत करे या मनोरंजन तक सीमित रहे, वह साहित्य साहित्य नहीं, साहित्य के नाम पर कलंक है।

जिसप्रकार अणुशक्ति का सदुपयोग भी हो सकता है और दुरुपयोग भी, उसके सदुपयोग से यदि हम समृद्धि के शिखर पर पहुँच सकते हैं तो दुरुपयोग से सर्वविनाश भी संभव है। इसप्रकार साहित्य की इस सशक्त विधा के सदुपयोग से यदि हम परम सत्य को जन-जन तक पहुँचा सकते हैं तो दुरुपयोग से अनजान जनता को चमत्कारों के घटाटोप में भी उलझा सकते हैं, मंत्र-तंत्रों के चक्कर में भी फंसा सकते हैं; कुछ नहीं तो मनोरंजन के नाम पर उनके इस महत्त्वपूर्ण मानव-जीवन के अमूल्य क्षणों को यों ही बरबाद तो कर ही सकते हैं।

मध्ययुग में जैनकथा साहित्य में भी इसप्रकार की प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं, जिनमें चमत्कारो को प्रोत्साहित किया गया है, शिथिलाचार के विरुद्ध आवाज उठाने वालों को डराया-धमकाया गया है, मंत्रों-तंत्रों के घटाटोप में उलझाने का प्रयास किया गया है। प्रत्येक कथा की लगभग एक ही थीम पाई जाती है कि जिसने किसी शिथिलाचारी की अवहेलना की, वह अनेकों बार नरक में गया, कूकर-सूकर हुआ; अन्ततोगत्वा जब वह किसी शिथिलाचारी की शरण में आया, तभी इस दुष्चक्र से बच पाया।

यदि उक्त साहित्य की वीतरागी जैन तत्त्वज्ञान की कसौटी पर कसकर देखें तो उसे जैनसाहित्य कहना भी संभव नहीं है। मेरी इस बात को जैन पुराण-साहित्य के संदर्भ में नहीं समझना चाहिए। मैं तो उस साहित्य की बात कह रहा हूँ, जो कथा साहित्य मध्ययुगीन शिथिलाचारियों द्वारा रचा गया है। एक तो उन्होने काल्पनिक कथाएँ गढ़ी हैं, दूसरे पुराण साहित्य के सदर्भों को अपने मनोनुकूल तोड़-मरोडकर प्रस्तुत किया गया है तथा मिथ्यात्व के पोषक निष्कर्षों को निकाला गया है।

ऐसी स्थिति में कुछ इसप्रकार के कथा-साहित्य की महत्ती आवश्यकता है, जो आधुनिक संदर्भ में उपयोगी हो और जैनतत्त्वज्ञान को सरल व सुबोध भाषा में सुयुक्ति प्रस्तुत करता हो, जिससे आज की पीढी प्रभावित हो सके और जैनतत्त्वज्ञान को सीख सके, जैनतत्त्वज्ञान सीखने के लिए रुचिवन्त हो सके।

उक्त दिशा में कुछ इक्के-दुक्के प्रयास इन दिनों में हुए हैं। उनका लेखा-जोखा करना यहाँ न तो संभव ही है और न आवश्यक, जब उनकी सख्या इस योग्य हो जाएगी तो इतिहासकार उसकी समीक्षा करेंगे ही।

पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल द्वारा लिखित यह कृति भी उसी दिशा मे किया गया एक सत्प्रयास है, जो निश्चितरूप से समाज को एक दिशा-निर्देश देगा।

'संस्कार' नामक इस कृति में सशक्त रूप से यह कहने का प्रयास किया गया है कि संस्कार-विहीन पीढ़ी स्वयं तो संकटग्रस्त है ही, परिवार और समाज के लिए भी घातक सिद्ध हो रही है, अतः वीतरागी तत्त्वज्ञान और संस्कारी समाज की सुरक्षा के लिए भावी पीढ़ी को सुसंस्कार देने की महत्ती आवश्यकता है।

यह कहानी किसी एक गाँव की नहीं है, गाँव-गाँव की कहानी है। भारत के प्रत्येक उपनगर मे ज्ञान, विज्ञान और सुदर्शन चाहे न मिलें, पर सजू, राजू, अंजू और अन्नू तो मिल ही जाएंगे। यदि इस कृति से प्रेरणा पाकर दस-बीस परिवार ही कुछ सीख सकें, सन्मार्ग पर आ सकें; तो लेखक का श्रम सार्थक हो जाएगा।

मैं तो यह चाहता हूँ कि जिनमें लेखन शक्ति है, वे इसप्रकार का साहित्य निर्माण करें, जिनमें इसप्रकार की शक्ति नहीं है, वे इसप्रकार के साहित्य को जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास करें, क्योंकि जितनी आवश्यकता इसप्रकार के साहित्य निर्माण की है, उतनी ही आवश्यक' इसे जन-जन तक पहुँचाने की भी है। इसका वास्तविक लाभ तो तभी होगा, जब यह जन-जन तक पहुँचेगा। एतदर्थ सभी आत्मार्थीजन अपनी-अपनी योग्यतानुसार इस भागीरथ प्रयास में जुटें। जब हम सब अपनी-अपनी योग्यता, शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार इस काम में सक्रिय होंगे, तभी संस्कार-विहीन पीढ़ी को संस्कारित करने का यह महान कार्य कुछ अंशों में सम्पन्न हो सकेगा।

किसी भी कथा कृति को कथासाहित्य की कसौटी पर कसना तो समीक्षकों का कार्य है, पर मैं तो इसप्रकार के साहित्य की उपयोगिता और आवश्यकता को गहराई से अनुभव कर रहा हूँ, अतः यही प्रेरणा देना चाहता हूँ कि इसप्रकार का साहित्य अधिक से अधिक लिखा जाए और अधिक से अधिक जन-जन तक पहुँचे।

१८-१२-१९९० - डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

प्रस्तुत ग्रन्थ की कीमत कम करनेवाले दातारों की सूची

1	श्री शिवरतन विमलचन्द सुशीलकुमारजी जैन, राधोगढ	3001 00
2	श्री हीरालाल माणकचन्दजी पाटोदी, इन्दौर	3001 00
3	श्री हरीशचन्द हरलालजी जैन, अहमदाबाद	1500 00
4	श्री राजेन्द्रकुमारजी धनेडा, उदयपुर	1101 00
5	डॉ झामनदासजी मेहता, उदयपुर	1101 00
6	श्री गोकुलचन्द कोमलचन्दजी जैन, राधोगढ	1051 00
7	श्रीमती स्नेहलता शान्तिलालजी चौधरी, भीलवाडा	1001 00
8	डॉ अरविन्द दोशी, मुम्बई	1000 00
9	श्री पदमचन्दजी सेठी, कतरासगढ	1000 00
10	श्री लक्ष्मीचन्दजी भोरावत, उदयपुर	1000 00
11	श्री कन्हैयालालजी सिघवी, उदयपुर	1000 00
12	श्रीमती शान्तिदेवी मिट्ठालालजी जैन, भिण्ड	501 00
13	श्रीमती सुषमा जैन ध प श्री श्यामजी जैन, भिण्ड	501 00
14	श्री मेघराजजी जैन कोठारी, पाडिचेरी	501 00
15	श्री प्रमोदकुमारजी चौधरी, राधोगढ	501 00
16	श्री चम्पालाल सटरूमलजी जैन, राधोगढ	501 00
17	श्री फूलचन्द सन्तोषकुमारजी जैन, राधोगढ	501 00
18	श्री शीतलचन्दजी कोठारी, राधोगढ	501 00
19	श्री प्रकाशचन्दजी जैन, राधोगढ	501 00
20	श्री दिग जैन महिला मण्डल, बापूनगर, जयपुर	501 00
21	श्रीमती ललितादेवी पाटनी, जयपुर	501 00
22	श्री नेमीचन्दजी पहाडिया, पीसागन	501 00
23	श्रीमती सरोजदेवी कटारिया, जयपुर	501 00
24	श्री कन्हैयालाल मिट्ठालालजी सिघवी, उदयपुर	501 00
25	श्रीमती चौसरबाई कन्हैयालालजी जैन, उदयपुर	501 00
26	श्री प्यारेलालजी बोहरा, उदयपुर	501 00
27	श्री मदनलालजी लुहाडिया, उदयपुर	501 00
28	श्रीमती शान्तिदेवी ध प श्री शान्तिलालजी भादावत उदयपुर	501 00
29	श्री थावरचन्दजी दमावत, उदयपुर	501 00
30	श्री भगवतीलालजी जसिगोत, उदयपुर	501 00
31	श्री सुमतिलालजी कठालिया, उदयपुर	501 00
32	श्रीमती श्रीकान्ताबाई ध प श्री पूनमचन्दजी छाबडा इन्दौर	301 00
33	स्व ऋषभकुमार जैन पुत्र श्री सुरेशकुमारजी जैन, पिडावा	301 00
34	श्री शान्तिनाथजी सोनाज, अकलूज	251 00
35	सौ वीणा अनिलकुमारजी सोनाज, अकलूज	251 00
36	सौ सुहासिनी चन्द्रकान्तजी सोनाज, अकलूज	251 00
37	सौ आरती अजितकुमारजी सोनाज, अकलूज	251 00
38	श्रीमती पतासीदेवी इन्द्रचन्दजी पाटनी, लॉडनू	251 00
39	श्रीमती भँवरीबाई ध प स्व श्री घीसालालजी छाबडा, सीकरवाले	251 00
40	श्री राजेन्द्रकुमारजी जैन, रावतभाटा	251 00
41	श्रीमती कनकमाला जैन, नागदा	251 00
42	श्रीमती ज्योति जैन, मिहिजाय	251 00
43	श्री निर्मलकुमारजी जैन, मालथोन	251 00
44	श्रीमती गुलाबीदेवी लक्ष्मीनारायणजी रारा, शिवसागर	201 00
45	चौधरी फूलचन्दजी जैन, मुम्बई	111 00
46	श्रीमती पानादेवी मोहनलालजी सेठी, गोहाटी	101 00
	कुल राशि	29,301 00

अपनी बात

सौभाग्यशाली हैं वे व्यक्ति, जिन्हें जन्म-जन्मान्तर और पीढ़ी-दर-पीढ़ी से तत्त्वज्ञान और सदाचार के संस्कार मिलते आ रहे हैं। तथा धन्य है उनका जीवन, जो उन सस्कारों के सम्बल से और अपने उग्र पुरुषार्थ से प्रतिकूल परिस्थितियो में भी कीचड में पडे कंचन की भाँति आत्मोन्नति के मार्ग पर चलते हुए लौकिक बुराइयों से बचे रहते हैं ।

पर, कितने हैं ऐसे सौभाग्यशाली, सस्कारी और पुरुषार्थी व्यक्ति, जिन्हें ये आत्मोन्नति के अवसर पर सहज प्राप्त हो जाते हैं ? अधिकाश व्यक्ति तो ऐसे ही होते हैं, जिनकी मनःस्थिति उनकी पारिवारिक परिस्थितियो पर ही निर्भर करती है ।

यदि सस्कारविहीन व्यक्तियो को भोगवादी भौतिक वातावरण मिल जाता है तो उनके साथ तो "करेला और नीम चढा" वाली कहावत ही चरितार्थ होती है । करेला स्वय कडवा और फिर नीम चढ़ी बेल पर फूला-फूला हो तो उसकी कडवाहट का तो कहना ही क्या है ?

प्राणियों मे सस्कार दो तरह से आते हैं, एक तो जन्म-जन्मान्तरों से और दूसरे पीढ़ी-दर-पीढ़ियों से । दोनो प्रकार के सस्कारों से नई पीढ़ियाँ प्रभावित होती हैं । अत प्रत्येक माता-पिता की यह जिम्मेदारी है कि वे अपनी सतान को दोनो प्रकार के सु-सुस्कारो से संस्कारित करे और उन्हें कु-सस्कारो से बचाये । इस अन्तर्भावना ने ही मुझे इस कृति को लिखने के लिए उत्प्रेरित किया है ।

प्रस्तुत 'संस्कार' नामक कथानक मे विविध पात्रों के माध्यम से जीवन के यथार्थ को रेखाकित करते हुए भले-बुरे सस्कारो का प्रभाव एवं उनसे होने वाले लाभ-हानि का दिग्दर्शन कराने का प्रयास किया गया है ।

इसमें अत्यन्त सरल, सुबोध भाषा-शैली मे जैनदर्शन का गभीर तात्त्विक चिन्तन प्रस्तुत करने का प्रयास भी स्थान-स्थान पर किया है । तथा दो परिवारों के माध्यम से दैनिक जीवन में घटित होनेवाली पारिवारिक व सामाजिक समस्याओं को उभारते हुए उनके उचित समाधान खोजने

का भी प्रयास किया है । इन्ही सबके साथ खान-पान की शुद्धि, अहिंसक आचरण, साम्प्रदायिक सद्भाव और नैतिकता के प्रेरणादायक प्रसंग भी कथानक की सहज स्वाभाविक कथा-यात्रा के बीच-बीच में प्रस्फुटित होते गये हैं, जो पाठकों को विशेष लाभप्रद होंगे ।

वस्तुतः यह कथानक के लिए लिखा गया कथानक नहीं है, बल्कि कथानक के सहारे मैंने कल्पित पात्रों द्वारा जैनाचार और तत्त्वविचार को ही आगम सम्मत युक्तियों और अनुभवों के आधार पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है ।

शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षकों की अक्षमता और शासन की लापरवाही के कारण शिक्षण मे जो धाधली चल रही है, अबोध बालकों के साथ जो खिलवाड हो रहा है, उस ओर शिक्षकों और समाज का ध्यान आकर्षित करने का प्रयास भी किया गया है ।

दहेज प्रथा और परिवार नियोजन जैसी ज्वलन्त समस्याओ पर भी मौलिक एव नया चिन्तन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

अनेक पात्रो वाले इस कथानक मे साधु-सतो के श्रीमुख से सदाचार प्रेरक और तात्त्विक प्रवचन भी रोचक शैली में कराये गये हैं । उनसे पाठक जैनदर्शन के मूलभूत सिद्धान्तो से परिचित तो होंगे ही, उनकी तर्क और युक्तियों से प्रभावित भी होगे — ऐसा मेरा विश्वास है ।

अपनी बात को कहने मे मैं कितना सफल हो सका हूँ, इसका निर्णय तो मेरे प्रबुद्ध पाठक ही करेंगे । 'जयजिनेन्द्र' ।

— रतनचन्द भारिल्ल

संस्कारों के सम्बन्ध में पूज्य गुरुदेवश्री के दो शब्द

जो सत्य का श्रवण रुचिपूर्वक करता है, उसमें उससे सत्य के संस्कार पडते हैं, इन सत्य के संस्कारों से धर्म प्राप्त होता है । भले अभी विकल्प न टूटे, तो भी उसके संस्कार से भविष्य में धर्म प्राप्त होता है ।

— श्री कानजी स्वामी : आत्मधर्म मार्च, १९७८; पृष्ठ-२६

१

"क्यों रे विज्ञान ! तू कल दिनभर कहाँ छिपा रहा ? इसतरह कब तक छिपता रहेगा ? अब तो तू दस वर्ष का हो गया है । क्या अब भी धाय माँ का पल्लू पकड़े-पकडे फिरेगा ? क्या अभी भी लडकियो की तरह रंग-गुलाल से डरता है ? डरपोक कहीं का !" — उसके अहं पर चोट करते हुए सुदर्शन ने कहा ।

"डरने की तो कोई बात नही है मित्र । पर मुझे यह होली की हुडदग बिल्कुल पसन्द नहीं है । मै खूब सोचता हूँ, पर मेरा मन ही नही होता इस रासलीला मे शामिल होने को ।" — विज्ञान ने सहज भाव से कहा ।

पास ही खडे ज्ञान ने सुदर्शन के कान में कुछ कहा और दोनों मन ही मन मुस्कुराते हुए कक्षा मे चले गये ।

कहने को तो होली का त्योहार एक दिन का ही होता है, पर वस्तुतः इसका प्रभाव रंग पचमी तक रहता है । भले छुट्टियाँ न भी हों, तो भी स्कूल और कार्यालय इसके प्रभाव से अछूते नहीं रहते ।

× × ×

जो गम्भीर प्रकृति के होते हैं, जिन्हें अधिक हुडदंग पसन्द नहीं है, जब वे भी इसके प्रभाव से अछूते नहीं रह पाते तो फिर जैननगर की शासकीय शाला के छात्र-छात्राये इसके प्रभाव से अछूते कैसे रह सकते थे ?

होली के दूसरे दिन शासकीय नियम के अनुसार रंग व गुलाल से होली खेलने का निषेध होने पर भी बालक-बालिकाओं के दिलों में रंगारंग की उमंग कम नहीं हुई थी । इनकी देह पर से भी अभी पूरी तरह रंग नहीं उतरा था ।

अधिकाश छात्र-छात्राओ की चोरजेबो मे रंग और गुलाल की पुडियाँ छुपी-छुपी मुस्करा रही थी तथा उनके गालो की लाली बनने की प्रतीक्षा कर रहीं थीं ।

ज्यो ही मध्यावकाश की घटी बजी कि क्षण भर मे सभी छात्र-छात्राएँ क्रीडा शिक्षक के निर्देशानुसार खो-खो खेलने खेल के मैदान में पहुँच तो गये, पर शिक्षक के देखते ही देखते पल भर मे शाला का सम्पूर्ण वातावरण होली की हुडदंग मे बदल गया ।

विज्ञान के सिवाय उनमे एक आठ वर्षीय तीसरी कक्षा मे पढ़नेवाली भोली-भाली सूरतवाली 'विद्या' नाम की लडकी भी ऐसी थी, जिसे रंग-गुलाल लगाना व लगवाना बिल्कुल ही पसन्द नही था । यदि कोई उसे हठाग्रह करके रंग-गुलाल लगा देता तो वह घटो रोती रहती थी। पर पता नहीं आज उसका हृदय किस तरह उत्साह व उमग से भर उठा और न मालूम उसे क्या सूझा कि उसने शाला के मध्यावकाश मे, जब खो-खो का खेल होली की हुडदग मे बदल गया था, तब उसने चुपके-चुपके से 'विज्ञान' के पीछे जाकर धीरे से उसके गालो पर गुलाल मल दी और जोर-जोर से ताली बजाते हुए खिल-खिलाकर हंस पडी। पर ज्यो ही अन्य छात्र-छात्राओ ने उसकी ओर आश्चर्य भरी दृष्टि से देखा तो वह सहम गई, शरमा गई और अपने मे ही सिमट गई।

उस बालिका की इस असभावित सहज स्नेहपूर्ण शरारत को देखकर बालक विज्ञान क्षण भर तो स्तंभित रह गया, पर थोडी ही देर में उसके मन मे भी किसी अन्तःकरण के कोने से सुसुप्त सस्कार जागृत हो गये। और अज्ञात अन्तःप्रेरणा से प्रेरित होकर उसने भी चुपचाप अपने मित्र से गुलाल की पुडिया माँगकर विद्या के गालो पर मलते हुए माथे मे सिन्दूर-सा भर दिया ।

उनके इस अप्रत्याशित व्यवहार को देखकर सभी छात्र-छात्रायें तो अचंभित थे ही, अध्यापक-अध्यापिकाएँ भी उन्हें आश्चर्यभाव से देख रहे थे और परस्पर मे कह रहे थे कि – "इनके इस व्यवहार को

देखकर तो ऐसा लगता है कि इनका तो पिछले जन्म-जन्मान्तर का कोई अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है । इनके ये सस्कार इस जन्म मे भी इन्हें एक-दूसरे से अलग नही कर सकते ।"

कक्षा पाँच के बाद तो वे सब बिखर गये, पर बडे होने पर विज्ञान, विद्या, ज्ञान और सुदर्शन चारो चार राहों से आकर फिर एक चौराहे पर मिल गये ।

जिसका जिसके साथ जिस तरह का संस्कार होता है, प्रकृति उसे सहज रूप से ही मिला देती है ।

× × ×

ज्ञान, विज्ञान और सुदर्शन एक ही नगर के रहने वाले और एक साथ खेलने वाले बालसखा थे । तीनो की प्रारम्भिक शिक्षा एक ही स्कूल मे हुई थी, पर सुदर्शन और ज्ञान के पिता ने प्रारम्भ से ही अपने बेटो को लौकिक शिक्षा के साथ नैतिक शिक्षा और धार्मिक सस्कार भी दिये थे, परन्तु दुर्भाग्य से विज्ञान को यह सौभाग्य नही मिल पाया था ।

विज्ञान का परिवार भी धार्मिक तो था, पर परिस्थितियों की प्रतिकूलताओ ने उसे ऐसे मोड पर लाकर खडा कर दिया था, जहाँ से केवल एक ही रास्ता खुलता था । और वह था पश्चिमि सभ्यता और सस्कृति से युक्त भौतिकवाद का ।

उसकी माँ तो उसके जन्म लेते ही चल बसी थी, पिताश्री को अपने कल-कारखाने सभालने और उद्योग-धधो से ही फुर्सत नहीं थी; दुर्भाग्य से दादाजी का सान्निध्य भी बहुत समय तक नहीं मिल सका था । वे भी विज्ञान को पाँच वर्ष का छोड दिवगत हो गये, पर जब तक रहे, तब तक उसे अपने पास ही सुलाते रहे और जब तक उसे नींद नहीं आ जाती तब तक सदाचार प्रेरक पौराणिक कहानियाँ सुनाते रहे । बचपन में विज्ञान को कहानियाँ सुनने का शौक भी बहुत था ।

दादाजी जानते थे कि बचपन के ये संस्कारों के बीज निश्चित ही समय पर वातावरण का जल पाकर अंकुरित हो जायेंगे, अतः उन्होंने सोचा, – "अभी जितने गहरे संस्कार डल जावें उतना ही अच्छा।"

पर होनी को कौन टाल सकता है, उसे उनका पूरा लाभ नही मिलना था, सो नहीं मिला, असमय में ही उनकी छत्रछाया भी उस पर से उठ गई ।

माँ का निधन हो जाने से वह बचपन मे तो अधिकाश धाय माँ और नौकरो के हाथो मे ही रहा और बडा होते ही पाचवीं कक्षा के बाद उसे एक ऐसे इंगलिश-मीडियम स्कूल एव होस्टल मे प्रविष्ट कर दिया गया, जिसमे वह अपनी भारतीय सस्कृति और सदाचार से दिन-प्रतिदिन दूर-अतिदूर होता चला गया । इसकारण उसे भारतीय श्रमण संस्कृति की हर बात अटपटी पोपडम सी लगने लगी । वह करे तो करे भी क्या ? उसका उठना-बैठना, रहन-सहन, बोल-चाल, खान-पान – सबकुछ बदल चुका था । वातावरण बदल जाने से दादाजी द्वारा डाले गये सस्कारो का रंग भी फीका पड गया था । अब उसे अडे और आमिसमय भोजन मे हिसा के बजाय विटामिन और शरीर पोषक तत्व ही नजर आने लगे थे ।

अब जब भी वे तीनो बालसखा आपस मे एक दूसरे से मिलते, तभी किसी न किसी बात पर उनमे भारतीय सस्कृति के विषय मे बहस और नोक-झोक हो जाया करती थी ।

ईसाई मिशनरी द्वारा सचालित स्कूल और कॉलेज मे पढ़ने तथा होस्टल में लगातार पन्द्रह वर्ष के लम्बे समय तक रहने के कारण विज्ञान के खान-पान और रहन-सहन मे तो सम्पूर्णत भौतिकवाद के संस्कार आ ही गये थे, पूजा-पाठ जैसे पवित्र अनुष्ठानो पर से भी उसकी आस्था और विश्वास उठ गया था । केवल एक मानव सेवा ही धर्म है, शेष सब ढोग है, पाखण्ड है, आडम्बर है – ऐसी धारणाओं ने उसके चिन्तन को विकृत कर दिया था ।

इसके सिवाय हृदय को हिला देने वाली ईसामसीह की कुर्बानी की कहानियों ने उसके कोमल हृदय पर ऐसी छाप छोडी कि अब उसे एकमात्र ईसू ही सर्वश्रेष्ठ महामानव या ईश्वरीय अवतार के रूप में वन्दनीय एव प्रातःस्मरणीय हो गये थे ।

जब तक वह स्नातक होकर घर लौटा तब तक उसके पिता लक्ष्मीकान्त बडे लोगो को होने वाले सभी राज रोगों से घिर चुके थे । उनका उद्योग-धधा केवल भगवान के भरोसे और मुनीम-गुमास्तों एव मैनेजरों के बल पर ही चल रहा था । घर में कोई दूसरा सहारा तो था नहीं, अत वे विज्ञान की वापसी की बडी बेचैनी से प्रतीक्षा कर रहे थे ।

× × ×

विज्ञान की वापसी से एक ओर जहाँ उन्हें भारी राहत महसूस हुई, वहीं दूसरी ओर उसके बदले हुए विचार, एकदम पश्चिमी सभ्यता के रहन-सहन और खान-पान ने उन्हें विस्मित कर दिया।

उन्होने तो उसी ईसाई मिशनरी स्कूल और होस्टल की ही सर्वाधिक प्रशसा सुनी थी, अत व्यापारिक दृष्टि से अग्रेजी मीडियम से लौकिक शिक्षा दिलाने और नैतिक एव सदाचारी बनाने के लिए विज्ञान को उस स्कूल मे प्रविष्ट करा दिया था। उन्हें क्या पता था कि ईसाइयो के सदाचार का मापदण्ड भारतीयो के सदाचार से बिल्कुल भिन्न होता है।

वे उद्योगपति तो थे, पर आधुनिक उद्योगपतियों जैसे सातों व्यसनों मे पारगत सर्वगुण सम्पन्न नही थे । अधिक पढ़े-लिखे भी नहीं थे । सीधे-सादे सज्जन प्रकृति के धार्मिक रुचि सम्पन्न श्रीमंत थे । अत उन्हें विज्ञान का बदला हुआ रूप एकदम अटपटा लग रहा था और वे अपने इस कृत्य पर पछता भी रहे थे, पर 'अब पछताये क्या होत है, जब चिडिया चुग गई खेत ।'

परन्तु वे विवश थे । इसके सिवाय उस समय और करते भी क्या? घर मे विज्ञान को संभालने के लिए उसकी माँ भी नहीं थी और अकेले होने के कारण उनके पास उसकी देखभाल करने का समय भी नहीं

था, अत. घर में रखकर पढ़ाना-लिखाना तो सभव था नही और नगर मे अन्य लोग भी उत्तम व्यवस्था और उत्तम पढ़ाई की दृष्टि से उसी शिक्षा सस्थान की प्रशसा किया करते थे और विज्ञान को उसी मे प्रविष्ट कराने का परामर्श दिया करते थे, इसकारण ऐसा बनाव बन गया था।

पर उन्होने इस सम्बन्ध मे विज्ञान से कुछ नही कहा, कहते भी क्या ? उसमे उस बेचारे का दोष भी क्या था ? उसे तो जैसा वातावरण मिला, वैसा ढल गया ।

जो होना था सो तो हो ही गया, पर उन्होने इस घटना से प्रेरणा पाकर यह सकल्प किया कि – यदि मैं थोडे दिन और जीवित रहा तो मैं इस शिक्षा संस्थान के समानान्तर ही एक ऐसा आदर्श शिक्षा संस्थान स्थापित करूँगा, जिसमें आधुनिक संदर्भ में सभी प्रकार की सर्वश्रेष्ठ लौकिक शिक्षा के साथ भारतीय सभ्यता, श्रमण-संस्कृति, नैतिक शिक्षा और अहिसक सदाचारी जीवन जीने की कला में छात्रों को निपुण किया जाएगा और वीतराग-विज्ञान की महिमा से छात्रों को परिचित कराया जायेगा।

इसके लिए उन्होने प्रोफेसर ज्ञान के पिता श्री अरहत जैन, जो स्वय एक अनुभवी शिक्षाविद् थे, को बुलाया और उन्हे अपने विचारो से अवगत कराते हुए परामर्श किया ।

वे भी वर्तमान शिक्षा के दोषो को दूर करना चाहते थे, पर अभी तक वे यह सोचकर पीछे हट जाते थे कि – 'अकेला एक चना भाड नहीं फोड सकता। अत चुप रहने मे ही सार है ।'

परन्तु अब जब उन्हे एक श्रीमत का सहारा मिला तो उनका उत्साह तो दस गुणा बढा ही, साहस भी बढ़ गया और उन्होने इस दिशा मे सोचना प्रारम्भ कर दिया। उन्होने सेठ लक्ष्मीकान्त को आश्वस्त किया कि "मै तीन माह के अन्दर ही उन्हें इस विषय की आद्योपात लिखित रूपरेखा प्रस्तुत कर दूँगा ।"

× × ×

सेठ लक्ष्मीकान्त ने श्री अरहंत जैन से मनोवांछित रूपरेखा पाते ही एक करोड रुपये देने की घोषणा करके अपने सकल्प के अनुसार शिक्षा केन्द्र को साकार रूप तो दे दिया, पर वे उसे फूलता-फलता नहीं देख पाये । उनके मरणोपरान्त श्री अरहंत जैन के निर्देशन में वह नव सस्थापित आदर्श शिक्षा सस्थान प्रारम्भ मे एक दशक तक तो अपने उद्देश्यो की ओर अग्रसर रहा, पर उनकी भी आँखें बन्द होते ही उसकी व्यवस्था कुछ ऐसे हाथो मे पहुँच गई, जिन्हें धर्म और सस्कृति से तो कोई लगाव था ही नही, सामान्य शिक्षा व्यवस्था को सुचारु रीति से चलाने का अनुभव भी नही था। इस कारण अब वह शिक्षा सस्थान केवल राजनैतिक चर्चा-वार्ता और अध्यापको की आजीविका का साधन मात्र बनकर रह गया था ।

पिता के दिवगत हो जाने से अनायास ही विज्ञान के कोमल कधो पर सम्पूर्ण उद्योग-व्यापार और घर-बाहर का बोझ आ गया था । इस कारण बहुत दिनों तक तो वह कहीं आ-जा भी नही सका और उसका किसी से मिलना-जुलना भी नही हो पाया था । पर उसने अपनी चतुराई और दूरदर्शिता से व्यापार को कुछ इस तरह से सभाला और ऐसा व्यवस्थित किया कि उसकी आर्थिक आय पर विपरीत प्रभाव भी न पडा और अधिक व्यवस्था भी न रही ।

× × ×

विज्ञान अपनी पढ़ाई पूरी करके जब से होस्टल से वापिस घर आया है, तब से अब तक वह अनेक लोगो के मुँह से ज्ञान और सुदर्शन की कार्य-शैली की काफी कुछ प्रशसा सुन चुका था ।

इतना तो उसे भी ज्ञात था कि उन दोनों ने अपने घर पर रह कर ही अपने नगर के उस शासकीय विद्यालय मे आद्योपात शिक्षा प्राप्त की है, जहाँ पढ़ाई के नाम पर इकट्ठे होने वाले छात्र-छात्राओं में तो अधिकाश परस्पर एक-दूसरे के सच्चे-झूठे प्रेम-प्रसंगों के ही चर्चे

हुआ करते और अध्यापक लोग राजनीति एव राजनेताओ पर कपोल-कल्पित टीका-टिप्पणियाँ किया करते।

इन परिस्थितियो मे भी वे दोनो अपने परिश्रम के बल पर बोर्ड एव विश्वविद्यालय की प्रत्येक परीक्षा मे लगभग पहला-दूसरा स्थान ही पाते रहे । ज्ञान एम ए, पीएच डी करके प्रोफेसर हो गया है और सुदर्शन एल एल बी करके वकील बन गया है ।

व्यवसाय के क्षेत्र मे वे चले तो अपने-अपने पिता के पद-चिन्हो पर ही, पर कार्य-शैली मे वे उनसे बिल्कुल भिन्न तरीके से आगे बढ रहे थे । उनकी नवीन कार्य-शैली की नगर मे सर्वत्र चर्चा थी ।

अत. विज्ञान की उनसे मिलने की इच्छा प्रबल हो उठी थी, पर कार्य की व्यस्तता के कारण अभी तक वह उनसे मिल नही पाया था।

× × ×

एक दिन अपने व्यस्त कार्यक्रम मे से समय निकालकर विज्ञान अपने बालसखा प्रो ज्ञान से मिलने उसके घर गया । उससे मिलते ही हाथ मिलाने के लिए अपना हाथ आगे बढाते हुए विज्ञान ने कहा – "गुडमॉर्निंग मि ज्ञान ।"

ज्ञान ने विज्ञान के द्वारा किए गये गुडमॉर्निंग को अनसुना कर बात बदलने की नियत से कहा – "ओ हो । विज्ञान तुम। ----- यहाँ ------। अचानक कैसे याद आ गई कृष्ण कन्हैया को सुदामा की यह कुटिया? जब से तुम पढ़कर लौटे, तब से तो ईद के चाँद ही हो रहे हो, कभी दिखते ही नही, किस दुनिया मे रहते हो आजकल?"

विज्ञान ने भी ज्ञान की औपचारिकता का उत्तर देना आवश्यक न मानते हुए पुन कुछ जोर से कहा– "गुडमॉर्निंग मि ज्ञान!"

ज्ञान ने विस्मय भाव से कहा, "क्या कहा ? गुडमॉर्निंग । मित्र गुडमॉर्निंग नही, जयजिनेन्द्र कहो जयजिनेन्द्र ।"

"क्यों भाई ज्ञान । जयजिनेन्द्र क्यो ? गुडमॉर्निंग क्यों नही?" – विज्ञान ने जिज्ञासा प्रकट की ।

ज्ञान ने समाधान किया – "हम जैन हैं न ।"

विज्ञान ने कहा – "यह तो मै भी जानता हूँ कि हम जैन हैं, पर क्या जैनों को जयजिनेन्द्र करना ही जरूरी है ? क्या हम गुडमॉर्निंग नहीं कर सकते हैं ?"

ज्ञान ने समझाया – "अरे भाई । वैसे तो सब स्वतंत्र हैं, सभी अपनी-अपनी मर्जी के मालिक हैं । जो जिसके जी मे आये करे । कौन किसको रोक सकता है । पर हमारे उपास्य देव तो जिनेन्द्र भगवान ही है न ? अत हमारे लिए तो वे ही प्रात:स्मरणीय हैं । इसलिए हम प्रात. सर्वप्रथम अपने उपास्य देव – जिनेन्द्र देव का स्मरण करने के लिए जयजिनेन्द्र करते हैं और करना चाहिए ।

देखो न। प्रत्येक रामभक्त 'जय रामजी' करता हैं या नही? प्रत्येक खुदाभक्त 'खुदाहाफिज' कहता है या नहीं ? प्रत्येक गुरुभक्त 'जयगुरुदेव' कहता है या नही ? प्रत्येक हिन्द प्रेमी 'जयहिन्द' कहता है या नही?

जब सर्वत्र ऐसा है तो तुम्हीं सोचो – प्रत्येक जिनेन्द्र भक्त को जयजिनेन्द्र करना चाहिए या नही ?"

विज्ञान ने कहा – "यह सब तो ठीक है, पर इस सब मे एक तो साम्प्रदायिकता की गध आती है और दूसरे ये अभिवादन पुरातनपन्थी से लगते हैं, अत अटपटे भी लगते हैं, तथा 'गुडमॉर्निंग' एक कोमल शब्द है, इससे किसी धर्म या सम्प्रदाय विशेष का सम्बन्ध भी नही है। अत: मुझे तो 'गुडमॉर्निंग' अभिवादन ही अच्छा लगता है ।"

ज्ञान ने पुन. समझाने का प्रयत्न किया – "देख भाई । अच्छा-बुरा तो संस्कारो पर निर्भर करता है । तुझे पूरे पन्द्रह वर्ष उसी वातावरण मे रहते-रहते वैसी ही आदत पड गई है और तू भारतीय संस्कृति से अच्छी तरह परिचित भी नहीं है, अत: अच्छे लगने की तो बात अलग है, पर यदि तू तर्क-युक्ति से विचार करेगा तो तुझे स्वयं अपनी कमजोरी का पता चल जायेगा ।

मै पूछता हूँ "यदि तुझे भारतीय अभिवादनों में साम्प्रदायिक और पुरातन पन्थ की गंध आती है तो क्या गुडमॉर्निंग मे पाश्चात्य संस्कृति व आधुनिक सभ्यता की गंध नहीं है ? और क्या पाश्चात्य संस्कृति में कोई धार्मिक विचारो को स्थान नहीं है?

अरे भाई । सभी वर्गों में अपने-अपने धर्म है, दर्शन हैं, उनके अपने सिद्धान्त हैं, अपने-अपने इष्टदेव हैं, जिन्हे वे प्रातःस्मरणीय मानते हैं और अभिवादन के रूप में स्मरण भी करते है ।

क्या हम 'जयजिनेन्द्र' जैसे अपने प्रसिद्ध अभिवादन की उपेक्षा करके दुनिया की दृष्टि में सिद्धान्तविहिन साबित नहीं होंगे ? हमें 'जयजिनेन्द्र' करने में संकोच नहीं होना चाहिए । हमें अपने उपास्य देव को छोड अन्य कुछ बोलकर हर एक के सामने गिरगिट की तरह रग भी नहीं बदलना चाहिए । कोई हम से कुछ भी बोलकर अभिवादन करे, पर हम तो उसके उत्तर में जयजिनेन्द्र ही कहे।"

विज्ञान ने जानने की जिज्ञासा से कहा – "राम, कृष्ण, आदि तो ऐतिहासिक महापुरुष हुए है और हिन्दू सस्कृति मे इन्हें ईश्वरीय अवतार भी माना गया है, पर यह जिनेन्द्र कौन है ? जिसकी हम जय बोलते है, यह मेरी समझ मे आज तक नहीं आया।"

ज्ञान ने कहा – "जिन्होंने मोह-राग-द्वेष और इन्द्रियों के विषयों पर विजय प्राप्त कर ली है, जो पूर्ण वीतरागी और सर्वज्ञ हो गये है, वे सब आत्माएं जिनेन्द्र है ।" जैनधर्म मे भी ऋषभदेव से महावीर तक चौबीस तीर्थंकर ऐसे ही जिनेन्द्र है जो ऐतिहासिक महापुरुष के रूप मे भी मान्य है। उनके स्मरण करने से उनसे प्रेरणा पाकर हम भी उन जैसे बन सकते है, इसलिए जैन सस्कृति मे 'जयजिनेन्द्र' बोलने की परम्परा है ।

विज्ञान ने कहा – "ज्ञान । तुम्हारा प्रस्तुतीकरण तो बहुत ही बढ़िया है । क्यो नहीं होगा, प्रोफेसर जो ठहरे । पर सबेरे-सबेरे तुम यह

क्या राग छेड बैठे हो ? जिससे साम्प्रदायिकता पनपे, ऐसी बात ही क्यों करना ?"

ज्ञान ने दृढ़ता से कहा – "नहीं विज्ञान । धर्म और दर्शन के सिद्धान्तो से कभी साम्प्रदायिकता नहीं पनपती । फिर यह भारत तो ऐसा बगीचा है, जिसमें विभिन्न धर्म और दर्शन के रंग-बिरंगे फूल खिलते है और सभी अपनी-अपनी पसंद के अनुसार उनकी सौरभ से सुरभित होते है।

धर्म और दर्शनो की दृष्टि से भारत मे विविधता होते हुए भी भारतीय-राष्ट्रीयता की भावना से सब एक है । सभी दार्शनिक एक-दूसरे के धर्म और दर्शनो के बारे मे जानना भी चाहते है। समय-समय पर होने वाले सर्वधर्म सम्मेलन इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं । साम्प्रदायिकता भडकती है स्वार्थी राजनेताओ द्वारा बोट बटोरने के लिए जातिवाद, वर्गवाद और प्रान्तीयता का विषवमन करने से । या फिर धर्मान्धता से, धर्म से नहीं। धर्म तो गेहूँ के साथ घुन की तरह मुफ्त मे हो पिसता है, व्यर्थ मे ही बदनाम होता है । अत धर्म मे राजनीति को नहीं आने देना चाहिए। राजनीति में धर्म तो रहे, पर धर्म में राजनीति का क्या काम ? पानी में नाव तो रहती है, पर यदि नाव में पानी आ गया तो वह नाव को ले डूबता है । यही स्थिति धर्म की है । यदि धर्म में राजनीति आ गई तो वह धर्म को भी बदनाम कर देती है।

फिर जैनधर्म तो वैसे भी किसी सम्प्रदाय विशेष का नहीं है, जो इसका पालन करता है, यह तो उसी का है, देखो न । जैनधर्म के प्रतिपादक चौबीसों ही तीर्थंकर जाति से क्षत्रिय थे, इसके विवेचक गौतम गणधर ब्राह्मण थे । उनके अनेक आचार्य भी क्षत्रिय और ब्राह्मण कुल के हुए हैं, पर आज इसके उपासक अधिकाश वणिक हैं ।"

विज्ञान तुम्हें पता नही "जयजिनेन्द्र' शब्द कितना व्यापक है, कितना पवित्र है और कितना समष्टिगत है? न केवल आदिनाथ से महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थंकर ही जिनेन्द्र हैं, बल्कि राम, हनुमान भी जिनेन्द्र

हैं, इनके अलावा वे असंख्य-अनंत आत्माएँ जिन्होंने मोह-राग-द्वेष-काम-क्रोधादि विकारों पर एवं इन्द्रियों के विषयों पर विजय प्राप्त कर ली है, पूर्ण वीतरागी और सर्वज्ञ हो गये हैं, वे सभी जिनेन्द्र हैं। जयजिनेन्द्र में इन्हीं सब पवित्र परमात्माओं की ही जय बोली जाती है, किसी व्यक्ति विशेष की नहीं।

जैनधर्म की मान्यता के अनुसार "प्रत्येक आत्मा द्रव्यस्वभाव से तो भगवान ही है, अपनी भूल को मिटाकर वह पर्याय में भी परमात्म दशा प्रगट कर सकता है। यह तो विशुद्ध आध्यात्मिक धर्म है, आत्मा से परमात्मा बनने की कला सिखाने वाला धर्म है। इसका सम्पूर्ण व्यवहार भी अध्यात्म का ही साधक है।"

विज्ञान ने वातावरण की गम्भीरता को तोडते हुए कहा – "ज्ञान। यदि तू एक-एक बात पर ऐसे लेक्चर देगा, तब तो हो गया अपना कल्याण। मै तो कुछ गपशप लगाने और मनोरंजन करने के विचार से आया था। पर तूने तो मुझे एक अजीब-सी उलझन मे डाल दिया है।

"खैर। छोडो अभी इन बातों को" – यह कह कर समस्या को पीछे धकेलते हुए विज्ञान ने पुन कहा – "हाँ, और क्या हाल-चाल हैं तेरे। क्या भाभी लाने का विचार नही है ? गृहणी के बिना भी कोई घर कहलाता है ? माता-पिता कब तक साथ दे पायेगे ? भाभी के आने से उन्हे भी तो कुछ सहारा हो ही जायेगा न ?"

उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना विज्ञान ने आगे कहा – "और सुन। सुदर्शन के क्या हाल-चाल है। वह भी तो बहुत दिनो से नहीं मिला।"

ज्ञान ने कहा – "मेरे और सुदर्शन के काम मे मौलिक अन्तर यह है कि मै तो शिक्षण के क्षेत्र मे हूँ, सो इस क्षेत्र मे एक तो वैसे भी काफी छुट्टीयाँ होती हैं, फिर कॉलेज के प्रोफेसरो पर प्राथमिक एवं माध्यमिक शालाओ के अध्यापको की भाँति खाली समय मे भी विद्यालय मे ही उपस्थित रहने का कोई खास प्रतिबंध नहीं होता, पढ़ने वाले

विद्यार्थी भी कम ही होते हैं । इसकारण वैसे तो इस क्षेत्र मे समय ही समय है, पर काम जिम्मेदारी का है और गंभीर अध्ययन-अध्यापन का है, सो जो व्यक्ति जिम्मेदारी अनुभव करे और काम करना चाहे, उसे तो काम ही काम है और जो न करना चाहे उसे कुछ भी काम नही है।

सौभाग्य से मेरी तो दर्शन और अध्यात्म मे स्वभावत रुचि है और सयोग से काम भी दर्शनशास्त्र पढ़ाने का ही मिल गया है । इसलिए मेरे लिए तो कॉलेज भी घर जैसा है और घर भी कॉलेज जैसा ही है । एक ही धुन, एक ही काम, एक ही चर्चा-वार्ता । अत मै तो पूरा दिन फ्री होकर भी व्यस्त हूँ और व्यस्त होकर भी फ्री हूँ ।

पर सुदर्शन एक वकील है, अत वह कहता है कि मुझे तो मरने की भी फुरसत नही है । एक दिन मैने तो उससे कह दिया कि — "भाई । यह तो बहुत ही बढ़िया बात है । तू सदा व्यस्त ही रहना, यदि मरने को फुरसत मिल गई तो तेरा सब करा-कराया यो ही रखा रह जायेगा ।

वह तो सकेत मे ही समझ गया । समझदार को इशारा ही काफी होता है न? तभी से वह दोनो समय स्वाध्याय को और दर्शन-पूजन को तो समय निकालने लगा है, बाकी जो व्यस्तता है वह तो है ही।"

विज्ञान ने आश्चर्य प्रकट किया — "क्या वह भी तुम जैसा ही पुरातन पथी बन गया है ? क्या कहा ? दर्शन । पूजन।। स्वाध्याय।।। किस जमाने की बाते कर रहा है तू ? क्या पूजा-पाठ कोरा ढोंग नही है ? क्या पंडिताई कोरा पाखड नहीं है?

अरे मित्र । यह धन्धा बेचारे पण्डितो को ही रहने दो न। समाज को बेवकूफ बनाने के लिए वे क्या कम पड़ते हैं, जो तुम भी उनके सहयोगी बन गये हो । अरे। तुम्हें तो उन पण्डितों का भंडाफोड करने का काम करना चाहिए था, ताकि समाज उनके चक्कर से बच सके ।

पढे-लिखे प्रोफेसर और वकील होकर भी किन दकियानूसी बातो में पड गये हो तुम लोग ?

अरे मानव सेवा करो, मानव सेवा ही सच्चा धर्म है । क्या धरा है इन पत्थरो के पूजने मे ? ये पत्थर घिस जाते है, पर इन पुजारियो और पण्डितो के पापाचार नही घिसते ।"

ज्ञान ने विज्ञान के जोश को ठडा करते हुए कहा – "अरे मित्र। तुम तो यो ही बहक गये, पहले उससे मिलो तो सही और उसके विचारो से भी परिचित होकर तो देखो, हो सकता है उसके विचार तुमसे मिलते-जुलते हो । जो पण्डित तुम्हे पाखडी दिखते है, जो पुजारी तुम्हे ढोंगी दिखते है, हो सकता है, वे पण्डित वास्तव में पाखडी हों और वे पुजारी भी ढोंगी हों, पर इसका अर्थ यह तो नहीं है कि ज्ञान ही पाखड हो गया और पूजा-पाठ ही ढोंग हो गये । पूजा-पाठ तो ढोंग नहीं है, ज्ञान तो पाखड नहीं है ? तो क्यों न हम धर्म का सच्चा ज्ञान अर्जित कर झूठे पाण्डित्य प्रदर्शन का पर्दाफास कर दें ? क्यों न हम सच्चे पुजारी बनकर ढोंगियों के ढोंग को न चलने दें? पर इसके लिए पहले स्वाध्याय द्वारा स्वय को सच्चा ज्ञान अर्जित करना होगा न ?

सुदर्शन एक वकील है, कानून का पडित है । वह जानता है कि जिस तरह कोर्ट मे जाने के पहले तत्सम्बन्धी फाइले और कानून की किताबे पढना जरूरी है, उसी तरह वीतराग धर्म की वकालत करना हो तो तत्सम्बन्धी साहित्य का आद्योपात अध्ययन करना भी जरूरी है।"

विज्ञान अपने जोश के साथ होश मे आता हुआ बोला – "हाँ, तू बिल्कुल ठीक कहता है, चलो मै भी उससे मिलना चाहता हूँ और जानना चाहता हूँ कि वह कितने गहरे पानी मे है ?" यह कहते हुए वे दोनो सुदर्शन के घर की ओर चल दिये । ●

२

ठड का मौसम, उसमे भी माघ का महीना, अतः ठंड तो अपने यौवन पर थी ही, मावठ पडने और तेज हवाये चलने से ठंड का प्रभाव और भी अधिक बढ गया था ।

पर ऐसा कुछ नहीं था कि काम-काज ही ठप्प हो गया हो । दिन-रात चलने वाले कारखाने यथावत चल रहे थे, सडको पर दौडने वाले छोटे-बडे वाहन बराबर सडको पर दौड रहे थे, मजदूर अपनी मजदूरी पर जा चुके थे, बाजार खुले थे, धधा-व्यापार भी बराबर चल रहा था ।

स्कूल कॉलेज भी खुले थे और लगभग सब छोटे-बडे बालक वृन्द अपनी-अपनी पुस्तकें बगल मे दबाये शालाओ मे पहुँच रहे थे ।

पर आदर्श विद्यालय के अधिकाश क्लास रूम खाली पडे थे । विद्यार्थी न आये हो, यह बात नही थी, पर कक्षा मे अध्यापक के आये बिना वे बालक वहाँ बैठे-बैठे करते भी क्या । अत कुछ पुस्तकालय मे चले गये थे, कुछ टी-स्टाल मे जा बैठे थे और कुछ खेल के मैदान मे इधर-उधर घूम रहे थे तथा कुछ क्लास रूम के आस-पास खडे-खडे अध्यापको के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे ।

प्राचार्य महोदय अपने प्राचार्य कक्ष मे बैठे-बैठे न्यूज पेपर पढ़ने में व्यस्त थे । दो-चार अध्यापको को छोडकर शेष सभी अध्यापक शिक्षक कक्ष मे हीटर जलाये चुनावी चर्चा का आनन्द ले रहे थे ।

× × ×

ज्यों ही प्रोफेसर ज्ञान ने दर्शन शास्त्र का प्रथम पीरियड पढ़ाने के बाद शिक्षक कक्ष मे प्रवेश किया तो उसे आया देख उसके ही साथ

नियुक्त हुए एक नये साइंस के शिक्षक ने धीरे से लोगो की निगाहें बचाकर पंखा चला दिया ।

वहीं बैठे हिन्दी साहित्य के वरिष्ठ शिक्षक ने विस्मय भाव से पूछा– "अरे । इतनी सर्दी में यह पखा किसने चलाया है ?"

तीसरे एक अधेड उम्र के कौमर्स के शिक्षक ने व्यग्य करते हुए कहा – "बेचारा प्रो ज्ञान पढा-पढा कर पसीना-पसीना हो गया है न ? और पढ़ाते-पढ़ाते उसका माथा भी तो गरम हो गया होगा न? बस, इसी कारण उस पर कृपा करके किसी दीनदयाल ने ही चलाया होगा ।"

चौथे अग्रेजी के शिक्षक ने कहा – "अच्छा, तो यह बात है । मै समझा नही था कि यहाँ भी ऐसे दीनदयाल है ।"

पाँचवे अध्यापक ने चौथे को निशाना बनाकर कटाक्ष किया – "तुम समझोगे भी कैसे ? पुरानी पीढी के थर्ड क्लास अध्यापक जो ठहरे। तुम में अक्ल ही कितनी है ।"

उनमे से एक पुराने अधायपक को प्रो ज्ञान के प्रति किया गया नये अध्यापको का यह व्यवहार अच्छा नही लगा, अत उसने कहा – "अरे भाई। ये व्यर्थ की बाते बन्द भी करो न । इस तरह एक भले आदमी का मजाक उडाना तुम्हें शोभा नही देता ।

विषय बदलने की भावना से उसने प्रो ज्ञान से प्रश्नवाचक मुद्रा मे पूछा – "क्यो ज्ञान । तुम्हारे उस ज्ञापन का क्या हुआ, जिसमे तुमने वर्तमान शिक्षा नीति और गिरते हुए शिक्षा स्तर के बारे मे शासन का ध्यान आकर्षित करने की योजना बनाई थी ?

गंभीर व्यक्तित्व के धनी प्रो ज्ञान ने सबकी सब बातो को धैर्यपूर्वक शान्ति से सुन लिया । किसी पर भी कोई प्रतिक्रिया प्रगट नहीं की। चेहरे पर भी कोई घृणा या क्षोभ का भाव नही आने दिया, क्योकि ज्ञान के लिए यह सब चर्चा-वार्ता कोई नई बात नहीं थी । उसे तो आये दिन किसी न किसी बात को लेकर इसी तरह व्यंग्य-वाणो का

निशाना बनना ही पड़ता था, क्योंकि उसकी कर्तव्यनिष्ठा उसके नये साथियो को पसद नहीं थी, "पर खटमलों के कारण खाट और बिस्तर थोडे ही फैंक दिया जाता है और मच्छरो की वजह से मकान थोडे ही छोड दिया जाता है ।" यह सोचकर वह अपने कर्त्तव्य को बराबर नियमित रूप से करता रहा ।

बस, उस बेचारे का अपराध ही केवल यह था कि वह अपने कर्त्तव्य के प्रति इतना जागरूक क्यो है ? वह उनके कदम से कदम मिलाकर क्यो नही चलता ? जैसा वे सब करते है, वही सब वह क्यो नहीं करता ? जब वे सब हीटर से हाथ सेक रहे थे, तब उसने कक्षा क्यो ली ? वह सबका साथ छोडकर अकेला ही अधिकारियों और विद्यार्थियो का चहेता क्यो बनना चाहता है ?

ज्ञान की टीका-टिप्पणी करते हुए अध्यापक आपस में बाते कर रहे थे।

एक शिक्षक बोला – "उसका क्या ? न कोई आगे, न कोई पीछे और न स्वय को भी कोई शौक, इस कारण उसका खर्च ही क्या है? पर हम तो बाल-बच्चो वाले हैं न ? अत हमे तो ट्यूशनें भी चाहिए न ? यदि यही पर सब कुछ पढा देगे तो हमारे पास ट्यूशन से पढ़ने कौन आयेगा ? कभी-कभी तो पीरियड छोडने का बहाना मिलता है, सो उसे भी । ये हजरत न कभी स्वय चैन से बैठेंगे और न दूसरों को बैठने देगे ।"

दूसरे ने कहा – "इसके घर मे कोई मन लगने-लगाने के साधन तो हैं नही, इस कारण समय से भी दस-बीस मिनट पहले यहाँ आ जाना और जब तक पूरा विद्यालय बद न हो जाय तब तक विद्यालय मे जमे रहना तथा प्रत्येक पीरियड को पूरे समय तक घसीटना तो इसका स्वभाव-सा बन गया है । सो इसकी तो ये जाने, पर इसके कारण आजू-बाजू की कक्षाओ के शिक्षकों को भी पूरा पीरियड लेना पडता है। वे बेचारे कभी पाच-दस मिनट पहले भी पीरियड नही छोड पाते ।"

तीसरे ने कहा – "हाँ यार । इसके इस आदर्शवाद ने हम लोगों को तो तग कर ही रखा है, प्राचार्य भी इससे परेशान रहते हैं । यह उन्हें भी समय-समय पर कर्त्तव्य का पाठ पढ़ाये बिना नहीं मानता। वे नये-नये आये हैं न ? और इसकी पहुँच ऊपर तक है, बस इसी से इसका दिमाग सातवे आकाश मे चढ रहा है । और यह उनका प्रिय भी बनना चाहता है । ठीक है, हम भी देख लेगे, यह अपने आपको समझता क्या है ? हम भी ऊपर तक पहुँचना जानते है ।"

जब अध्यापको की व्यगोक्तियो और ईर्ष्याभिरी वार्ता सुनते-सुनते बहुत देर हो गई तो उन्हीं मे से एक गभीर प्रकृति के अध्यापक ने ज्ञान के पक्ष मे बोलते हुए कहा – "देखो भाई । तुम कुछ भी कहो, पर वह आदमी है तो ईमानदार । परिश्रमी भी है और भला भी है। वह जो भी करता है, जनहित की दृष्टि से तो ठीक ही करता है।

यदि तुम भी अपने हृदय पर हाथ रखकर स्वय अपनी आत्मा से पूछो तो तुम्हारी अतरात्मा भी यही कहेगी कि – 'वह जो भी करता है सब ठीक ही करता है ।' तुम्ही बताओ वह बुरा क्या करता है?

तुम लोग उसे इतना सताते हो, अपमानित भी करते हो, तब भी वह बेचारा तुम्हारे विरुद्ध कभी-कही मुँह नही खोलता । उसने आज तक न कभी विज्ञान के साथ अपनी बचपन से चली आ रही मित्रता का लाभ उठाया और न अपने पिता के प्रभाव का ही उपयोग किया। यदि कोई और होता तो ।

चौथे ने कहा – "बात तो तुम ठीक कहते हो, परन्तु ।

"परन्तु क्या ?" – पहले शिक्षक ने कहा ।

पुराने शिक्षक ने आँख बदलते हुए उत्तर दिया – "यह किन्तु परन्तु लगाकर मै किसी को इस तरह बिना कारण अपमानित करना व सताना सहन नहीं कर सकता । मैं उस सीधे-सादे सज्जन व्यक्ति की सज्जनता को इस तरह अपमानित नही होने दूँगा । तुम्हें पता होना चाहिए कि वह मेरा शिष्य भी रहा है ।"

वातावरण का रुख बदला देख शेष लोगो की आगे कुछ बोलने की हिम्मत तो नही हुई, पर कुछ ने मुँह टेडाकर उपेक्षाभाव प्रदर्शित तो कर ही दिया । और सबने थोडी देर के लिए चुप्पी साध ली ।

वातावरण की गम्भीरता को पुन भग करते हुए बात बदलकर एक ने दूसरे से आपस मे कहा – "मित्र । तुम्हारी कल की भाग ने तो ऐसा रंग जमाया कि मै चौबीस घंटे मे मुश्किल से यहाँ आने लायक हो पाया हूँ । उसके नशे से कल का पूरा दिन तो बेकार हो ही गया, आज भी कुछ काम करने जैसी स्थिति नही है । लिखने मे हाथ काँपते हैं और चलने मे पैर । बडा बुरा नशा होता है भाग का । तुम्हें मालूम है कि मै कभी भाग नही पिता, फिर तुमने बिना बताये ठंडाई के नाम पर भग क्यो पिला दी ?

एक अन्य शिक्षक बोला – "तो क्या हुआ ? कोई रोज-रोज थोडे ही घुटती है और उसमे नही पीने जैसी बात ही क्या है ? अरे । यह तो भगवान शकर की प्रिय बूटी है, शकर की । समझे ? यदि पियोगे ही नही तो पीना सीखोगे कैसे ?

तीसरे ने सिगरेट सुलगाकर कश लगाते हुए बहस को बद करने की नियत से कहा – "यह सब तो जो हुआ सो हो गया । अब इस पर बहस करने से क्या लाभ? अब तो यह बताओ कि अगले रविवार के मनोरंजन के लिए क्या कार्यक्रम बनाया है ?"

चौथे ने व्यग्य मे कहा – "अरे भाई । क्या तुम्हे इतना भी होश नहीं है ? अभी-अभी तुमने सास्कृतिक कार्यक्रम के सयोजक प्रो ज्ञान साहब की यह सूचना नही पढ़ी कि – "अगले रविवार को सास्कृतिक कार्यक्रम के अन्तर्गत भाषण, निबन्ध एवं खेलकूद प्रतियोगितायें आयोजित की गई हैं, उनमे सभी की उपस्थिति प्रार्थनीय है ।"

पाँचवें ने सूचना के शब्दों मे से "बाल की खाल निकालते हुए कहा– "उपस्थिति प्रार्थनीय ही तो है, अनिवार्य तो नही ।"

"हाँ, है तो प्रार्थनीय ही" – एक अन्य ने कहा ।

"बस तो फिर क्या है, बना देंगे कोई बहाना । तुम तो यह बताओ कि तुम्हारा मनोरंजन का कार्यक्रम क्या है ? सप्ताह मे एक ही दिन तो मिलता है इसके लिए, उस दिन भी यही माथा-पच्ची ।

बातो-बातो मे दूसरा पीरियड भी पूरा हो गया, पर अध्यापको की बाते पूरी नही हो पाई। विद्यार्थी भी आखिर कक्षा मे बैठे-बैठे कब तक प्रतीक्षा करते । वे भी एक-एक करके वहाँ से खिसकने लगे ।

कुछ ने बारह से तीन वाले शो मे सिनेमा जाने का कार्यक्रम बना लिया । कुछ इधर-उधर हो गए और कुछ अपने-अपने घर चले गये।

× × ×

जो माता-पिता बालको की पढाई के प्रति जागरूक थे, जिम्मेदारी अनुभव करते थे, उनमे से एक ने पूछा – "क्यो राजू । आज तुम विद्यालय से इतने जल्दी वापस कैसे आ गये ?

राजू एक क्षण तो चुप रहा, फिर प्राचार्य के प्रति अपने असतोष को प्रकट करते हुए व्यग्य मे बोला – "आज हमारे प्राचार्य महोदय की कन्डोलेन्स मीटिग (शोक सभा) के कारण छुट्टी हो गई है ।"

राजू के भोले-भाले पिता राजू के व्यग्य की भाषा न समझ सके। अत उन्होने गभीर होकर पश्चाताप प्रगट करते हुए कहा – "अरे। यह तो बहुत बुरा हुआ । बेचारे बहुत भले आदमी थे ।

राजू तीखे स्वर मे बोला – "क्या कहा पापा । भले आदमी । अरे । किसने बना दिया उसे प्रिंसिपल ?" और तुम कहते हो कि बहुत बुरा हुआ । पापा । यदि ऐसा बुरा असल मे एक बार हो जाता तो कहीं अधिक अच्छा होता । हम लोगों को उनके पुतले जला-जलाकर बार-बार नकली कन्डोलेस तो न करनी पडती । उनके नाम पर बार-बार रोने से तो बच जाते ।"

"राजू । तू क्या बकता है ? क्या तुम लोगो ने प्रिन्सिपल का पुतला जलाया है ? यह तो तुम लोगों ने अच्छा नहीं किया ।"

"अरे पापा । मैने कुछ नहीं किया । मै करता भी कैसे ? आपका बेटा जो ठहरा । पर आप किस-किस को रोक लेगे ? जब वे स्वय जिन्दा रहकर भी मरे जैसे सिद्ध हो रहे है । कोई कुछ भी कहे, उनकी कान पर जूँ तक नही रेंगती । उन्हें तो न्यूज पेपर् पढ़ने से ही फुरसत नही मिलती ।

कौन पीरियड ले रहा है, कौन नहीं ले रहा है, कौन अब आया, कब चला गया ? कुछ देखते ही नहीं । देख भी लेते हैं तो कुछ कहते नही है।

वे ऑफिस मे बैठे-बैठे अखबार पढ़ते रहते और अध्यापक लोग स्टाफ रूम मे गप्पे लगाते रहते । विद्यार्थियो को तो छुट्टी से स्वभाव से ही प्रेम होता है । कोई बहाना मिला नहीं कि एक-एक कर खिसकने लगते हैं । दस-पाँच जो पढ़ने के प्रति सीरियस होते हैं, जब वे 'सर' से पढ़ाने को कहते, तो उनसे यह पूछा जाता, कितने लडके है क्लास रूम मे ?

उत्तर मिलता – "दस-बारह"

सर कहते – "बस, दस-बारह ही । बाकी कहाँ गये ?"

छात्र कहता – "सर । यहाँ-वहाँ घूम-फिर रहे होंगे, आप क्लास मे पहुँचेगे तो आपको देखकर शायद और दस-पाँच आ जावें ।"

सर का उत्तर होता – "अच्छा-ऐसा करो, कल सबको रोककर रखना, ठीक है न ?"

बस, आये दिन यही होता है । वे दस-पाँच छात्र भी निराश हो मुँह लटकाये चल देते ।

यदि शिक्षकों को बार-बार बुलाने जाते तो लडके अलग झगड़ते और शिक्षक अलग झिडकते । बहुत हुआ तो कह देते, चलो । बैठो क्लास मे , अभी आते हैं । पर उनकी वह 'अभी' कभी नही होती । आखिर कोई कब तक इन्तजार करे रोज-रोज ? धीरे-धीरे लडके उनकी 'अभी'

का अर्थ समझने लगे थे, अत 'अभी' शब्द सुनते ही सब घर को चल देते ।

मैने भी सोचा – "चलो घर ही चले, वहीं कुछ पढ़ेगे-लिखेंगे ।"

राजू के पिता को राजू की दर्द भरी कहानी सुनकर दुख तो हुआ, पर फिर भी उन्होने कहा – "बेटा । कुछ भी हो, परन्तु तुम्हें अपने गुरुजनो के बारे में ऐसा नही सोचना चाहिए । वे तुम्हारे गुरु हैं, अत आदरणीय हैं, क्या तुमने एकलव्य की कहानी नही पढ़ी ? क्या तुमने महाभारत में गुरु द्रोण और अर्जुन आदि का परस्पर व्यवहार नहीं देखा ?

भविष्य मे कभी ऐसी भूल नही करना तथा जो लडके ऐसा कोई भी काम करे, उनका साथ नहीं देना । समझे ।"

"समझ गया, पापा । अच्छी तरह समझ गया । क्यो पापा । क्या यहाँ इससे अच्छा और कोई विद्यालय नही है ?"

"हाँ, एक ईसाई मिशन का विद्यालय है, जहाँ पढाई एकदम बढिया होती है, पर"

"पर क्या ?" – राजू ने जिज्ञासा प्रगट की ।

"कुछ नहीं, सोचूँगा, इस विषय मे क्या हो सकता है ।" – पापा ने कहा ।

× × ×

जब प्राचार्य महोदय का अखबार के पूरे पृष्ठो का आद्योपात स्वाध्याय हो चुका तो एक घटे बाद रुआव के साथ ऑफिस से बाहर निकले। देखते क्या हैं कि पन्द्रह सौ विद्यार्थियो मे केवल दो-सवा दो सौ विद्यार्थी ही चार कक्षाओं मे पढ़ते दिखाई दे रहे हैं । शेष सभी सोलह कक्षाएँ खाली पडी थीं।

कक्षाओं को खाली देखकर पहले तो उन्हें जरा-सा जोश आया, पर शिक्षककक्ष तक पहुँचते-पहुँचते उनका वह जोश भी ठंडा हो गया ।

फिर क्या था, बडे ही विनम्र स्वर मे बन्धुत्वभाव व्यक्त करते हुए बोले – "क्यो बन्धुओ । क्या हो रहा है ?

अध्यापकों में अधिकाश तो अपने अपराध बोध के कारण नीची निगाहें करके चुप रहे, पर एक चालाक प्रकृति के मुँहबोले अध्यापक ने साहस बटोरकर बहाना बनाते हुए कहा – "सर । क्या है कि आज ठंड अधिक पड रही है न ? इस कारण अधिकाश लडके तो आये ही नहीं थे। हाँ, जो थोडे से आये थे, वे भी दाँत किटकिटा रहे थे । दो-चार ने पीरियड लेने को भी कहा, पर आप ही सोचिए न । भला ऐसी ठड मे यदि दस-पन्द्रह लडको को पढ़ाने बैठ भी जावें तो जो नहीं आये, वे पिछ्डे जाते न ? इसलिए हम लोगों ने सोचा – "जब पूरी उपस्थिति होगी तभी पढाना ठीक रहेगा ।"

दूसरे ने कहा – "सर । लगभग यही स्थिति सब कक्षाओ की थी । हाँ मे हाँ भराने के लिए दूसरे शिक्षकों की ओर मुँह करके कहा– "क्यो थी न ?"

समवेत स्वर मे सब ने कहा – "हाँ, देखो न । कितनी ठंड है ? हाथ भी बाहर नही निकाले जाते । भला ऐसे में पढ़ाना ।

"हाँ, सो तो है ही" – प्राचार्य ने भी हाँ मे हाँ मिला दी ।

वे भी सबके साथ बैठकर अपने अखबारी ज्ञान का प्रदर्शन करते हुए राजनीति की चर्चा करने लगे ।

× × ×

शिक्षा सस्थान की गिरती हुई स्थिति और धूमिल होती हुई छवि की जानकारी जब भी किसी नागरिक द्वारा व्यवस्थापिका समिति को दी जाती तो वे सस्था या शिक्षको के प्रति राग-द्वेष का परिणाम कहकर उसे टाल जाते थे ।

इस विषय मे उनका कहना था कि – "काम करने वालो को भलाई-बुराई तो झेलनी ही पडती है । धीरे-धीरे उनका सोच भी इसीतरह का बन गया था ।"

प्राचार्य भी अपने बचाव के लिए ऐसा ही कुछ स्पष्टीकरण दे दिया करते थे ।

पर जब शिकायते सुनते-सुनते व्यवस्थापिका समिति के कान पक गये और पानी सिर से ऊपर पहुँच गया तो समिति ने सक्रिय होकर एक जाँच समिति की नियुक्ति कर दी ।

फिर जाँच समिति की रिपोर्ट के अनुसार समिति द्वारा प्राचार्य और प्राध्यापको को यह नोटिस दिये गये कि "यदि छह मास के अन्दर स्थिति मे सुधार नही हुआ तो पूरे विद्यालय परिवार पर कठोर कार्यवाही की जायेगी ।

जिन मूल उद्देश्यो की पूर्ति के लिए शिक्षा सस्थान स्थापित किया गया है, यदि उनमे किंचित् भी उदासीनता बरती जायेगी तो सम्बन्धित व्यक्ति की तो बिना नोटिस दिए ही तत्काल प्रभाव से तुरंत सर्विस समाप्त कर दी जायेगी । यदि आवश्यक समझा गया तो विद्यालय भी बन्द किया जा सकता है और उससे हुई क्षति की जिम्मेदारी सस्था की नही होगी ।

इसके सिवाय व्यवस्थापिका समिति ने प्रो ज्ञान की सस्था के प्रति समर्पण की भावना, कर्तव्यनिष्ठा और छात्रो के प्रति हित की भावना देखकर उसे उपप्राचार्य पद पर पदोन्नत कर दिया ।

जिन अध्यापको को जाँच समिति द्वारा दोषी ठहराया गया था, उनकी तीन-तीन वर्ष तक के लिए वेतन वृद्धि रोक दी गई ।

अध्यापको को सुधरने का अवसर प्रदान करने हेतु एक विशेष आदेश यह भी दिया गया कि यदि उन्होने एक वर्ष के अन्दर अपने चरित्र को सुधार कर स्वय को शिक्षण मे सक्षम और योग्य सिद्ध कर दिखाया तो उन्हें तीन-तीन अतिरिक्त वेतन वृद्धियाँ देकर प्रोत्साहित किया जायेगा।"

× × ×

अन्त मे समिति के अध्यक्ष ने अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहा — "काश । ज्ञान जैसे समर्पित और ईमानदार व्यक्ति इस सस्था को मिलते रहें तो अभी भी कुछ नही बिगडा । एक न एक दिन यह सस्था अवश्य ही अपने उद्देश्यो मे सफल होगी ।"

अध्यक्ष की भावनाओ का सम्मान करते हुए प्रो ज्ञान की प्रशसा मे इसी आशय का एक प्रस्ताव पारित करके श्रेष्ठ कार्यकर्ताओ को प्रोत्साहित करने का अभिनन्दनीय कार्य भी व्यवस्थापिका समिति ने किया। •



३

यह् वही शिक्षाकेन्द्र है, जो ईसाई मिशन के लोकप्रिय शिक्षा सस्थान के समानान्तर भारतीय सस्कृति व सभ्यता की सुरक्षा हेतु, आध्यात्मिक विचार और अहिंसक आचरण के प्रति निष्ठा उत्पन्न करने हेतु, नैतिकता और सदाचार के सस्कार डालने हेतु एव पश्चिमी सस्कारो व दुर्व्यसनों से दूर रखने के पवित्र उद्देश्य से विज्ञान के पिता द्वारा दो दशक पूर्व स्थापित किया गया था ।

इन्ही उद्देश्यो से प्रभावित होकर नगर के श्रीमतो ने भी लाखो रुपयो का योगदान इस सस्थान को दिया था । उसी के फलस्वरूप धीरे-धीरे यह् सस्थान वट-वृक्ष की तरह् बढ़ा और नगर मे ही नही, पूरे प्रदेश के सबसे बडे और श्रेष्ठ शिक्षा-सस्थान के रूप मे पहचाना जाने लगा था ।

प्रारम्भ मे एक दशक तक, जबतक मूल सस्थापक सेठ लक्ष्मीकात और उनके सहयोगी श्री अरहत जैन रहे तब तक तो यह सस्थान अपने उद्देश्यो के प्रति जागरूक रहा, पर सस्थापक और सहयोगी श्री अरहत जैन के दिवगत होते ही गत कुछ वर्षों से इसकी छवि धूमिल होते-होते स्थिति यहाँ तक आ पहुँची कि अब उसकी चर्चा सुनते ही शर्म से आँखे नीचे झुक जाती हैं ।

× × ×

इस शिक्षाकेन्द्र के अन्तर्गत पहली कक्षा से लेकर स्नातकोत्तर स्तर तक कला, विज्ञान एव वाणिज्य आदि सभी प्रमुख विषयों के पठन-पाठन की व्यवस्था है ।

वैसे शासन तो आवश्यकतानुसार स्वय छोटी-छोटी जगहो पर भी अपने शिक्षाकेन्द्र स्थापित करता है, सो यह तो जिला स्तर का नगर

है, अत यहाँ भी शासकीय शिक्षा की आद्योपान्त व्यवस्था है, फिर भी शासन ने निजी शिक्षा-सस्थाओं की स्थापना को प्रोत्साहित कर रखा है और भरपूर अनुदान भी दे रखा है, क्योंकि शासन से भी यह बात छिपी नही है कि शासकीय शिक्षाकेन्द्रो की तुलना मे निजी शिक्षा-संस्थान श्रेष्ठ सेवाये करते है, अच्छा परीक्षा परिणाम देते हैं । पर गत कुछ समय से इस शिक्षाकेन्द्र की छवि धूमिल हो रही है ।

इस शिक्षा सस्थान की छवि धूमिल होने मे छात्रो से कहीं अधिक हाथ प्राचार्य एव अध्यापको की अक्षमता, अयोग्यता एव उनकी आर्थिक कमजोरी का था, साथ ही व्यवस्थापिका समिति का नियुक्तियो के समय अनावश्यक हस्तक्षेप एव देख-रेख में लापरवाही और राजनेताओ की स्वार्थपरक नीति का था ।

× × ×

श्री अरहत जैन इसी नगर के शासकीय शिक्षा-सस्थान की माध्यमिक शाला के निवर्तमान प्रधानाध्यापक थे । यद्यपि उन्हे अपने जमाने का एक सफल प्रधानाध्यापक कहा जा सकता था, क्योंकि उन्होने अपने परिश्रम, प्रतिभा और नैतिकता के बल पर छात्रो मे तो एक अच्छे प्रधानाध्यापक की पहचान बना ही ली थी, जनता मे भी जनप्रिय हो गये थे । पर सहायक अध्यापको से अपेक्षित सहयोग न मिल पाने के कारण उनके कठिन परिश्रम का पूरा लाभ छात्रो को नही मिल पाता था । इस कारण उन्हे मन मे असतोष भी बना रहता था, परन्तु परिस्थितियाँ ही कुछ ऐसी बन गई थी कि वे सम्पूर्ण समर्पण के बाद भी कुछ कर नही पा रहे थे ।

जब भी वे अपने अधीनस्थ अध्यापकों पर कुछ कठोर अनुशासनात्मक कार्यवाही करते तो अध्यापकगण लापरवाही से प्रतिक्रिया प्रगट करते हुए यह कहकर उनका सामना करने को तैयार हो जाते कि "बहुत करेगा तो स्थानान्तरण ही तो करा सकता है, कोई जान थोडे ही ले लेगा।"

"बात भी सच थी । स्थानान्तर कराने के सिवाय वे बेचारे उन अकर्मण्य अध्यापकों का कर भी क्या सकते थे ? जिसके भय से कुछ सुधार की सभावना हो । और स्थानान्तरण से भी क्या होने वाला है ? साँपनाथ जायेगे तो नागनाथ आयेगे । उन्हे क्या फर्क पडने वाला था ? अत वे हताश होकर बैठ गये थे और शान्ति से अपना समय व्यतीत कर रहे थे । उनकी सेवानिवृत्ति के भी केवल दो वर्ष ही शेष बचे थे, अत उन्होने शेष समय को शान्ति से निकालने का मानस बना लिया था तथा उन्होने अपने बेटे प्रो ज्ञान को भी यही सलाह दी थी कि — "यद्यपि इन परिस्थितियो मे अब शिक्षा जैसा पवित्र कार्य करना अपने बूते की बात नही रही, पर परिस्थितियो से घबडा कर पलायन करना, पीछे हटना भी तो कायरता होगी । अत मेरी सलाह मानो तो कोई ऐसा उपाय सोचो, जिससे शिक्षक अपने कर्तव्यो के प्रति पूर्ण जागरूक रहने लगे और शिक्षण का पूरा कायाकल्प हो जाय ।"

ज्ञान के कानो मे उसके पिता श्री अरहतदास के ये शब्द गूज ही रहे थे कि इसी बीच सेठ लक्ष्मीकात द्वारा प्रस्तावित योजना से श्री अरहंतदास की कल्पनाओ को साकार रूप मिल गया था ।

बस, फिर क्या था अरहतदासजी ने अपने सपनो के अनुरूप एक आदर्श शिक्षा सस्थान की स्थापना कर डाली तथा ज्ञान को भी इसी क्षेत्र मे कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया ।

यद्यपि ज्ञान की इच्छा इस क्षेत्र मे कार्य करने की नहीं थी, क्योकि वह उस विद्यालय की हालत देख चुका था, जिसमे वह स्वय पढ़ा था, परन्तु वह एक तो पिता का आज्ञाकारी पुत्र था, दूसरे स्वय भी इस क्षेत्र मे कुछ आदर्श प्रस्तुत करने की भावना रखता था एव पिता के भावनाओ को भी साकार करना चाहता था ।

इसकारण शिक्षा समाप्त होते ही वह नव स्थापित आदर्श शिक्षा सस्थान के महाविद्यालय मे दर्शन विभाग का प्राध्यापक बन गया ।

प्रो ज्ञान ने उसी शासकीय शिक्षालय मे शिक्षण प्राप्त किया था, जो शिक्षालय के नाम पर कलक था, जिसकी दशा दयनीय थी । जिसमे प्रधानाध्यापक के पद पर काम करते हुए अधिकारियो और सहयोगी अध्यापकों को अकर्मण्य ता के कारण श्री अरहंतदास चाहते हुए भी शिक्षण मे कुछ भी सुधार नहीं कर पाए थे । फिर भी ज्ञान ने अपनी प्रतिभा व परिश्रम के बल पर आदि से अन्त तक सभी कक्षाओ मे प्रथम श्रेणी प्राप्त की थी ।

यद्यपि उसका मित्र विज्ञान अपने पिता सेठ लक्ष्मीकात की मृत्यु के बाद उस नव स्थापित आदर्श शिक्षा सस्थान का संस्थापक अध्यक्ष बन गया था । अत यदि ज्ञान चाहता तो विज्ञान से कहकर एक-एक अध्यापको की असलियत का भडाफोड करके उन्हें मनचाहा दण्ड दिला सकता था, पर वह इस बारे मे विज्ञान की पुरानी मित्रता का लाभ नही उठाना चाहता था, इस कारण चुप रहता था ।

पर, विद्यार्थी अवस्था मे उसने "वर्तमान शिक्षा-पद्धति के गुण-दोष एव वर्तमान शिक्षा नीति मे क्रातिकारी परिवर्तन की आवश्यकता" जैसे विषयो पर हुई भाषण एव निबन्ध प्रतियोगिताओ मे भाग लिया था । इस कारण उसका इस विषय पर गहन चिन्तन था । और पतनोन्मुख सस्थान को पुन प्रगतिशील बनाने की योजना भी उसके मस्तिष्क मे थी, पर अभी वह उस अवसर की तलाश मे था, जब उसे कुछ कर दिखाने का अवसर मिले, अधिकार मिले । वह ऐसे घोडे पर बैठना पसद नहीं करता था, जिसकी लगाम दूसरो के हाथ मे हो ।

उप प्राचार्य पद पर पहुँचने के बाद और अपनी योग्यता से व्यवस्थापिका समिति की नजरो मे चढ़ने के उपरान्त प्रो ज्ञान ने शिक्षा मत्री से लेकर शिक्षा शास्त्रियो तक सभी को एक ज्ञापन लिखकर भेजा, जिसमे उसने लिखा कि — "आज के होनहार बालक ही तो कल के भारत के भाग्य विधाता, राष्ट्र के नायक और देश के भावी कर्णधार बननेवाले हैं ।

इन हरे बास की भाँति मनचाहे मुडने योग्य, कोमलमति नन्हे-मुन्ने बालको के चरित्र निर्माता, उनमे नैतिकता के बीज बोने वाले गुरुजन कैसे होने चाहिए । वर्तमान सदर्भ मे यह बात गम्भीरता से विचारणीय है ।

वर्तमान मे प्राथमिक शालाओ के अधिकाश अध्यापक बहुत साधारण योग्यता के होते हैं । न उनका कोई अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व, न उनमे कोई प्रतिभा । वस्तुत उनमे से अधिकाश मे तो गुरु बनने जैसा गौरव ही नहीं होता ।

उन्हें न्यूनतम योग्यता के आधार पर नियुक्तियाँ दे दी जाती है। यही एक ऐसा क्षेत्र है, जिसमे सबसे कम भीड है । जब कही काम नही मिलता तो लोग यहाँ आते हैं ।

आप स्वय ही सोचे कि छट-छटकर बचे हुए लोग कैसे होते होगे ? क्या ऐसे व्यक्तियो को उन कोमलमति बालको के गुरुत्व का गुरुत्तर भार सौपा जा सकता है ? नही, कदापि नहीं । पर, सौप दिया जाता है ।

सौपने के बाद यह देखने की फुरसत भी किसी को नही मिलती कि उन बालको के बहुमूल्य जीवन के साथ क्या/कैसा खिलवाड हो रहा है ?

उन अध्यापकों मे भी अधिकाश को तो अपने साइडबिजनेस — पार्ट टाइम जॉब और गाँवो मे पचो-सरपचो तथा अधिकारियो के आगे-पीछे फिरने के कारण बालको को पढ़ाने का समय ही नही मिलता । वे साइडबिजनेस न करें तो उनका खर्च कैसे चलेगा ? सरपचो आदि की खुशामद न करें तो नौकरी सुरक्षित कैसे रह सकेगी ? उन्हें पढ़ाने-लिखाने मे उत्साह भी नही होता, क्योंकि उनमे न वैसी योग्यता है और न वैसी रुचि ।

जिनका वेतन बैक के चपरासियों से भी कम हो, उन पदो पर कोई खास मजबूरी के बिना प्रतिभाशाली बुद्धिमान व्यक्ति क्यों आयेगा ?

जबकि शिक्षण के क्षेत्र में सर्वाधिक बुद्धिमान और प्रतिभावान व्यक्ति आना चाहिए, क्योंकि अध्यापक न केवल अक्षर ज्ञान देनेवाला एक सामान्य व्यक्ति होता है, बल्कि वह बालको के चतुर्मुखी व्यक्तित्व का विकास करनेवाला एव उनके चरित्र का निर्माता भी होता है ।

यदि एक इन्जीनियर भूल करेगा तो कोई बडा अनर्थ होने वाला नहीं है, उसकी भूल से कुछ मकान, पुल या बाध ही ढहेंगे, एक डॉक्टर भूल करेगा तो भी कोई बडी हानि नहीं होगी, केवल थोडे से बीमार ही परेशान होंगे, एक मैनेजर भूल करेगा तो कोई कलकारखाना या मिल ही घाटे में जायेगा और कोई सी.ए. भूल करेगा तो थोडा-बहुत हिसाब ही गडबडाएगा; परन्तु यदि अध्यापक भूल करेगा तो पूरे राष्ट्र का ढाँचा ही चरमरा जायेगा, क्योंकि अध्यापक भारत के भावी भाग्य-विधाताओं के चरित्र का निर्माता है, कोमलमति बालकों में नैतिकता के बीज बोनेवाला और अहिंसक आचरण तथा सदाचार के संस्कार देनेवाला उनका गुरु है । अतः उसे न केवल प्रतिभाशाली, बल्कि सदाचारी और नैतिक भी होना चाहिए ।

गुरु जैसे गरिमामयी पद पर सामान्य व्यक्तियो को नहीं चुना जाना चाहिए । डॉक्टरो और इन्जीनियरो से अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान अध्यापको को मिलना चाहिए और इस क्षेत्र मे उनसे भी कहीं अधिक प्रतिभाशाली और बुद्धिमान व्यक्तियो का चयन होना चाहिए, क्योंकि यहाँ भौतिक वस्तुओ के बिगडने-सुधरने की बात नही है, यहाँ तो चेतन-आत्माओ को सस्कारित करने का महत्त्वपूर्ण प्रश्न है ।

एतदर्थ डॉक्टरो, इंजीनियरो जैसी ही सब सुविधाये और आकर्षक वेतनमान अध्यापक को भी आवश्यक है, अन्यथा अच्छे प्रतिभाशाली लोग इस क्षेत्र मे नहीं आयेगे । कम से कम प्रथम श्रेणी से नीचे स्तर के व्यक्ति को तो अध्यापक होना ही नही चाहिए ।

पर पता नही शासन क्या सोचता है ? वह शिक्षा के इस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र मे सबसे निम्न स्तर के लोगों को क्यो ले लेता है ? जो अन्य

किसी काम के योग्य नही माने जाते । न जाने उन्हें छोटे-छोटे बालको को अध्यापन के योग्य क्यो मान लिया जाता है ? जबकि इन्हे तो अत्यन्त कुशल, मनोवैज्ञानिक, मननशील और जागरूक अध्यापको की आवश्यकता है ।"

प्रस्तुत ज्ञापन द्वारा ज्ञान ने बडी विनम्रता से दृढ़ सकल्प के साथ शासन का ध्यान इस ओर आकर्षित किया ।

यदि शिक्षा विभाग ने ज्ञान के इस ज्ञापन पर ध्यान दिया तो निश्चित ही शिक्षण-सस्थाओ का कायाकल्प हो सकता है ।

× × ×

जो भी सगठन, सस्था या व्यक्ति अपने पसीने की कमाई से प्राप्त धन का सदुपयोग करके शिक्षाकेन्द्र स्थापित करता है, वह उसके माध्यम से कोई ऐसा लोक-कल्याणकारी कार्य करना चाहता है, जिससे आगामी पीढी का लौकिक और पारलौकिक जीवन सुखी हो ।

यदि उसका यह प्रयोजन पूरा न हो तो केवल अर्थकारी लौकिक शिक्षा के लिए वह इतना भारी खर्च वहन क्यो करे ? और इतनी भारी व्यवस्था का भार भी अपने ऊपर क्यो ले ? वह काम तो शासन स्वय ही करता है और शासन उसके लिए प्रतिबद्ध भी है ।

निजी सस्थाओ की रीति-नीति और उद्देश्यो से शासन न तो कभी अनभिज्ञ ही रहा है और न भ्रमित ही । फिर भी शासन अधिकतम निजी शिक्षा केन्द्रो की स्थापना और सचालन को प्रोत्साहित करता है। न केवल प्रोत्साहित करता है, बल्कि उन्हें अधिकतम अनुदान भी देता है ।

इससे स्पष्ट है कि शासन न तो नैतिक शिक्षा, भारतीय सस्कृति एव सभ्यता का विरोधी है और न अहिंसक आचरण एवं आध्यात्मिक विचारो का निषेधक ।

यदि कोई शिक्षा-सस्था लौकिक पढाई के साथ छात्रो मे सदाचार के सस्कार डालने का महान कार्य करती है, उनमें भारतीय सस्कृति

और सभ्यता का बीजारोपण करती है, उन्हें नैतिकता का पाठ पढ़ाती है, भगवान महावीर जैसे परम पुरुष के द्वारा निरूपित अहिंसा और अपरिग्रह के सदेश द्वारा देश मे शांति और समाजवाद लाने का वातावरण बनाती है, तो वह राष्ट्रोन्नति मे प्रशसनीय और अभिनन्दनीय सहयोग ही तो करती है ।

भला, ऐसे कार्यो मे शासन को ही क्या, किसी भी जाति या वर्ग को क्या विरोध हो सकता है ? यदि ऐसा करने मे कोई सस्थान या अधिकारी सकोच करता है या हाथ खींचता है सो यह तो उसकी स्वय की ही कमजोरी है, इसमे शासन का कोई दोष नही है ।

पर पता नही, अभी तक हमारी अधिकाश निजी शिक्षा-सस्थाये अपने इन उद्देश्यो मे सफल क्यो नही हो पायी है ? वे अपने मन ही मन भले ही खुश हो ले कि वे शिक्षा के क्षेत्र मे बहुत कुछ उल्लेखनीय कार्य कर रही है, पर जो कुछ भी वे वर्तमान मे कर रही है, उसमे शासन का बोझ अपने माथे पर ढोने के सिवाय समाज का अपना कुछ भी नही है ।

इस सदर्भ मे ईसाई मिशन की शिक्षा-सस्थाओ से प्रेरणा ली जा सकती है । वे उत्तम शिक्षण के साथ छात्रो मे ईसाई सस्कृति के सस्कार डालने से कभी नही चूकती । ●

४

यद्यपि सुदर्शन के पिता नगर के नामी एडवोकेट थे और उनकी वकालत भी सबसे अच्छी चलती थी, पर वे नहीं चाहते थे कि उनका बेटा सुदर्शन भी वकालत का ही व्यवसाय करे, क्योंकि उन्हें इस बदनाम सुदा व्यवसाय से घृणा हो गई थी ।

प्रतिदिन दिन मे अनेक बार पुराण, कुरान और बाइबिल पर हाथ रखकर सत्य बोलने की शपथ के साथ सम्पूर्णत असत्य का सहारा लेते-लेते वे ऊब चुके थे, अन्दर से टूट चुके थे ।

न जाने कितने निरपराधियों को वे जेल भिजवा कर उनके बाल-बच्चों की बद्दुआये ले चुके थे । और अपनी झूठी जीत पर मानो स्वय ही हस रहे हों — ऐसी नकली हंसी-हसकर लोगो को मूर्ख बनाया करते थे ।

अपनी बुद्धि के बल पर सबल कुतर्को से अनगिनत अपराधियो को अभयदान दिला चुके थे, जो उनके किताबी कानूनो की साया मे सीना ताने नगर मे मार-पीट, लूट-खसोट, तोड-फोड से लोगो को आतंकित कर अपनी दादागिरी का रौब जमाये हुए थे ।

अब तक वे जवानी के जोश मे होश खोकर अन्य साधारण वकीलो की दौड मे आगे निकलने के लिए नीति-अनीति की परवाह किये बिना दौड रहे थे। पर विवेक जागृत होते ही इस झूठे यश और धन के लोभ की पराकाष्ठा ने अब उन्हे झकझोर दिया था, अब वे आत्मग्लानि से भर चुके थे । अत अब वे किसी भी कीमत पर अपने बेटे को इस पाप की दल-दल मे नही फसने देना चाहते थे ।

इसी कारण उन्होने सुदर्शन को बचपन से ही नैतिक शिक्षा और धार्मिक संस्कार दिए थे और उसे अधिकतम धार्मिक वातावरण मे रखने का प्रयास किया था ।

× × ×

स्नातक होने के बाद जब सुदर्शन ने अपने पिताश्री से एलएल बी मे एडमीशन लेने की अनुमति मागी, वकालत का ही व्यवसाय करने की इच्छा प्रगट की तो उसके पिता ने उसे मार्गदर्शन देते हुए कहा कि – "बेटा । क्यो न तुम पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही पुरानी लीक को छोडकर कोई नया नैतिक व्यवसाय चुन लो, कोई सीधा-सच्चा काम कर लो ? यदि मेरी सलाह मानो तो काली करतूतों को अपने दामन मे छिपानेवाला यह कालाकोट तुम पहनो ही नहीं । मेरी सलाह तो यही है, फिर तुम स्वय समझदार हो और स्वतत्र निर्णय लेने की क्षमता अब तुममे आ गई है, अत मै बाध्य तो नहीं करता, पर एक पिता के नाते जो कुछ कहना था, मार्गदर्शन देना था, सो दे दिया है ।

× × ×

सुदर्शन एक स्वतत्र विचारक और बुद्धिमान तो था ही, साथ ही समय-समय पर पिता द्वारा प्राप्त सदाचारी सस्कारो से उसके विचार और भी परिमार्जित हो गये थे । अत उसने पिता की पवित्र भावनाओ का सम्मान करते हुए कहा – "पापा । यद्यपि आपके सामने 'छोटे मुँह बडी बात' कहते हुए मुझे सकोच होता है, पर इस-विषय मे समय-समय पर प्रगट हुई आपकी भावनाओ पर मैने काफी सोचा-विचारा है और मै इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि – काम कोई भला-बुरा नहीं होता, भलाई-बुराई होती है व्यक्ति के विचारों में । यदि विचार नैतिक है तो हर काम नेक है, भला है और यदि विचारो में अनैतिकता है, लोभ-लालच है, स्वार्थभावना है, परिणामों में निर्दयता व क्रूरता है, लडाने-भिडाने में ही जिसे आनन्द आता है तो वह कोई भी काम क्यों न करें, उस काम को तो बदनामी मिलनी ही हैं ।

आप ही सोचिए न ! ढोगी और पाखडियो के हाथ मे पडकर पूजा-पाठ, धर्म-ध्यान और प्रवचन जैसे पवित्र काम भी ढोग और पाखड के नाम से बदनाम हो रहे हैं । इसमे काम का क्या दोष है ? केवल गलत हाथों मे पडने से ही ये काम बदनाम हुए हैं न ? यही स्थिति वकालत

की हैं । अन्यथा इस व्यवसाय में तो हम उल्टे सच बोलने के लिए बाध्य हैं; क्योंकि जिन्हे पुराण और कुरान की साक्षी पूर्वक सच बोलने की प्रतिज्ञा कराई जाती है, वह और उसका सलाहकार असत्य कैसे बोल सकता है या बुलवा सकता है?

वकील का काम तो केवल इतना ही है न कि वह न्यायकर्ता और न्याय माँगने वाले के बीच दुभाषिये का काम करे और सत्य पक्ष को उजागर करने मे न्यायाधीश की मदद करे ?

यह कौनसी कानून की किताब मे लिखा है कि — "वकील धन बटोरने के लिए वादी-प्रतिवादियो को झूठे-सच्चे आश्वासन दे-दे कर मुकदमे लडवाए और मनमानी फीस वसूल करे ? तथा झूठ को सच और सच को झूठ करने मे अपनी शक्ति और जनता के धन का अपव्यय करे ?

अत पापा । मै इसी व्यवसाय को करके यह बता देना चाहता हूँ कि वकालत का काम एक निहायत पवित्र पेशा है, और यह काला कोट काली करतूतो को छिपाने का साधन नही, बल्कि सूरदास की उस काली कामरी का प्रतीक है, जिस पर कृष्ण भक्ति के रग के सिवाय दूसरा रंग नहीं चढता था । अत मेरे इस काले कोट पर भी अन्याय, अनीति, बेईमानी और धन के लालच का कोई रग नही चढ सकेगा।

× × ×

बस, इसी सकल्प के साथ सुदर्शन ने अपने पैतृक व्यवसाय को ही पसद किया था । भले ही उसने अपनी पूर्व पीढ़ी से चले आये व्यवसाय मे परिवर्तन नहीं किया, पर उसमे उसने आशातीत प्रगति की ।

व्यवसाय मे परिवर्तन करके वह पलायनवादी प्रवृति को प्रोत्साहन नहीं देना चाहता था । उसका सोचना था कि रणछोडदास बनने के बजाय न्यायनीति से रण करना ठीक है ।

अन्तर-बाह्य व्यक्तित्व का धनी सुदर्शन देखने मे सुदर्शन तो था ही, सत्यप्रिय, सदाचारी और धर्मप्रेमी भी था ।

वकालत का व्यवसाय होने पर भी सत्य के प्रति इतनी निष्ठा अपने आप मे असाधारण बात है । कोई कितनी भी फीस का प्रलोभन क्यों न दे? पर वह झूठे मुकदमे कभी स्वीकार नहीं करता, फिर भी उसके पास इतने मुकदमें आते कि वह अस्वीकार करते-करते हैरान हो जाता।

जिसे सच्चा न्याय दिलाने से ही फुरसत नहीं मिलती हो, वह झूठे मुकदमे ले ही क्यो ? सच को झूठ और झूठ को सच करने में अपनी शक्ति का अपव्यय और वादी-प्रतिवादी के पैसो का अपव्यय करने में उसका विश्वास नहीं था ।

वह महत्त्वपूर्ण मामले ही लेता था । बहुत से छोटे-मोटे झगडे तो वह दोनो पक्षों को बुलाकर उन्हें मुकदमो से होने वाली हानियाँ और परेशानियाँ समझाकर परस्पर समझौतावार्ता से स्वयं ही निबटा देता था । कभी किसी को गलत सलाह नही देता । बिना कारण किसी को उलझन में नही डालता । इस कारण भी उसकी लोकप्रियता मे चार-चाँद लग गये थे ।

× × ×

रविवार का दिन था, सुदर्शन मन्दिर से सामूहिक पूजन का कार्यक्रम समाप्त करके प्रात ९ ३० बजे घर लौटा ही था कि ज्ञान और विज्ञान सुदर्शन के घर जा पहुँचे । सुदर्शन ने दूर से ही उन्हें देखकर चार कदम आगे बढ़कर स्वागत करते हुए कहा – "आओ, भाई ज्ञान आओ।" फिर विज्ञान की ओर दृष्टि घुमाते हुए सुदर्शन ने कहा – "ओ हो! विज्ञान । नमस्ते मि विज्ञान । तुम तो बहुत दिनों बाद दिख रहे हो? किस दुनिया मे रहते हो आजकल ?

"हाँ, आप ठीक कह रहे हो, पर बात यो हुई कि पिताश्री की अस्वस्थता के कारण मैने ग्रेजुएशन करके पढ़ाई तो छोड दी, पर घर आते ही कारोबार संभालने में कुछ ज्यादा ही व्यस्त हो गया, इस कारण इन दिनो कहीं आना-जाना नहीं हुआ, अब थोडी फुरसत मिलने लगी

तो मैंने सोचा – 'चलो अपनी पुरानी मित्र-मडली से भी मिल लूँ । इच्छा तो बहुत दिनो से थी पर ......"

विज्ञान की बात पूरी हुई ही नहीं थी कि ज्ञान हंसी के मूड मे आते हुए सुदर्शन से बोला – "मित्र । तू भी किस नास्तिक से नमस्ते कर बैठा !"

सुदर्शन ने कहा – "क्यो ऐसी क्या बात है ? विज्ञान और नास्तिक ?"

"हाँ, पूरा नास्तिक है, न आत्मा मे विश्वास, न परमात्मा मे, न खान-पान का विवेक, न दिन-रात का विचार, जब जो जी मे आये खाओ-पीओ और सुख से जिओ – ये हैं इसके विचार । विश्वास न हो तो तुम ही पूछ लो" – विज्ञान ने कहा ।

सुदर्शन बोला – "क्यो भाई विज्ञान । यह ज्ञान क्या कह रहा है ?"

"वैसे तो लगभग ठीक ही कह रहा है, पर मुझे इस सम्बम्ध मे तुमसे और ज्ञान से भी बहुत कुछ बाते करनी है ।" – विज्ञान ने कहा ।

ज्ञान ने कहा – "देखो । मैने कहा था न ? कि अभी यह नमस्ते तो क्या आशीर्वाद का भी पात्र नही है । अभी तो इसे पहले ज्ञानगगा मे गहरी डुबकियाँ लगवाकर स्नान कराना पड़ेगा, तब कही यह अपने साथ उठने-बैठने लायक होगा । यह इंगलिश स्कूल मे जाकर तो बिल्कुल ही नास्तिक हो गया है । नमस्ते तो जयजिनेन्द्र से भी उँचा अभिवादन है ।" 'वीतरागाय नम', 'महावीराय नम' की तरह ही 'ते नम' शब्द से नमस्ते बना है, जिसका अर्थ पूज्य पुरुषो को नमन करना होता है । समझे ?

विज्ञान ने कहा – "प्रोफेसर साहब समझाये और हमारी समझ मे न आये – ऐसा कैसे हो सकता है ? समझाओ, समझाओ, और क्या समझाना है । तुम तो सब लोग मिलकर मुझे चाय-पानी की जगह उपदेश ही उपदेश पिलाओ । दार्शनिक जो ठहरे ।

"अरे मित्र । बातो-बातों मे, मैं पानी पिलाना और चाय, काफी की पूछना तो भूल गया । क्षमा करना मित्र ।" — कहते हुए सुदर्शन ने नौकर को आवाज लगाते हुए कहा — "रामू ओ रामू । पानी तो ला ।"

खडे होकर अपने हाथो से पानी के गिलास देते हुए सुदर्शन ने पूछा — "क्यो भाई। और क्या चलेगा ? चाय, काफी या दूध ? ज्ञान तो चाय, काफी लेगा नही, यह तो दूध लेगा । पर विज्ञान । तुम अपनी पसद बताओ ।"

ज्ञान बीच मे ही बोला — "यह गरम तो बहुत हो लिया, इसे तो ठडा करने की आवश्यकता है, यदि कोई ठंडा पेय हो तो इसे तो वही पिलाओ । क्यो विज्ञान। मैने ठीक कहा है न ?"

"अरे ज्ञान । हमारा क्या, जो पिलाओगे वही पी लेगे" — विज्ञान ने लापरवाही से कहा ।

सुदर्शन ने मजाक करते हुए कहा — "देखो भाई । तुम भले ही कुछ भी पी सकते हो, पर यहाँ तो अभी आपको दूध-चाय और काफी ही मिल पायेगी । यद्यपि तुम मेरे मित्र ही नही मेहमान भी हो, अत मुझे ऐसा नही कहना चाहिए पर ।"

विज्ञान ने कहा — "अरे मित्र । मित्रता मे मेहमानी कैसी ? मित्र कभी मेहमान नहीं होता । मित्र तो सदा मित्र ही रहता है । मित्र के आगे मेहमान का मूल्य ही क्या ? तुम मुझे मेहमान बनाकर अपने से दूर मत करो । क्या तुम यह नही जानते कि मित्र और मेहमान मे मौलिक अन्तर होता है ?"

मित्र और मेहमान की आपस मे कोई तुलना ही नहीं है । एक पूर्व है तो दूसरा पश्चिम । मित्र के साथ कोई दुराब-छिपाव नहीं होता, दिलों की दूरी नही होती, दोनों की देह दो होती है और दिल एक।

जबकि मेहमान के साथ होता है औपचारिकताओं का पूरा पुलिंदा, उसके सामने घर की कोई कमजोरी जाहिर नहीं की जा सकती, उसके

आतिथ्य-सत्कार मे कोई कमी नहीं रहनी चाहिए, मन-मस्तिष्क पर ऐसा बोझ बना रहता है । भले ही तुम्हें उधार ही क्यो न लेना पडे, पर मेहमान का स्वागत-सत्कार तो . । जब कि मित्र के साथ ऐसी कोई चिन्ता नही रहती ।

मेहमान भले प्यासा बैठा रहेगा, पर पानी माँगकर नहीं पियेगा और मित्र चौके मे जाकर अपने हाथ से भी चाय बनाकर पी लेगा ।

और सुनो । मित्र कभी किसी बात का बुरा नही मानता और मेहमान यदि बात-बात मे बुरा न माने तो वह मेहमान कैसा ? नाराज होना और मनवाना तो मेहमान का जन्मसिद्ध अधिकार है ।

अत तुम मुझे मित्र ही रहने दो – "मेहमान मत बनाओ, मेरा चौके मे जाने का अधिकार तुम मुझसे नही छीन सकते ।"

ज्ञान ने हँसी के मूड मे आकर विज्ञान से कहा – विज्ञान । तूने मित्र और मेहमान की कैसी सुन्दर व्याख्या की ? मै तो तुझे विज्ञान का सामान्य विद्यार्थी समझ रहा था, पर तू तो पूरा दार्शनिक निकला। मौलिक चिन्तन मे भी मुझसे दो कदम आगे निकल गया ।

× × ×

विज्ञान ने कहा – "खैर । जाने दो मित्र । प्रशसा करके मुझे बिना बात चने के झाड पर क्यो चढाते हो ?

"प्रशसा की बात तो है ही, साथ ही जो सत्य है उसे, कहे बिना भी तो नही रहा जा सकता ।" – ज्ञान ने कहा ।

बात को बदलते हुए विज्ञान बोला – मुझे अभी-अभी ज्ञान ने बताया कि तुम लोगो के खाने-पीने के भी बडे नखरे है । आलू नही खाते, प्याज नही खाते, मूली आदि कोई भी जमीकद नही खाते, आचार-मुरब्बा नही खाते, बाजार का बना हलुआ, मिठाई आदि नहीं खाते, रात मे नही खाते और पता नहीं क्या-क्या नही खाते-पीते ? ऐसा क्यो ? आखिर यह सब क्या नाटक है ? इसमे तुम्हारा क्या सिद्धान्त हैं ?

अरे । जो जब जी में आये खाओ-पीओ और सुख से जिओ । व्रत, उपवास करके और पौष्टिक पदार्थों का त्याग करके शरीर को क्यो सुखाते हो ? आखिर ये भी कोई जीवन है ? न कोई मनोरंजन, न कोई मौज-मस्ती । धर्म के नाम पर किस पाखडवाद के चक्कर मे पड गये हो ? अरे । तुम पूजा-पाठ का ढोंग रचने के बजाए जनता की सेवा करो । सेवा ही सच्चा धर्म है ।"

विज्ञान बैठक मे बैठा-बैठा ज्ञान से यह कह ही रहा था कि इसी बीच सुदर्शन अन्दर से बैठक मे आ गया और उसने मेहमान की मर्यादा रखते हुए मित्र के नाते विज्ञान से जरा ऊँचे स्वर में कहा – "विज्ञान। ज्ञान का सदाचारी, नैतिक और धार्मिक जीवन आखिर तुझे पाखण्ड-सा क्यो लगता है? और यदि पत्थर पूजने मे कुछ नही हैं तो तू कागज के टुकडो को क्यो पूजता है ?"

विज्ञान ने विस्मय भाव से कहा – "क्या कहा ? मै कागज के टुकडे पूजता हूँ, किसने कह दिया यह तुम से?"

सुदर्शन ने कहा – "कहेगा कौन ? मैने अपनी आँखो से देखा है ।"

"कब" ? विज्ञान ने फिर विस्मय भाव से पूछा ।

सुदर्शन ने दृढ़ता के साथ कहा – "कब क्या ? तू अपने दादाजी के फोटो पर नित्य नई-नई बहुमूल्य मालाये पहनाता है या नही ?"

विज्ञान ने कहा – "हाँ, डालता हूँ, पर इससे तुम्हें क्या लेना-देना है? तुम्हें पता नही, मेरे दादाजी के मेरे ऊपर कितने उपकार हैं ? वे मुझ से कितना प्यार करते थे ? मै आज जो भी है उनकी कृपा से हूँ । अत' उनकी मै जितनी भी कृतज्ञता ज्ञापित करूँ, कम ही है । पर तुम पूजा-पाठ की बातचीत के बीच मे मेरे दादाजी को क्यों घसीट लाये ?"

सुदर्शन ने कहा – "अरे विज्ञान । तुम्हारे दादाजी ने तो केवल चार-पाँच वर्ष ही तुम से प्यार किया और तुम्हारी देख-भाल की तथा

शिक्षाप्रद पौराणिक कथाये सुना-सुना कर सु-सस्कार डाले । जब इतने मात्र से तुम्हारी उन पर ऐसी भक्ति और इतना प्रेम उमडता है कि तुम उनकी फोटो पर प्रतिदिन नियमित रूप से एक से बढकर एक चन्दन की मालाये पहनाते हो तो जिन तीर्थंकरो ने हमारे अनन्त काल के अनन्त दु:ख दूर करने का सन्मार्ग दिखाया हो, हम यदि उनकी मूर्ति बनाकर पूजा-भक्ति करते हैं, तो तुम्हे हमारा यह कार्य ढोग-सा क्यो लगता है ?

सुदर्शन के तर्क ने विज्ञान की बोलती तो बन्द कर दी, उसे निरुत्तर तो कर दिया, पर अभी विज्ञान के हृदय को ज्ञान का पूजा-पाठ करना स्वीकृत नहीं हुआ ।

अत उसने कहा – "भाई । तुम कुछ भी कहो, परन्तु फोटो पर माला पहनाना मुझे जैसा स्वाभाविक लगता है वैसी स्वाभाविकता पूजा-पाठ मे नही लगती ।"

सुदर्शन ने पहले तो व्यग मे कहा – "हाँ, ठीक है तुम्हारा खून तो खून और हमारा खून पानी । खैर, कोई बात नही, यह तो मन माने की बात है । तुम अपने विचारो के लिए स्वतत्र हो । विचार स्वातत्र्य तो मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है ।"

सुदर्शन ने अब भी अपने मन से हार नहीं मानी, अत: उसने विज्ञान का समाधान करने की भावना से पुन कहा – "अरे भाई । जहाँ तक स्वाभाविक और अस्वाभाविक लगने की बात है सो उसका कारण तो यह है कि जैसा प्रत्यक्ष परिचय तुम्हारा पूर्वजो से है वैसा तीर्थकरो से नही। जब तुम पूर्वजो की भाँति ही तीर्थंकरो से और उनकी वाणी से भी प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त कर लोगे तो तुम्हे उनकी पूजा-भक्ति मे भी वैसी ही अनुभूति होने लगेगी ।"

सुदर्शन के तर्क और युक्तियों से विज्ञान कुछ हिल तो गया, पर अभी बदला बिल्कुल नहीं । •

५

चिन्ता हो या चिन्तन – नीद तो दोनो मे ही नहीं आती, पर चिन्ता से चिन्तन श्रेष्ठ है । चिन्ता एक मानसिक विकृति का नाम है और चिन्तन है विशुद्ध तत्त्वविचार । चिन्ता अशान्ति और आकुलता की जननी है और चिन्तन है निराकुलता और शान्ति का स्रोत । चिन्तायें चेतन को जलाती हैं और चिन्तन राग-द्वेष को, मन के विकारों को। चिन्ताओं के घेरे में आत्मा अनुपलब्ध रह जाता है और चिन्तन से होती है आत्मतत्व की उपलब्धि ।

अत विवेकीजन चिन्ताओ की राह छोडकर चिन्तन की राह ही पकडते हैं । तत्त्वचिन्तन ही सदैव आदरणीय है, अनुकरणीय है ।

× × ×

विज्ञान बिस्तर पर पडे-पडे बहुत देर तक सोने की चेष्टा करता रहा, पर वह चिन्ताओ के घेरे मे ऐसा उलझ गया था कि उसे रात्रि मे तृतीय प्रहर तक नीद नही आई । आती भी कैसे ? चिन्ता और निद्रा का तो परस्पर साँप और नेवले की तरह जन्मजात वैर-विरोध है ।

चिन्ताओ की परेशानी से बचने के लिए व्यक्ति अचेत हो जाना चाहता है, नीद की गोलियाँ खाकर भी सोना पडे तो भी सो जाना चाहता है ।

पर, आज विज्ञान की चिन्ता का विषय और कुछ नही, उसके स्वयं के अंधकारमय भविष्य को ज्योतिर्मय बनाना था, क्योंकि सुदर्शन ने और उसके फैम्ली डॉक्टर ने उसको उसकी यथार्थ स्थिति का बहुत अच्छी तरह आभास करा दिया था । इसकारण आज उसके मानस-पटल पर सुदर्शन और डॉक्टर के द्वारा दर्शाये गये उसके भावी जीवन के भयानक

दृश्य चलचित्र की भाँति एक के बाद एक उभर कर आ रहे थे और वह उनके सही समाधान की खोज मे चिंतित था ।

वह सोच रहा था – "सुदर्शन जो भी कहता है वह सब ठीक ही तो कहता है, उसकी बातें बिना सोचे-समझे यो ही अनसुनी करने लायक नही हैं । उसकी एक-एक बात विचारणीय है, अनुकरणीय है।

एक तो वह दुर्व्यसन छोडने और दुराचारियो से दूर रहने की सलाह देता है और दूसरे, देवदर्शन करने और समय पर प्रवचनो में पहुँचने का आग्रह करता है, इसके सिवाय वह और कहता ही क्या है ?

उसे तो देखो, कितने व्यस्त कार्यक्रम मे से वह इन कामो के लिए अपना समय निकाल लेता है । नया-नया वकील बना है, अत काम जमाने के लिए जनसम्पर्क करना भी जरूरी है और कानून की किताबे पढना भी अति आवश्यक है । प्रतिदिन सुबह-शाम कम से कम दो घण्टे बैठक मे बैठकर फाइले भी देखना और सम्बन्धित व्यक्तियो से बातचीत करना भी अनिवार्य है, फिर भी वह प्रतिदिन दर्शन-पूजन करने और प्रवचन सुनने से नहीं चूकता । इतना ही नही, मुझ जैसे मित्रो का मार्गदर्शन करने और सामाजिक समस्याओ को सुलझाने का समय भी वह निकाल ही लेता है ।

मै ही एक ऐसा व्यक्ति हूँ जो अपना सारा समय यो ही बिना काम की बातो मे बर्बाद करता रहता हूँ । 'मेरे पास समय नही, मुझे फुरसत नहीं' – यह तो केवल एक बहाना है । जिसकी जिस काम में रुचि होती है, उस काम के लिए तो उसके पास समय ही समय है । 'हाथ कगन को आरसी क्या ?' सुदर्शन को ही देख लो न । कितना व्यस्त है वह, फिर भी समय निकाल लेता है न इन कामो को ?

मेरे पास ऐसा काम ही क्या है ? धधा व्यापार तो सब पहले से ही जमा-जमाया है और मेरे सौभाग्य से काम-काज की देखभाल करने वाले कर्मचारी अपने काम के प्रति पूर्ण ईमानदार, अनुभवी एव

पूर्ण कुशल हैं । मैं घर का काम-काज देखता भी कितना हूँ ? फिर भी मैं कुछ नही कर पाता ।

वस्तुत: यह मेरी ही कमजोरी है, मै ही अपनी आदतों का दास हो रहा हूँ, इसमें किसी और को दोषी ठहराना ठीक नहीं है । मुझे स्वय ही चेतना होगा । मेरे हित मे जो सुदर्शन सोचता है, ज्ञान सोचता है, विद्या भी वही सब चाहती है । मेरी इन्ही आदतो के कारण वह मुझसे रूठी-रूठी-सी भी रहती है । और अब तो डॉक्टर साहब भी यही सलाह देने लगे हैं ।

वे उस दिन कह ही रहे थे – "यदि आपने मदिरा पान करना और सिगरेट पीना नहीं छोडा तो अब आप इस दुनिया मे अधिक दिन नही रह पायेगे । बात कुछ कठोर है, मुझे डाक्टर के नाते तो ऐसी निराशाजनक बात नही कहना चाहिए, पर मै एक मित्र के नाते आपको साफ-साफ बता देना चाहता हूँ कि आपकी आँते और लीवर जैसे महत्त्वपूर्ण अग मदिरा के क्षारतत्त्व से अत्यधिक प्रभावित हो चुके हैं । और सिगरेट के धुएँ से आपके फेफडे भी क्षीण हो चुके हैं । सोच लो । यदि जिन्दगी प्यारी हो तो अब यह सब छोडना ही पड़ेगा ।"

विज्ञान ने मन ही मन विचार किया – "ये सब मेरे कोई शत्रु तो है नही । लगता है मेरी बुद्धि पर ही पत्थर पड गये हैं जो मै किसी की कुछ सुनना ही नही चाहता – और अपनी ही मनमानी किए जा रहा हूँ ।"

डॉक्टर साहब यह भी तो कह रहे थे कि – "अभी भी ऐसा कुछ नही बिगडा, जिसका उपचार न हो सके, जो ठीक न हो सके। परन्तु यदि इसी तरह कुछ दिन और चलता रहा और 'पानी सिर पर से गुजर गया' तो फिर भगवान भी नहीं बचा पायेंगे तुम्हें, इतना अवश्य समझ लेना । समझदार को तो संकेत ही काफी होता है ।"

डॉक्टर की बाते सुन-सुन कर उनके वयोवृद्ध कम्पोडर चाचा से चुपचाप बैठा नहीं रहा गया और उन्होने भराये हुए गले से गद्-गद्

होकर ज्ञान और सुदर्शन के सुखी जीवन का उल्लेख करते हुए कहा — "देखो न विज्ञान । आज ज्ञान और सुदर्शन की घर मे, परिवार मे और समाज मे भी कितनी इज्जत है ? कितना आदर-सम्मान देते हैं लोग उन्हें ?

और एक तुम हो, जिससे कोई भला आदमी बात करना भी पसन्द नहीं करता । जबकि आज तुम्हारे पास भगवान का दिया सबकुछ है। क्या नही है तुम्हारे पास — कोठी, बंगला, मोटरगाडी, कल-कारखाने, नौकर-चाकर, मुनीम-गुमास्ते सभी कुछ तो है और तुम्हारी तुलना मे उन लोगो के पास क्या है ? कुछ भी तो नही है । न बगला, न गाडी, फिर भी लोग उनकी इज्जत करते है । सोचा कभी ? ऐसा क्यो हैं ?

इससे स्पष्ट है कि दुनिया मे आज भी गुणो का ही आदर है, धन-वैभव का नही । भले ही तुम धनी हो, पर तुम्हारे धन से दुनिया को क्या लेना-देना है । घोडे की पूँछ लम्बी होती है तो उससे वह अपनी ही मक्खी तो भगा सकता है, सवार को उसकी लम्बी पूँछ से क्या लाभ ?'

कम्पोडर चाचा ने आगे कहा — 'जो चन्द्रमा पर थूँकने की कोशिश करता है, सारा थूँक लौटकर उसके मुँह पर ही गिरता है न ? चन्द्रमा का उससे क्या बिगडता है ? कुछ भी नही ।

तुमने और तुम्हारे साथियो ने ज्ञान और सुदर्शन की हँसी भी उडाई, मजाक भी बनाया, अनादर और उपेक्षा भी की, तो भी वे तुमसे नाराज नही हुए, उससे उनका बिगडा भी क्या ? कुछ नही, उल्टे दुनिया की नजर मे तुम ही हँसी के पात्र बन गये ।

कितने भले आदमी हैं वे । कभी किसी की बुराई करना और कभी किसी पर क्रोध करना तो वे जानते ही नहीं है, और एक तुम लोग हो जो चौबीसो घण्टे अपनी स्वार्थ साधना मे ही लगे रहते हो । तुम्हें

तो अपने ऐशो-आराम और मौज-मस्ती से ही फुरसत नही है, तुम किसी का परोपकार क्या करोगे ?"

उस दिन उनकी बातो का विज्ञान के दिलो-दिमाग पर काफी असर हुआ ? वह चुपचाप घर चला गया ।

× × ×

उस रात्रि मे अपने शयन कक्ष मे पडे-पडे कम्पोडर चाचा की बातों पर विचार करते-करते ज्यो ही उसकी पलकें झपकी कि वह स्वप्नलोक मे विचरने लगा ।

स्वप्न मे उसने सुदर्शन को फिर सामने खडे देखा, जो कह रहा था – "विज्ञान । तू जिसे आधुनिक सभ्यता समझ बैठा है, वह सभ्यता नही, असभ्यता की पराकाष्ठा है । क्या सातो व्यसनों का सेवन करने का नाम ही सभ्यता है ? क्या माँस, मदिरा का सेवन करना ही सभ्यता है ? क्या 'कालगर्ल्स' के नाम से आहूत पराई बहिन-बेटियो की मजबूरी का ना-जायज फायदा उठाना और उन्हें सदा के लिए नरक के द्वार मे ढकेल देने का नाम ही सभ्यता है ?

अरे । ये दूसरो के नही, वरन् अपने नरक के द्वार खोलना है।

मै पूछता हूँ कि यदि यही सब सभ्यता है तो फिर असभ्यता क्या है ?

यदि कोई हमारी बहिन-बेटियो से ऐसा दुर्व्यवहार करे तो हमे कैसा लगेगा ? – जरा इस आइने मे झाक कर तो देखो । फिर तुम्हें जो ठीक लगे सो करो ।

अरे भाई । किसी ने ठीक ही कहा है – "आत्मन· प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत् अर्थात् जो अपने को अच्छा न लगे – ऐसा व्यवहार दूसरों के साथ मत करो ।"

सुदर्शन कहे जा रहा था और विज्ञान नीची गर्दन किए सुने जा रहा था ।

सुदर्शन ने समझाते हुए आगे कहा – "जरा सोचो, समझो, मैं तुम्हारा बालसखा हूँ, कोई शत्रु नहीं । इधर तुम्हे इस हालत में देखकर और उधर तुम्हारी पत्नी को तुम्हारी दुर्दशा के कारण दुःखी देखकर मुझे भारी वेदना होती है । बस, इसीलिए मैने तुमसे कठोर भाषा मे इतना सब कुछ कह डाला है । इस कारण यदि तुम्हारा दिल दुखा हो तो मेरे मित्र ! मुझे माफ कर देना ।"

सुदर्शन की अत्यन्त प्रेरणादायक बाते सुनकर विज्ञान पानी-पानी हो गया । उसकी आँखो से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी । पश्चाताप की अग्नि मे तपकर उसका हृदय बहुत कुछ परिवर्तित हो गया था इस कारण अब उसका मानस सुदर्शन की हर बात मानने को तैयार था, पर उसके सामने पहाड जैसी परेशानियाँ खडी दिखाई दे रही थी।

उसने साहस बटोर कर आँसू पोछते हुए सुदर्शन से कहा – "भाई। तुम्ही बताओ – मै करूँ तो करूँ भी क्या ? मै इस आधुनिक सभ्यता की दौड मे इतना आगे बढ चुका हूँ कि जहाँ से वापिस लौटने की मुझे कोई सभावना दिखाई नही देती ।"

कहते-कहते वह फूट-फूटकर जोर-जोर से रोने लगा । उसकी रोने की आवाज सुनकर उसके बगल मे सो रही उसकी पत्नी विद्या की नीद खुल गई । उसने विज्ञान को आज तक कभी रोते नही देखा था । इस कारण वह भी भावुक हो उठी और उसका भी गला भर आया । विज्ञान की पीठ पर प्रेम से हाथ फेरते हुए उसने धीरे से पूछा – "क्या बात है ? अभी तक सोये नही ? कोई भयानक स्वप्न देखा है क्या ? आज आपको यह क्या हो गया है ? पहले तो मैने आपको कभी ऐसा रोते नहीं देखा । ये आँखे लाल-लाल कैसे हो गई हैं ? आप तो महिलाओ की तरह फूट-फूट कर और सिसक-सिसक कर ऐसे रो रहे हो जैसे कोई महान अनर्थ हो गया हो, आखिर बात क्या है ? कुछ कहो भी तो ।"

एकसाथ अनेक प्रश्न सुनकर आँसू पोंछते हुए और सिसकियाँ सभालते हुए विज्ञान ने कहा – "विद्या ! मै क्या बताऊ मुझे क्या हो गया? बिचारे सुदर्शन और ज्ञान मेरी चिन्ता मे कितने परेशान रहते है, मेरे भले के लिए न जाने क्या-क्या सोचा करते हैं, क्या-क्या योजनायें बनाया करते हैं । कल मेरी उनसे अनायास भेंट हो गई, तो दोनो ने मुझे एक घण्टे तक समझाया और अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये । उनके कल के विचारो से मै बहुत ही प्रभावित हुआ हूँ ।

वहाँ से लौटते समय मैने सोचा – 'चलो, डॉक्टर साहब के यहाँ से एक्स-रे की रिपोर्ट ही लेता चलूँ – वहाँ गया तो डॉक्टर साहब ने जो कुछ कहा, उससे तो मेरी सारी हिम्मत ही टूट गई ।'

उन्ही सब समस्याओ के विकल्प मे उलझ जाने से मै अनेक सभावित-असभावित चिन्ताओ के घेरे मे घिरा रहा । बस इसी उधेडबुन मे रात के दो बज गये । जैसे-तैसे पलक झपके ही थे कि मे स्वप्न-संसार मे पहुँच गया और वहाँ फिर सुदर्शन से भेट हो गई । वह बहुत कुछ तो पहले प्रत्यक्ष मे समझा चुका था, रही-सही कसर उसने स्वप्न मे पूरी कर दी । उसे सुनकर मै इतना भावुक हो उठा कि वास्तव मे ही फूट-फूट कर जोर-जोर से रोने लगा हूँ ।

विद्या । सुदर्शन ने अभी-अभी स्वप्न मे मुझे जो मार्गदर्शन दिया है, उसने मुझे ऐसा झकझोरा है कि मेरी नींद तो खुल ही गई, हृदय की बंद आँखे भी खुल गई । उससे मुझे एक नया दिव्य प्रकाश मिला है ।

वैसे भी इन दिनो उन दोनो की मेरे ऊपर बहुत ही स्नेह भरी दृष्टि है । उन्हें जब-जहाँ भी अवसर मिलता है, मेरा मार्गदर्शन अवश्य ही करते हैं, परन्तु खेद है कि मे अब तक उनकी बातो पर कुछ भी ध्यान नही दे पाया हूँ ।"

धैर्य बधाते हुए विद्या बोली – "घबराओ मत । यदि तुम चाहोगे तो सब रास्ते निकल आयेगे । अभी तक तो तुम्हारी ही समझ में नहीं

आ रहा था, इसकारण कोई भी व्यक्ति तुम्हारी सहायता कैसे कर सकता था ? यदि तुम स्वयं स्वेच्छा से उन झंझटो से मुक्त होना चाहते हो, तो दुनिया मे कुछ भी असभव नहीं है । अभी तो सो जाओ। यदि इसी उधेड-बुन मे शेष रात और बीत गई तथा नीद पूरी न हो सकी तो सवेरे सिर दर्द करने लगेगा ।"

विज्ञान बोला – "ये तो ठीक है, पर यह भी बताओ – मै उन मित्रों से बचूँगा कैसे ? जिनके साथ मेरा व्यापारिक सम्बन्ध है, दिन-रात साथ-साथ उठना-बैठना है, लेन-देन का व्यवहार है, उनसे मिले बिना कैसे चलेगा ? अत अब मै चाहूँ तो भी उस दल-दल से नहीं निकल पाऊँगा । मै उनसे ना भी मिलूँ तो वे सब कोई न कोई बहाना सोचकर मेरे पास यहाँ आ धमकेंगे । और कुछ नही तो मेरी तबियत का समाचार पूछने के बहाने ही आ जावेगे । उनसे बचने का उपाय मेरी समझ मे नही आ रहा है । वे मुझे यो ही आसानी से छोडनेवाले नही है।

विद्या । मेरी स्थिति तो अब साप-छछूदर जैसी हो गई है, साँप मुँह मे दबाये हुए छछूदर को न तो निगल सकता है और न उगल सकता है । निगलता है तो पेट फटता है और उगलता है तो अन्धा हुआ जाता है ।

बस, इसी तरह यदि मैं उनका साथ छोडता हूँ तो भी मुसीबत, और नहीं छोडता हूँ तो भी मुसीबत । साथ छोडने पर पता नही वे क्या-क्या हथकन्डे अपनायेगे । सभव है वे मेरे साथ तुम्हें भी धर्मसकट में डाल दे ।"

साहस बटोरते हुए विद्या ने कहा – "तुम मेरी चिन्ता मत करो। मैं एक-एक की कमजोरी जानती हूँ । वे तुम्हारा संरक्षण पाकर ही बाहर घूमते दिखाई दे रहे हैं । तुम्हारे मित्र होने के कारण ही मैने उन पर कोई कानूनी कार्यवाही नही की, अन्यथा अब तक तो मैं उन्हे कभी की हवालात की हवा खिला देती ।"

विद्या ने बात जारी रखते हुए आगे कहा – "हाँ, तुम्हारा यह सोचना सही है कि वे तुम्हें आसानी से नहीं छोडेगे, क्योकि सोने के अण्डे देनेवाली मुर्गी को कोई भी आसानी से नहीं छोडता । पर, यदि तुम चाहोगे तो उसका भी उपाय मेरे पास है ।

पर अभी उनके छोडने न छोडने की बात ही कहाँ है ? अभी तो समस्या यह है कि तुम ही उनका साथ नही छोडना चाहते हो। क्यो मै ठीक कहती हूँ न ?"

—"नही, नही, ऐसी बात नही है विद्या । मैं तुम्हारे माथे पर हाथ रखकर प्रतिज्ञा कर चुका हूँ न ? कि अब मै उनका साथ नहीं दूगा । कोई भी कीमत क्यो न चुकानी पडे, पर अब मै उनके सग नही रहूँगा ।"

विज्ञान की भावुकता मे ली गई प्रतिज्ञा को पक्का कराने की नियत से विद्या ने कहा – "हे प्रियवर । भावुकतावश ये भीष्म प्रतिज्ञाये कर लेना एक बात है और उन्हें आजीवन निभाना दूसरी बात, अत पहले तुम अपने-आप को तो पक्का कर लो । तुम्हें पता है तुम्हारी ये भीष्मप्रतिज्ञाये पहले कितनी बार भग हो चुकी हैं ? वह तो मै ही हूँ, जो तुम्हारे साथ निभ रही हूँ । कोई और ऐसी-वैसी होती तो बेचारी कभी की बे-मौत मर गई होती ।"

"विद्या । तुम ठीक कहती हो । मैने तुम्हें बहुत सताया । एक तुम्ही हो जो आशा की ज्योति जलाये चुपचाप सब सहती रही, हिम्मत नही हारी ।

अबतक जो हुआ उसके बारे मे तो क्या कहूँ – पर अब मै तुम्हें एक बार फिर विश्वास दिलाता हूँ कि अब मे ऐसी कोई भूल नहीं करूँगा, जिससे तुम्हें दुख हो और मुझे पछताना पडे ।"

कुछ हँसी के मूड मे आती हुई विद्या ने कहा – "विज्ञान । तुम बातें तो बहुत अच्छी कर लेते हो । इन्हीं मीठी-मीठी बातों मे आकर तो मै तुम्हारे चक्कर मे आ गई थी और तुम्हें अपना दिल दे बैठी ।

खैर । कोई बात नही, अब तक जो हुआ सो तो हुआ पर अब इसकी पुनरावृत्ति न हो । सुबह का भूला यदि शाम को घर आ जाता है तो भूला नही कहलाता ।

मैं तो यही कामना कर सकती हूँ कि भगवान । ऐसे पुरुषो को शीघ्र सद्बुद्धि आवे ।"

"अरे विद्या । अब मै कह कर नही, करके ही दिखाऊँगा ।

अब मेरी बातो में तुम्हें ऐसे विश्वास नही आयेगा । आये भी क्यों? मैने स्वयं ही तो अपना विश्वास खोया है । तुम ही क्या ? आज कोई भी तो मुझ पर विश्वास नहीं करता ।

विद्या । कभी-कभी मै सोचता हूँ कि यदि मेरे मम्मी-पापा ने मुझे होस्टल मे नहीं भेजा होता तो शायद मुझे ये दिन नही देखने पडते। काश। मै भी सुदर्शन और ज्ञान की भाँति ही किसी ऐसे विद्यालय मे पढता, जहाँ लौकिक शिक्षा के साथ-साथ सदाचार के सस्कार भी मिलते।"

"देखो विज्ञान । तुम मम्मी-पापा को दोष नही दे सकते । उन्होने तो तुम्हारे हित के लिए ही पानी की तरह पैसा बहाकर अच्छे से अच्छे स्कूल और राजशाही होस्टल मे प्रविष्ट कराया था, ताकि तुम्हारा शारीरिक और बौद्धिक विकास सर्वोत्तम हो । वे तो यह चाहते थे कि – 'मेरा बेटा बडा व्यापारी बने, विदेशो मे जाकर भी व्यापार करे,' इसीलिए तो उन्होने अग्रेजी भाषा और विदेशी सस्कृति व सभ्यता से तुम्हे परिचित कराया है ।

कोई माता-पिता यदि अपने आंगन में कुआँ खुदवाता है तो इसलिए नहीं कि उसकी सन्तान उसमें डूब मरे, बल्कि इसलिए कि पीढ़ी-दर-पीढी सबको सदैव शीतल जल उपलब्ध रहे । यदि हम अपनी नादानी से उसमें गिर पडें तो इसमें उन बेचारों का क्या दोष है ?

तुम्हें याद होगा – तुम्हारे पापा ने एक बार स्कूल के वार्षिकोत्सव पर अपना अध्यक्षीय भाषण देते हुए यह भी तो कहा था कि 'गुलाब में फूल भी होते हैं और काटे भी; पर तुम्हें उससे केवल फूल ग्रहण

करना है, काटे नही । काटों से तो उल्टा बचना है; क्योंकि ऐसा गुलाब का कोई पौधा नहीं, जिसमें फूल ही फूल हों, काटे न हों। अत· सबको फूलों और काटों की पहचान अवश्य होनी चाहिए । यह तो हमारे-तुम्हारे विवेक पर ही निर्भर करता है कि हम क्या चुनते है ? केवल काटों को कोसकर, उन्हें बुरा-भला कहकर हम उनके कष्टों से नहीं बच सकते । दूसरों को दोष देने वाले कभी अपनी उन्नति नहीं कर सकते । क्या तुम यह सब भूल गये ?"

अपना स्वय का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए विद्या ने कहा – "देखो विज्ञान । मै भी तो कान्वेन्ट स्कूल मे ही पढ़ी हूँ, होस्टल मे भी रही हूँ, वही तो हमारा-तुम्हारा प्रथम परिचय हुआ । याद है न ? पर मैने तो आज तक मदिरा छुई ही नही, कभी जुआ खेला ही नहीं। पुरुषो के साथ दोस्ती करने के लिए कभी हाथ आगे बढाया ही नहीं। बताइये । मेरे व्यक्तित्व के विकास मे क्या कमी रह गई ?"

"विद्या । तुम ठीक कहती हो, पर तुम जैसे कितने हैं ? फिर लडकियो की बात कुछ और ही है, वे चाहे तो बच सकती हैं, पर लडको का अपने साथी-सगियो से बच पाना बहुत कठिन काम है । और फिर हम जैसे बिना पैंदे के मुरादाबादी लोटो की तो बात ही मत करो । जो किसी का ज़रा-सा हाथ लगते ही लुढ़क जाते है ।"

"अरे विज्ञान । ये सब तो बच निकलने के बहाने हैं बहाने । यदि आदमी ठान ले, दृढ सकल्प कर ले तो उसे तो कोई हिला भी नही सकता ।

परेशानियाँ तो लड़को से अधिक लडकियो को आती हैं । तुम क्या जानो नारियो की दुर्बलता । यदि जानना हो तो राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त से पूछो, उन्होने साकेत मे खींचा है नारी की दुर्बलता का एक शब्दचित्र –

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी ।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी ॥

स्त्रियाँ कितनी पराधीन होती हैं, तुम कल्पना भी नही कर सकते। हमे एक-एक कदम फूँक-फूँक कर रखना पडता है । कह नही सकते, हमारे साथ कब क्या घट जाय ? अत हमे तो हिरणियो की भाँति चौबीसों घण्टे चौकन्ना रहना पडता है । कदम-कदम पर शका-आशकाओ के काटो का जाल बिछा रहता है स्त्रियो की राह मे । जिन नरपिशाचो के बीच मे हमे चौबीसो घंटे रहना पडता है, उनसे हम कहाँ तक बचे ?

इन नरपिशाचों की मनोवृत्ति तो तुम जानते ही हो । जैसे मास पर गिद्ध मंडराते हैं, वैसे ही महिलाओ पर चारो ओर ये कामांध नर-गिद्ध मडराते ही रहते है । गिद्ध तो बेचारे मात्र मरे पशुओ का ही मास नोचते-खाते हैं पर ये कामी कूकर तो जिन्दा नारियो का मास नोचने को फिरते हैं ।

कदाचित् किसी महिला मे कहीं कोई कमजोरी देखी नही कि उसे डरा-धमका कर — उसके साथ ब्लेकमेल कर उसे पथ भ्रष्ट करने से नही चूकते । क्या-क्या बताये महिलाओ की कमजोरियाँ, फिर भी जो अपने दृढ सकल्प और विवेक के बल पर उन सब बुराइयो से बचीं रहतीं है मै उन्हे धन्यवाद दिये बिना नही रह सकती ।

यदि शेष जीवन को सुखी बनाना है और सतान को भी सदाचारी और सुखी व समृद्ध देखना चाहते हो तो तुम्हे अपने बल पर ही अपने साथियो से सघर्ष करना होगा ।"

विद्या कहे जा रही थी और आज विज्ञान उसकी सब बाते शान्ति से सुन रहा था ।

इस बात से आज विद्या मन ही मन बहुत प्रसन्न थी । बहुत प्रतीक्षा के बाद उसे विज्ञान का मानस कुछ पलटता-सा दिखाई दे रहा था । उचित अवसर पाकर उसने विज्ञान को ज्ञान और सुदर्शन के सम्पर्क बढ़ाने के लिए भी प्रेरित किया ।

वह् विज्ञान की कमजोरी को पहचानती थी, वह अच्छी तरह जानती थी कि यह् विज्ञान का क्षणिक श्मसानिया वैराग्य है । ये कल वातावरण बदलते ही फिर उसी चक्कर में आ जायेगे । ऐसा तो पहले भी अनेक बार हो चुका है । — अत उसने अपने मन मे दृढ़ निश्चय कर लिया था कि "इन्हें इनकी प्रतीज्ञा के खूँटे से बाँधे रखने के लिए मुझे शतत प्रयत्नशील रहना होगा ।" •



६

'पानी पीजे छानकर, मित्र कीजे जानकर', — यह लोकोक्ति बताती है कि यदि बीमारियो से बचना चाहते हो तो पानी सदैव छानकर ही पीओ और यदि विपत्तियो से बचना चाहते हो तो मित्र बनाने के पहले मनुष्य को अच्छी तरह से परख लो, क्योकि दुनिया मे ऐसे मतलबी मित्रो की कमी नही है, जो केवल स्वार्थ के ही साथी होते हैं, सम्पत्ति के ही संगाती होते हैं, विपत्ति पडने पर साथ छोडकर भाग जाते हैं, अपने मतलब के लिए मित्रो को मुसीबत मे डालने से भी नही झिझकते और समय-समय पर मित्र की कमजोरियो का अनुचित लाभ उठाने से भी नही चूकते ।

सजू और राजू विज्ञान के ऐसे ही मतलबी मित्र थे, जिनकी गिद्ध दृष्टि सदैव विज्ञान के केवल कचन और कामनी पर ही जमी रहती थी । विज्ञान को इस बात का पता नही था कि वे वस्तुत. उसके मित्र नहीं, मित्र के रूप मे आस्तीन के साँप हैं । वह तो उन्हें असली मित्र माने बैठा था ।

यद्यपि उसकी पत्नी विद्या सजू और राजू के दुराचरण से शादी के पहले से ही परिचित थी, पर वह व्यर्थ मे ही गडे मुर्दे नही उखाडना चाहती थी । परन्तु सजू और राजू को हद से आगे बढ़ते देख उसने निश्चय कर लिया था कि यदि विज्ञान को उनके चगुल से छुडाने के लिए आवश्यक हुआ तो वह सबकुछ साफ-साफ बता देगी, जो उसके साथ घटा था ।

विज्ञान वस्तुत स्वभाव से अत्यन्त सरल और सज्जन व्यक्ति था, अत वह सजू और राजू से मित्रता बढाते समय यह कल्पना भी नहीं कर सका था कि कोई व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए मित्रता करके उसके

साथ इस स्तर की धोखाधड़ी भी कर सकता है । तभी तो वह इनकी मीठी-मीठी बातों में आ गया था ।

जो स्वयं सरल, सज्जन और ईमानदार होता है, वह सबको अपने समान ही समझता है; पर जब ज्ञान, सुदर्शन और विद्या के प्रयासों से धीरे-धीरे यह विश्वास हो चला था कि सजू और राजू आदि चारों साथी उसके असली मित्र नही हैं, वे केवल स्वार्थ के ही साथी हैं, तो उसको उनसे अरुचि हो गई । अब वह एक क्षण भी उनके साथ नहीं रहना चाहता था ।

× × ×

पर जबतक वह इस निर्णय पर पहुँचा था, तबतक बात बहुत आगे बढ़ चुकी थी । संजू और राजू ने धीरे-धीरे अपनापन दिखा-दिखाकर उसे ऐसे चक्रव्यूह मे फसा लिया था कि अब वह चाहने पर भी उनके चगुल से छूटने की स्थति मे नहीं था । उन्होने उसे अपने विश्वास मे लेकर उसके व्यापार-धधे सम्बन्धी गुप्त बातें तो जान ही ली थीं, उसे व्यत्तिगत रूप से भी ऐसे दुराचरण का शिकार बना लिया था कि जिनका रहस्य खुलने पर उसका व्यापारिक और पारिवारिक- भविष्य अधकारमय बन सकता था । अत अब वह उनके विरुद्ध अपना मुँह नही खोल सकता था और उनका साथ भी नहीं छोड सकता था । बस, उसकी इसी कमजोरी का अनुचित लाभ संजू और उसके साथी उठा रहे थे ।

सजू व राजू मान रहे थे कि उन्हें विज्ञान की कमजोरी में एक ऐसा हथियार हाथ लग गया है, जिसके बल पर वे विद्या और विज्ञान को जैसा चाहें वैसा नचायें और जीवन भर मनमाना रुपया भी वसूलते रहें ।

इसी के बल पर सजू ने अपने साथियो पर भी अपना रोब जमा रखा था । कभी-कभी अभिमान मे आकर वह अपने साथियों के बीच कहा भी करता था — "वह विद्या की बच्ची अपने आपको समझती

क्या है ? विज्ञान से शादी क्या हो गई, अपने आपको महारानी ही समझने लगी है । बहुत देखे ऐसे करोडपति । बात-बात मे व्यग्य बाण छोडती रहती है, सीधे मुँह बात ही नही करती । देखो, उस दिन विज्ञान ने कैसा आदर सत्कार किया, पर उसने घास तक भी नही डाली । उल्टी चुगटी ही भरती रही । यदि एक दिन मैने उसे भी अपने साथ नचाकर नीचा नहीं दिखाया तो मेरा नाम सजू नही ।"

राजू को सजू का इसप्रकार बार-बार कहना अच्छा नही लगता था । अत उसका मुँह बन्द करने के लिए उसने व्यग्य करते आगे कहा – "बेटा । अधिक शेखी न मारा करो, नाना के आगे ननिहाल की बाते शोभा नहीं देती । यदि अपना भला चाहते हो तो उससे जरा बचकर ही रहना । पहले भी तो तुम चोट खा चुके हो ? अन्नू और अज्जू की बीबियो की बात और है, कही चनो के धोखे मे ककड नही चबा बैठना, वर्ना अभी तो सिर के बाल ही उडे है, अब की बार बत्तीसों दाँत गायब हो जायेगे । इतने जल्दी भूल गये गर्ल्स होस्टल की घटना ?"

झेप मिटाते हुए सजू बोला – "अरे । जाने भी दे यार उन सब बातो को । जब की बात जुदी थी, पर अब तो वह मेरे चगुल मे ऐसी फसी है कि उसे भी नानी याद आ जावेगी । देखता हूँ अब वह मुझसे बचकर कहाँ जायगी ? यदि उसने कुछ भी गडबड की तो विज्ञान सीधा जेल के सीखचो मे होगा ।"

× × ×

जब कई दिन तक विज्ञान नही पहुँचा तो उसके उन चारों साथियो को चिन्ता हो गई, क्योकि वही तो एकमात्र उनके बीच पैसे खर्च करने वाला व्यक्ति था ।

सम्भावनाओ पर विचार करते हुए एक ने कहा – "सम्भव है वह इन दिनो कही बाहर गया हो ? पर यदि उसका बाहर जाने का कार्यक्रम होता तो या तो वह स्वय कहकर जाता या अपने अचानक बने कार्यक्रम

की खबर जरूर भिजवा देता । बीमार तो नही पड गया कही ? पर बीमारी की खबर भी तो नही दी ?"

दूसरा बोला — "बीमारी की खबर कौन भेजता ? विद्या तो हमारे पास खबर भेजने से रही । उसकी दृष्टि मे हमारी औकात ही क्या है ?"

तीसरा बोला — "अरे भाई । वह भावुक भी बहुत है, जल्दी ही लोगो के बहकावे-फुसलावे मे आ जाता है । कहीं किसी और ने तो नही बहका लिया ? यदि वह किसी और के चक्कर मे आ गया तो फिर अपना तो मजा ही किरकिरा हो जायगा ।"

चौथे ने सलाह दी — "यहाँ बैठे धूल मे लट्ठ मारने से क्या होगा? कुशलक्षेम पूछने के बहाने एक दिन उसके घर पर ही चलकर उसे सम्भाल लेना चाहिए, पर ध्यान रहे उसकी बीबी बडी तेज-तर्राट है, कही अपमान न कर दे ?"

अन्नू की बात सुनकर सजू की आँखो के सामने एक क्षण को वह होस्टल वाला दृश्य फिर घूम गया, जिसमे विद्या और उसकी सहेलियो द्वारा उसकी अच्छी मरम्मत हुई थी तथा धक्का मारकर निकाल दिया गया था । स्मृतिपटल पर वह दृश्य आते ही पहले तो वह प्रतिशोध की भावना से भर गया, परन्तु अपने आपको सम्भालते हुए वह बोला — "अरे । तुम भी कहाँ छोटी-मोटी बातो मे पड गये हो, इतना तो सब चलता ही रहता है, यदि ऐसे मान-अपमान से डरने लगे तब तो तुम दुनिया मे कुछ भी नही कर सकते । अरे उन बहादुरो की ओर भी तो देखो, जो, सौ-सौ जूते खाय तमासा घुस के देखें ।"

ऐसा कहकर सजू ने मन मे सोचा — "ऐसे मान-अपमान के भय से दूर-दूर भागने से थोडे ही काम चलेगा । ये लोग तो यों ही बकते है, विज्ञान से मित्रता बनाकर रखनी है तो विद्या को भी पटाकर रखना ही पडेगा । अन्यथा यदि विद्या ने विज्ञान को अपने विरुद्ध भडका दिया तो अपना रोज-रोज का इतना खर्चा कैसे चलेगा ? तालाब मे रहकर

मगर से बैर थोडे ही रखा जाता है । और फिर विद्या जैसी विश्व सुन्दरी को पाने के लिए भी तो विज्ञान से प्रेम सम्बन्ध बढ़ाना ही होगा। अन्यथा वह भी चंगुल मे कैसे आयेगी ? डराना-धमकाना तो अन्तिम उपाय है, प्रेम प्रदर्शन से ही काम बन जाय तो इससे अच्छा और क्या है ?"

यह विचार कर उसने अपने साथियो से कहा — "कभी क्यों ? अभी चले चलते हैं, विज्ञान की कुशलक्षेम पूछने । जब जाना ही है तो 'काल करे सो आज कर' कहते हुए चारो ही साथी विज्ञान के घर को चल दिए ।"

× × ×

घटी की सकेत ध्वनि सुनकर जैसे ही विज्ञान ने दरवाजा खोला तो चारो साथियों को द्वार पर खडा देखर एकक्षण को तो वह असमजस मे पड गया । "अरे । ये तो यहाँ भी आ गये 'रस मे विष घोलने'। इन्हें तो डाँट-डपट कर ही भगाना पडेगा, पर घर आये अतिथि का अपमान ? यह भी तो ठीक नही है । किसी मनीषी ने ठीक ही तो कहा है — 'द्वार पर आये अतिथि का अनादर नहीं करना चाहिए, चाहे वह शत्रु ही क्यों न हो?"

अत· उसने कहा — "आओ मित्र आओ । सबेरे-सबेरे अचानक यहाँ आने का कष्ट कैसे किया ?

"इसमे कष्ट की बात ही क्या है ? तुम बहुत दिनो से क्लब नहीं आये तो हमारी चिन्ता स्वभाविक ही थी, वहाँ बैठे-बैठे चिन्ता करने के बजाय सोचा — चलो । घर चलकर ही कुशलक्षेम पूछ आते हैं ।"

सजू कहे जा रहा था — "हमे चिन्ता हुई कि तुम कहीं बीमार तो नहीं पड गये, दुर्घटनाये भी आजकल आम बात हो गई है, पर तुम्हें बिलकुल ठीक हालत मे देखकर मन को सतोष हो गया ।"

विद्या ने हल्की-सी चुटकी लेते हुए कहा — "हाँ, सो तो है ही, आप लोगों का चिंतित होना स्वाभाविक ही है, मित्र जो ठहरे । एक बार बीबी को भले भूल जाएँ, पर मित्र को थोडे ही भूलाया जा सकता है । फिर आप लोगो के तो कहने ही क्या हैं ? विज्ञान जैसे भोलानाथ और लक्ष्मीकान्त मित्र मिलते ही कहाँ हैं इतनी आसानी से ? है न संजू !"

संजू ने अपमान का घूट पीते हुए और हाँ में हाँ मिलाकर खुश करने की चेष्टा करते हुए कहा — "हाँ सो तो है ही, हम बडे भाग्यशाली हैं, जो हमे विज्ञान जैसा मित्र मिला है । और आप जैसी भाभी पाकर तो हमारे भाग्य ही खुल गये हैं ।"

संजू की चाटुकारिता रूपी गेद को वापस उसी के पाले में फैंकते हुए विद्या ने कहा — "रहने भी दो, अधिक मक्खन मत लगाओ । अच्छा बोलो । क्या चलेगा ? ठंडा या गर्म ?"

साथ ही विज्ञान ने कहा — "कहिए, और नास्ते में क्या मगाया जाय ?"

सजू ने झेपते हुए कहा — "नहीं, नही, अभी चाय नास्ते की जरूरत नही है ।"

"क्यो संजू भाई । क्या आप सभी काम जरूरत के हिसाब से ही करते हो ?" — विद्या ने फिर हल्की-सी चुटकी ली ।

विज्ञान और विद्या के इस अप्रत्याशित आदर भाव एवं व्यंग्य विनोद से सजू यह निर्णय नहीं कर पाया कि वास्तविकता क्या है ? इस कारण वह सशकित बना रहा । उसे किसी मनीषी की यह उक्ति स्मरण हो आई कि 'स्त्री के चरित्र को और पुरुष के भाग्य को जब देवता ही नहीं जान पाते, तब पुरुषों की तो बात ही क्या है' ।

उसने सोचा — "इस विद्या से तो सदैव सावधान ही रहना होगा। राजू भी बार-बार यही कहता है ।

इसकी बातो मे कितना तीखापन है, व्यग के सिवाय सीधे मुँह बात ही नहीं करती । ठीक है, सब देख लूँगा ।" — सोचते-सोचते वह कुछ देर विचारो मे उलझा रहा ।

चाय प्रस्तुत करते हुए जब विज्ञान के नौकर रामू ने उसका ध्यान भग किया तो पास मे खडी विद्या से वह बोला — "भाभी आप ठीक-ठाक तो है न ?"

विद्या ने उत्तर मे कहा — "हाँ, वैसे तो सब ठीक ही है, पर----।"

पर क्या ? देखो, कोई बहाना नही चलेगा, तुम्हे और विज्ञान को हमारे कल के कार्यक्रम मे तो आना ही पडेगा । समझे ।"

विज्ञान की नस दबाने के उद्देश्य से विद्या को सुनाते हुए सजू पुन बोला — "विज्ञान । तुम इतने दिनो से नही आये, इसके पीछे कुछ 'दाल मे काला' दिखता है । किसी और के चक्कर मे तो नही आ गये ?"

अपनी सफाई देते हुए नि शकता और निर्भयता के साथ विज्ञान ने कहा — "नही ऐसी तो कोई बात नही है मित्र । पर इन दिनो कही जाने-आने का और किसी से मिलने-जुलने का मन ही नही हुआ।"

व्यग विनोद करते हुए अज्जू बोला — "क्या भाभीजी के प्यार-मोहब्बत मे ऐसे फस गये कि हम सबको बिल्कुल ही भूल गये ? कभी-कभी तो दर्शन दे ही दिया करो । तुम्हारे बिना तो महफिल मे बहुत ही सूनापन लगता है ।"

राजू ने आदेश की भाषा मे कहा — "ऐसा नही चलेगा विज्ञान। तुम्हारे बिना तो हमारी महफिल का रग ही फीका हो जाता है, सारा मजा ही किरकिरा हो जाता है । और हाँ सुनो । कल तो तुम्हें आना ही है, हर हालत मे आना है । कल का कार्यक्रम तो तुम्हारी ही पसन्द का, केवल तुम्हारे लिए ही किया जा रहा है । जिसका नृत्य-गान देखकर तुम झूम पडे थे, उसे ही कल क्लब मे आमन्त्रित किया है । उसका नाच-गान तो अच्छा है ही, रूप-रग मे भी वह किसी 'विश्व-सुन्दरी' से कम नही है ।

तुम्हे तो आना ही है, भाभीजी को भी साथ मे लाना नही भूलना। हमें भी तो नाचने के लिए कोई साथ चाहिए न ? क्यो संजू ठीक है न ?"

"हाँ, भाई । राजू ठीक ही तो कहता है । अकेले-अकेले क्या मजा आयेगा ?" सजू ने हाँ मे हाँ भरते हुए कहा ।

× × ×

विद्या को उनके हाव-भाव और भाषा से यह समझते देर नहीं लगी कि 'इन्हे विज्ञान की किसी खास कमजोरी का पता है और ये उस कमजोरी को उजागर करने का भय दिखाकर उसे दबाकर उसका अनुचित लाभ तो उठा ही रहे है, उसी चालाकी भरी चाल से मुझे भी दबाकर मेरा भी अनुचित लाभ उठाना चाहते है ।'

साथ ही वह यह भी भाँप गई कि "सभवत सजू मे मेरे प्रति प्रतिशोध की भावना भी है । अत ये सब मिलकर एकबार फिर मेरी इज्जत पर धावा बोलकर मुझसे बदला भी लेना चाहते हैं । अन्यथा ये मेरे ही सामने यह खुला चेलेज कैसे दे सकते थे कि हमे भी तो कोई साथी चाहिए न ?

इसका तो साफ-साफ यही अर्थ है कि विज्ञान मेरे ही सामने उस नाचने वाली आमन्त्रित मेहमान महिला के साथ नाचे और मै इन भेडियो के साथ ----। पर मै ऐसा कभी नही होने दूँगी ।

इसके लिए पहले मुझे विज्ञान को इनके बारे मे सब कुछ सही-सही बताकर अपने विश्वास मे लेना होगा, ताकि ये मेरे सुखमय जीवन के रस मे विष न घोल सके । और विज्ञान को भी विश्वास दिलाना होगा कि तुम्हारे बारे मे कोई कुछ भी कहे, उसका मुझ पर कोई विपरीत प्रभाव नही पडेगा । अत तुम मेरी ओर से निश्चिन्त हो जाओ । तभी विज्ञान इनके दबाव से मुक्त हो सकेगा और ये लोग भी उससे अनुचित लाभ नही उठा सकेंगे ।

दूसरे, विज्ञान की व्यापारिक अनियमितताओ को नियमित कराना होगा और विज्ञान को समझाना होगा कि – "इस दो नम्बर के धन्धे में, तथा इन अनियमितताओं मे ऐसा लाभ ही क्या है ? आकुलता और अशान्ति की तुलना मे कुछ भी तो हाथ नही लगता । कमाई का अधिकांश हिस्सा तो ऊपर के लेन-देन में ही चला जाता है, केवल अपराध बोध ही तो अपने पल्ले पडता है । क्यो न इसे समाप्त कर दिया जाय ?

और मिलता भी हो तो ऐसी कमाई भी किस काम की, जिसमें शान्ति से बैठकर न खा सके और न सो सके । वैसे भी कौन-सी कमी रहनेवाली है ? फिर रोज-रोज ये ब्लैकमेल के चक्कर --- ?

नियमित काम करने से हमे तो लाभ ही लाभ है, पर हमारी इस कमजोरी से लाभ उठाने की खोटी नियत रखनेवाले सजू और उनके साथियो को हमारा सहयोग बन्द होते ही अवश्य ही आटे-दाल का भाव मालूम पड जायेगा । जरासी कमजोरी के कारण हमारे ही बल पर हमें ही अकड दिखाते हैं और जिसका नमक खाते है उसी की हाँडी में छेद करते हैं । दुष्टों पर दया करना भी तो दया का दुरुपयोग है ।

किसी ने ठीक ही कहा है –

"कांटा काटे से निकलेगा, विष होगा विष से निर्मूल ।
दुष्टों पर अनुकम्पा करना, यही सज्जनों की है भूल ॥

विद्या बड-बडाई – "संजू बार-बार सीखचो के अन्दर बन्द कराने का जो भय दिखाता है, सो फिर मै यह भी देख लूगी कि 'कौन किसको सीखचों मे बन्द कराता है ।' यदि यही हाल रहा तो वह दिन दूर नहीं जब दूसरों को जेल मे बन्द कराने वाला सजू स्वयं ही जेल मे दिखाई देगा । कोई जमानत देने वाला भी नहीं मिलेगा । बहुत दादागिरि करता फिरता है ----।"

उधर विज्ञान सोच रहा था कि – "मेरे बारे में विद्या से जो कुछ भी कहना हो कह लेने दो – विद्या ऐसी कोई नादान नहीं है जो मेरी असलियत को न समझे और इनके बहकावे मे आ जावे । अत· एकबार सब तिया-पाँचा हो लेने दो, ताकि बार-बार की झझट ही न रहे । यदि मैं स्वयं ही विद्या को अपनी वे सब कमजोरियाँ बता दूँ, जिनका भय दिखाकर ये मुझे दबाते हैं, तो ऐसा कोई कारण नहीं, जो वह मुझे माफ न करे । रही बात व्यापार संबंधी कागजातों की, सो उन्हें भी किसी तरह ठीक-ठाक करा लेते हैं । बस, फिर न रहेगा बास न बजेगी बासुरी ।"

विज्ञान वैसे तो बहुत ही प्रतिभाशाली व्यक्ति था, अत· जिस बात पर भी गहराई से विचार करता तो अच्छे निष्कर्ष पर ही पहुँचता था, पर कुछ दिनों से सजू और राजू जैसे मित्रों के चक्कर मे आ जाने से सुरा और सुन्दरी की ऐसी चाट लग गयी थी कि उसकी याद आते ही सब गुड गोबर हो जाता था ।

सुरा और सुन्दरी के व्यसन वस्तुतः ऐसे खोटे व्यसन हैं कि उनकी एकबार चाट लग जाने पर आसानी से नहीं छूटते ।

जब उसे सजू का अतिआग्रह भरा बुलावा मिला, जिसमे उसकी ही मनपसन्द नृत्यागना को आमंत्रित किया गया था, तो वह स्पष्ट मना नही कर सका, उसका मन फिसलता और पैर लडखडाते देख विद्या को बाध्य होकर उसके सभी मित्रो का कच्चा चिट्ठा विज्ञान के सामने खोलना ही पडा ।

उसने बताया – "विज्ञान । तुम्हें क्या पता है – ये भोला-भाला दिखने वाला संजू वही सजू है जिसने गर्ल्स होस्टल की दीवाल लाँघ कर सुनीता की इज्जत खराब की थी और इस राजू के बारे में तुम्हें क्या बताऊँ – यह कितना बदतमीज है – पता है, इसने तो मेरे ऊपर ही डोरे डालने चाहे थे । वह तो मैं ही थी, जो इसके चंगुल से बच पायी थी ।

सौभाग्य से मेरे पापा को मेरे ऊपर पूरा भरोसा था, अत मैने निर्भय होकर उनको वह सबकुछ साफ-साफ बता दिया था, जो-जो इसके और मेरे बीच घटा था । अन्यथा इसने तो मुझसे भी ब्लैकमेल करने की कम कोशिश नहीं की ।

बेचारे अन्नू व अज्जू यद्यपि सीधे-साधे हैं, पर इनके चक्कर मे पडकर उन्होने भी अपनी गृहस्थी बर्बाद कर ली है । जो तुम्हारी प्रिय नृत्यागना आज आनेवाली है, जानते हो वह कौन है ? वह अन्नू की ही धर्मपत्नी है । अन्नू एक गरीब आदमी जो ठहरा । ये सब मिलकर उसके सीधेपन और गरीबी का नाजायज फायदा उठा रहे हैं और उसी के सामने उसकी पत्नी की कमर और गले मे हाथ डाल कर उसके साथ नाच-नाच कर उसकी इज्जत लूट रहे है ।

कल्पना करो, उसके दिल पर क्या गुजरती होगी ? पर बिचारा करे तो करे भी क्या ? मजबूरी मे अपना मुँह नही खोल सकता । बैठा-बैठा सबके साथ एक नकली हँसी हँसता रहता है । मानो खुद पर ही हँस रहा हो और स्वय से पूछ रहा हो कि "जो अपनी पत्नी का पेट नही पाल सकता और उसकी रक्षा नही कर सकता, इज्जत नही बचा सकता, उसे क्या हक है शादी करने का ?"

विज्ञान यदि तुम अपना भला चाहते हो तो भूलकर भी इनके दबाव मे नही आना, अन्यथा तुम्हारी और मेरी भी ये अन्नू जैसी ही दुर्दशा करके छोडेगे ।

और सुनो, इनसे डरने की कोई बात नही, अपने घर की बात अपन आपस मे ही निबट लेगे । भूले किससे नही होती, पर सुबह का भूला शाम को भी यदि घर आ जावे तो भूला नही कहलाता ।

इतना कहते-कहते विद्या का गला भर आया, वह आगे कुछ नही बोल सकी ।

विद्या की दृष्टि मे दृष्टि मिलते ही विज्ञान की भी आँखे पश्चाताप के आँसुओ से गीली हो गई । •

७

किसी समस्या विशेष मे उलझे विज्ञान को चिन्तन मुद्रा मे बैठा देख उसकी पत्नी विद्या ने हँसी के मूड मे कहा – "अब क्या सोच रहे हो प्राणनाथ । इतनी बडी समस्या सुलझने के बाद अब और किस उलझन मे उलझ गये हो ? जरा घडी तो देखो, क्या बज रहा है ? क्या आज नहाने से लेकर खाने तक – सभी कामो की छुट्टी कर दी है? और हाँ, एक दिन आप यह भी तो कह रहे थे कि अब मै प्रतिदिन जिनमदिर मे पूजन करने और प्रवचन सुनने जाया करूँगा ? क्या हुआ उस सकल्प का ?"

"विद्या । आज वर्षो बाद तुम्हारी प्रसन्न मुखमुद्रा पर झलकते रूप लावण्य को देखकर मै सोच रहा था – **'क्या उदासीनता सचमुच सौन्दर्य की शत्रु है ? जिसने मेरी प्रिया के सौन्दर्य को मुझ से छीन लिया था'** – ऐसी उदासीनता और चिन्ता जीवन में कभी किसी को न हो । पर तुम्हारी उदासीनता और चिन्ता का कारण और कोई नही, मै स्वय ही था ।

भला कोई पत्नी अपने पति को सुरा और सुन्दरी के हाथ की कठपुतली बना देखते हुए प्रसन्न और निश्चिन्त कैसे रह सकती है ?"

विज्ञान के सन्मार्ग पर आ जाने से विद्या सर्वाधिक प्रसन्न थी । जब उसकी प्रसन्नता हृदय मे नही समाई तो उसके मुखमंडल पर बिखरने लगी थी। वह सुन्दर तो थी ही, उसकी प्रसन्नता ने उसकी सुन्दरता पर और भी चार चाँद लगा दिये थे । इससे उसका सौन्दर्य सौ गुना हो गुलाब की तरह खिल उठा था ।

विद्या की प्रसन्नता से बढ़े हुए सौन्दर्य को देखकर विज्ञान इस निष्कर्ष पर पहुँच चुका था कि **'मुख का सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्य-प्रसाधन प्रसन्नता ही है ।'**

"काश । संजू और उसके साथी भी अपनी बुरी आदत छोड़ दे, दुर्व्यसनों के दल-दल से निकल कर सन्मार्ग पर आ जावें तो उनके परिवार की भी ढेरो खुशियाँ लौट सकती हैं और वे भी हम जैसे ही प्रसन्न और सुखी हो सकते हैं ।"

ऐसा कहते हुए उसने आगे कहा – "क्यो न इस दिशा मे कुछ प्रयत्न किया जाय ?"

विद्या ने कहा – "विज्ञान । तुम्हारा विचार तो सर्वोत्तम है, परन्तु "

बीच मे ही विद्या के मुँह की बात छीनते हुए विज्ञान बोला – "देखो विद्या । तुम्हारी किन्तु परन्तु अभी नहीं चलेगी । तुम्हारी अपेक्षा उनका दु ख-दर्द मै अधिक महसूस कर रहा हूँ । वे अभी सब तरफ से असहाय हैं । एक तो दुर्व्यसनो के कारण दिन-प्रतिदिन उनकी घटती कार्यक्षमता, दूसरे, कुपोषण के कारण आये दिन बीमारियो का प्रकोप, तीसरे' अर्थाभाव के कारण परस्पर पारिवारिक कलह और मानसिक अशान्ति – इन सबके कारण उनका जीवन नरक बन रहा है नरक।

यदि ऐसी स्थिति मे भी उन्हें नहीं सम्हाला गया तो उनकी तो जो दुर्गति हो रही है सो हो ही रही है, वे अपन लोगों को भी पुन· किसी धर्मसकट मे डाल सकते हैं । 'मरता क्या नहीं करता ।' अत· उनको सभालना भी तो उतना ही जरूरी है, जितना जरूरी पूजन-पाठ करना है । भले ही इसके लिए अपने को कुछ भी त्याग – समर्पण क्यो न करना पडे ? उन्हें तो उस सकट से उबारना ही होगा ।"

विज्ञान का सजू और उनके साथियो के प्रति ऐसा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार देखकर विद्या फिर सशंकित हो उठी । उसे ऐसा विचार आया कि – "मेरे द्वारा संजू और राजू के बारे मे इतना सबकुछ स्पष्ट बता देने पर भी विज्ञान को क्रोध आने के बजाय उल्टी उनके प्रति इतनी गहरी सहानुभूति है, इतनी हमदर्दी है; इससे तो ऐसा लगता है कि अभी भी कुछ दाल मे काला है, अभी भी विज्ञान के मन का झुकाव

उधर को ही है, वहाँ से उनका मन पलटा नहीं है । अन्यथा इतना सब सुनने के बाद तो उसे आग-बबूला हो जाना चाहिए था । खैर।"

एक ठंडी सांस लेते हुए उसने फिर सोचा – "चलो कोई बात नही, अभी उनके प्रति सहानुभूति ही तो दिखाई है, पुनः पूर्ववत उनके साथ उठने-बैठने और राग-रंग में सम्मिलित होने की बात तो नहीं कही । सभव है केवल सहानुभूति और करुणा की भावना ही हो, ये सज्जन और भावुक तो हैं ही । अत थोडा धैर्य से काम लेना चाहिए। शकाये-आशंकाये प्रगट करने मे व्यर्थ ही बनी-बनाई बात बिगड सकती है ।"

ऐसा विचार कर विद्या ने कहा – "यह अपने लिए कौनसी बडी समस्या है ? जिसके लिए आप इतने चिंतित हैं । यदि आपके मन मे उनके प्रति ऐसी ही सहानुभूति है, करुणा है और आप उनकी सहायता करना चाहते हैं तो अवश्य करिये, मेरी भी इसमे सहमति है । सौभाग्य से इसके लिए अपने पास कोई कमी भी नहीं है, पर इसके लिए आपको स्वय वहाँ जाने की जरूरत नहीं है । मै आपको अभी वहाँ जाने भी नही दूगी । पराये मन की कोई क्या जाने ? क्रोधवेश मे यदि वे लोग अनर्थ कर बैठे तो ?

"नहीं, नहीं विद्या । वहाँ मुझे स्वय ही जाना पडेगा, मेरे जाये बिना काम नही चलेगा । मुझे केवल आर्थिक सहयोग ही नहीं करना है और भी बहुत कुछ करना है । तुम नहीं समझ सकोगी अभी, क्योंकि तुम्हारे मन मे उनके प्रति अभी आक्रोश है, घृणा है, क्षोभ है और है अविश्वास की भावना। होना भी चाहिए, क्योंकि किसी असहाय, अबला के साथ यदि कोई ऐसा अन्याय करता है, उसकी मजबूरी का अनुचित लाभ उठाने जैसा कुत्सित कार्य करने की कुचेष्टा करता है तो उसके प्रति प्रतिशोध की भावना होना स्वाभाविक ही है । पर किसी को सुधारने या सन्मार्ग पर लाने का उपाय घृणा नहीं है । सन्मार्ग पर लाने के लिए तो उन्हें अपनाना पडेगा, अपना बनाना पडेगा ।"

विद्या सोचती है – "विज्ञान बुद्धिमान है, प्रतिभाशाली है, भाषणकला मे भी निपुण है, अत बातो की तो उसके पास क्या कमी ? पर मै उसकी इन बातो मे आकर उसे पुन उसी दल-दल मे जाने को 'हाँ' कैसे कह सकती हूँ ? पर मेरे ना करने से भी क्या होगा ? वह जिद्दी भी तो कम नही है । जो ठान लेगा, वही करके छोडेगा, क्या करूँ ?"

विज्ञान ने विद्या के चेहरे से ही उसके अन्तर्मन मे हुए अन्तर्द्वन्द्व को पहचान लिया । अत विद्या कुछ कहे, इसके पूर्व ही उसने अपनी सफाई देते हुए कहा – "विद्या । मै वहाँ जाने के पहले तुम्हें यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि तुम मेरी ओर से पूर्ण निश्चित हो जाओ। अब मै काजल की कोठरी में जाकर भी काजल के धब्बो से बचकर रहूँगा, पर मै जाऊँगा अवश्य ।"

विद्या ने उसके उत्तर मे विनम्रभाव से कहा – "प्राणनाथ । मुझे आप पर पूर्ण विश्वास है, मै आपके हृदय की सरलता से भलीभाँति परिचित हो गई हूँ, पर ।"

मुँह की बात छीनते हुए विज्ञान ने कहा – "पर क्या ? वे मेरी सरलता का फिर दुरुपयोग करेगे, मुझे किसी चाल मे फसा लेगे ? यही न, भूले किससे नही होती, पर " "नही विद्या ऐसा कुछ न सोचो। वे भी इतने बुरे नही है ।"

विद्या ने अपना स्पष्टीकरण देते हुए कहा – "मेरा कहना यह नही है और न मै अभी उन पर कोई अविश्वास ही कर रही हूँ । मेरा कहना तो यह है कि यह इतनी बडी समस्या नहीं है, ऐसा कोई बहुत बडा काम भी नही है, जिसके लिए आप इतने उत्सुक हो रहे हैं, धीरे-धीरे शान्ति से सब हो जायगा । ये दुर्व्यसनो की तो आदते ही ऐसी होती हैं, जो धीरे-धीरे ही जाती हैं । अत. इस काम के लिए आपको व्यर्थ ही अपना समय और शक्ति खराब करने की जरूरत नही है ।"

"विद्या ! तुम मुझसे यह जो कुछ भी कह रही हो, उसके बारे मे एकबार पुन इस दृष्टि से विचार करो कि मानो मै आज भी उनका वैसा ही दुर्व्यसनी साथी हूँ । क्या उस परिस्थिति मे भी तुम्हारे चिन्तन की यही मनःस्थिति रहती ? यदि नही, तो मुझे इस कार्य को एक महत्त्वपूर्ण कार्य मानकर करने दो । 'धीरे-धीरे सब हो जायगा' — यह कहकर उपेक्षा मत करो ।"

एक महत्त्वपूर्ण विचार प्रस्तुत करते हुए विज्ञान ने कहा — "देखो, विद्या। कोई भी काम अपने-आप में छोटा या बडा नहीं होता । काम तो केवल काम होता है । काम को छोटा या बडा मानते ही उसकी सफलता की सभावना ही क्षीण हो जाती है ।

यदि काम को छोटा समझ लिया गया तो उस काम को करने का मन ही नहीं होता और यदि मन मारकर किया भी तो स्वभावत न उसमें रुचि होगी, न उत्साह और न उस पर उतना ध्यान भी दिया जा सकेगा, जितना उसकी सफलता के लिए अपेक्षित होता है।

यदि काम को बडा समझ लिया गया तो 'इतना बडा काम मेरे वश की बात नहीं' है इस विचार से उस काम को करने की या उसकी जिम्मेदारी अपने हाथ में लेने की हिम्मत ही नहीं होती ।

जबकि किसी भी काम में सफलता प्राप्त करने के लिए श्रम, साहस, समय और ध्यान का पूरा केन्द्रीकरण आवश्यक होता है ।

विद्या ! इसी से सबधित आज दूसरी समस्या है उन नन्हें-मुन्ने बालकों की, जो भारत के भावी भाग्यविधाता हैं और है समाज के भावी कर्णधार।

आज बालको को न तो कोई नैतिक शिक्षा मिल रही है और न कोई धार्मिक सस्कार । इसके बदले उन्हें आज मिल रही है विशुद्ध अर्थकारी शिक्षा और पश्चिमी भोग प्रधान भौतिक संस्कार ।

यदि यही स्थिति रही तो सोच लो — कैसे होंगे ये भारत के भावी भाग्यविधाता और समाज के भावी कर्णधार ?

यही भूल तो मेरी शिक्षा और सस्कारो के सम्बन्ध में हुई थी । क्या तुम्हें ज्ञात नही कि मुझको राह पर लाने के लिए तुम्हारे साथ ज्ञान और सुदर्शन को भी कितने पापड बेलने पडे ? जरा कल्पना तो करो, यदि वे इस दिशा मे प्रयत्न नही करते तो आज मेरी स्थिति क्या होती ?

विद्या ! बालको के शिक्षा और सस्कारो के क्षेत्र मे पुरुषो की तुलना मे महिलाएँ अधिक काम कर सकती हैं । माँ को बालक की प्रथम पाठशाला कहा जाता है । अत महिलाओ मे जागृति लाने से यह काम तुम्हारे द्वारा अच्छी तरह हो सकता है ।"

अपने मित्र सजू और उसके साथियो को सन्मार्ग पर लाने तथा उनका जीवन सुखी बनाने के विज्ञान के दृढ़ सकल्प और पवित्र भाव को देखकर विद्या ने भी विज्ञान का हर तरह से सहयोग करने का मानस बना लिया था ।

अत विज्ञान के विचारो मे अपनी सहमति प्रगट करके वह अपने घरेलु काम मे लग गई ।



८

यद्यपि अब विज्ञान का हृदय पूरी तरह परिवर्तित हो गया था, पर उधर सजू और उसके साथियो को इसका क्या पता ? अत· वे तो अभी भी उसके आने की आशा लगाये बैठे थे ।

सजू ने आशा बँधाते हुए साथियों से कहा – "देखो, 'जब तक श्वासा तब तक आशा', अपनी वांछित वस्तु को पाने के लिए जीवन की अन्तिम श्वास तक भी लोग आशान्वित रहते हैं, अत हताश होकर हिम्मत न हारो । जो भी मैने तुम्हें गुरुमत्र बताये हैं, तदनुसार अपने प्रयत्न चालू रखो।

भाई । आशा से आसमान लगा है, अत इतने जल्दी निराश होने की जरूरत नही है । मुझे तो पूरी-पूरी आशा है कि विज्ञान एक न एक दिन अवश्य आयेगा ।"

यद्यपि सजू साथियो को दिलाशा दे रहा था, ढाढस बधा रही था, पर स्वय अन्दर से टूट चुका था । वह सोचता था कि – "एक तो विद्या सुन्दर भी बहुत है और चतुर भी कम नही है । वह विज्ञान को इस तरह मोह लेगी कि उसका मन यहाँ-वहाँ कहीं भटकेगा ही नही । जो मनोरंजन के साधन होटलो और क्लबों में मिलते हैं, वह उनसे भी कहीं अच्छे साधन घर मे ही जुटा लेगी । उसे क्या नही आता ? नाचना-गाना-बजाना सभी में तो निपुण है वह, इसलिए यद्यपि अब उसकी आशा करना तो पागलपन ही है, पर यदि मेरे साथ भी निराश हो गये, हिम्मत हार गये तो अपना तो जीना ही दूभर हो जायगा। अपन कहीं के न रहेंगे, 'न घर के न घाट के' अत· किसी तरह इन्हें बहला कर तो रखना ही होगा ।" यह विचार आते ही वह संभलता

हुआ साथियो से बोला — "आयेगा कैसे नहीं, यदि नहीं आयेगा तो मै जाकर ले आऊँगा, तुम लोग निश्चित रहो ।

सजू और राजू को तो ऐसा लगा जैसे कोई खोई हुई निधि मिल गई हो, क्योंकि विज्ञान के न आने से वे ही अधिक प्रभावित हुए थे। आदते तो वैसी ही थीं और अर्थाभाव के कारण उनकी पूर्ति शताश भी सभव नही हो पाती थी । होती भी कहाँ से ? जिनको दो टाइम की रोटियाँ नसीब न हो, वे सुरा-सुन्दरियो का शौक कहाँ से पूरा करेंगे?

सजू की बात का समर्थन करते हुए अज्जू ने कहा — "वह आयेगा कैसे नही ? जिसे एक बार भी सुरा और सुन्दरी का रस लग जाता है, चाट लग जाती है, उसे फिर उसके बिना चैन नही पडती ? उसे तो उसकी हर पल याद आती रहती है । उसे कोई रस्सी से भी बाँधे तो भी वह नही रुक सकता । यह तो व्यसन ही ऐसा है । अत वह आयेगा, जरूर आयेगा ।"

बीच मे ही राजू बोल पडा — "कोई कुछ भी कहे, कैसी भी कसमे दिलाये, रुकेगा तो नही, पर उसकी भी अपनी समस्याएँ है, वह उनसे जूझ रहा होगा ?"

हाँ मे हाँ मिलाते हुए अन्नू ने कहा — "हाँ भाई । विज्ञान तो बिचारा स्वय भी आना ही चाहता होगा, पर वह अपनी बीबी विद्या से निगाह बचाकर निकल पाये तब न ?"

× × ×

बहुत दिनो बाद एक दिन जब विज्ञान अनायास ही सजू और उनके साथियो की महफिल मे पहुँच गया तो उनकी खुशी का ठिकाना नही रहा ।

सजू ने कहा — "देखो, मैने कहा था न ? कि वह एक न एक दिन अवश्य आयेगा । यहाँ नही आयेगा तो कहाँ जायेगा ?"

अज्जू ने भी छाप लगाई – "अरे भाई । इस महमिल का तो आनन्द ही कुछ ऐसा है कि जो एक बार यहाँ आ जाता है, उसका अन्य जगह कही मन ही नहीं लगता ।"

सभी ने विज्ञान के शुभागमन पर हर्ष प्रगट किया । विज्ञान ने भी उनके प्रति अपनापन दिखाते हुए उनसे कुशल क्षेम पूछी । सामान्य औपचारिकता के बाद विज्ञान ने कहा – "इन दिनो आप लोगो को किसी प्रकार की कोई खास परेशानी तो नही रही ? यदि किसी को कोई तकलीफ हो तो निःसकोच बताये । मै आपका अपना साथी हूँ। साथी कहते ही उसे है, जो सुख-दुःख में समान रूप से साथ दे। यदि आप मुझे अपने कष्ट नही बतायेगे तो फिर किसे बतायेगे?"

इतना सहानुभूतिपूर्ण प्रेम का व्यवहार पाते ही उन्हें सुख-दुःख सुनाने का भाव जागृत हो गया और एक-एक ने अपने दिल का दर्द प्रगट कर दिया।

सजू ने कहा – "और तो सब ठीक ही है, पर सबको तुम्हारी याद बराबर सताती रही । पारिवारिक परेशानियाँ भी इन दिनो कुछ अधिक ही रही । अन्नू और अज्जू की पत्नियाँ सरला और सुनीता यदि अपने कुल की आन लिए घर मे ही दुल्हन बनी बैठी रहती तो उनके तो बच्चे ही भूखो मर जाते, क्योंकि ये दोनो तो इन दिनो बीमार रहने से काम पर ही नही जा पाये ।

डॉक्टर कहते हैं कि मदिरा पीना बंद किए बिना अन्नू के पेट की बीमारी ठीक नही हो सकती, इसके लीवर पर सूजन आ गई है और अज्जू के फेफडे खराब हो रहे है, सिगरेट छोडे बिना इसकी खासी ठीक नहीं हो सकती । तथा इनका कहना यह है कि यदि हम एक दिन भी नहीं पीते तो हमारे हाथ-पाँव ही नही चलते, हम कोई काम ही नही कर सकते । इस कारण ये दोनों सबसे अधिक परेशान हैं। वह तो इनकी पत्नियाँ ही अपने दिल पर पत्थर रखकर, अपना मन मारकर जैसे-तैसे इनके परिवार का पेट पाल रही हैं ।"

अपनी बात चालू रखते हुए संजू ने आगे कहा – "मेरा और राजू का तो कहना ही क्या ? घर में न किसी को हमारी चिन्ता है और न हमें किसी की चिन्ता ? जब जो जहाँ से मिल गया, खाया-पिया और जमीन के बिछौना पर आसमान का चादर ओढ़कर आराम से कहीं भी सो गये । बस, इन दिनो भगवान की इतनी कृपा अवश्य है कि सुबह से शाम तक कोई न कोई आँख का अधा और गाँठ का पूरा मिल ही जाता है, जिससे हमारा भी काम चल जाता है और जो कुछ बचता है सो हम सरला और सुनीता की भेंट चढा देते हैं । सो अन्नू और अज्जू का भी काम चल जाता है । इस प्रकार सब भगवान के भरोसे चल रहा है ।"

विज्ञान को अपने चारो साथियों की यह दुर्दशा देखकर हृदय में भारी वेदना हुई । उसने एक-एक को अलग-अलग बुलाकर भी उनकी सभी परेशानियो को खूब ध्यान से सुना और उन्हें उस सकट से उबारने के लिए हर प्रकार का पूरा-पूरा सहयोग करने का आश्वासन दिया ।

उसने सोचा – "सजू और राजू के माता-पिता और भाइयो ने अभी तक केवल इन्हें आदेश, उपदेश और डरा-धमका कर ही सन्मार्ग पर लाने की कोशिश की है, इन्हें सदा दुतकारा ही है कभी अपनाने की कोशिश नहीं की ।

वस्तुतः बात यह है कि केवल आदेशों और उपदेशों की भाषा से कभी कोई सुधर नहीं सकता । किसी भी व्यक्ति को सन्मार्ग पर लाने के लिए पहले उसको अपने विश्वास में लेना और अपना विश्वास उसे देना आवश्यक होता है । उसे अपनाना पडता है, अपना बनाना पडता है । जब उसे यह विश्वास हो जाये कि यह व्यक्ति मेरा हृदय से हितैषी है और मात्र मेरे हित के लिए ही अपना सर्वस्व समर्पण कर रहा है, तब फिर वह स्वतः उसके सामने आत्मसमर्पण कर देता है और उसकी प्रत्येक बात मानने को तैयार हो जाता है ।

अत इन दोनो के लिए तो इनके माता-पिता और भाई-बन्धुओ से मिलना होगा और उन्हें यह सब बताना होगा । तथा अन्नू और अज्जू को आर्थिक योगदान देकर उनका हृदय परिवर्तन करने का प्रयत्न करना होगा।"

यह विचार आने पर विज्ञान ने अन्नू और अज्जू को तो आवश्यकतानुसार दवाईयो का और बच्चो की पढ़ाई का तथा आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली तथा सजू और राजू को भी उनकी पारिवारिक समस्याओ को सुलझाने का आश्वासन दिया।

उसके इस प्रेम भरे व्यवहार से और नि:स्वार्थभाव से किये गये आर्थिक सहयोग से वे सभी गद्‌गद् थे । विज्ञान के प्रति उत्पन्न हुआ उन सबका असतोष एव नाराजगी एक ही दिन मे श्रद्धा मे पलट गये।



१

कोई नहीं कह सकता कि किसके जीवन मे कब क्या परिवर्तन आ जावे । पतित से पावन और पापी से परमात्मा बनने में भी देर नहीं लगती ।

जो आज त्रिलोक पूज्य देवाधिदेव सर्वज्ञ परमात्मा के रूप मे प्रतिष्ठित है, वे ही कभी पतित, पापी और पशु-पर्याय मे थे । अत पाप तो घृणा योग्य है, पर पापी नहीं ।

पूजा-पाठ को ढोग और पण्डिताई को पाखण्ड कहनेवाले तथा मन्दिर जाने का कभी नाम न लेनेवाले अपने मित्र विज्ञान को एक दिन मन्दिर मे पूजा-पाठ करते और णमोकार मत्र की माला फेरते देख ज्ञान को जहाँ एक ओर सुखद आश्चर्य हो रहा था, वही दूसरी ओर उसे अपनी आँखो पर सहसा विश्वास नही हो पा रहा था कि क्या वस्तुत यह वही विज्ञान है, जिसे कभी मदिर के नाम से चिढ थी, जयजिनेन्द्र के नाम से नफरत थी, घृणा थी ?

ज्ञान सोच रहा था – आज यह सूरज पश्चिम से कैसे निकल आया? कही यह विज्ञान की ही शक्ल-सूरत का कोई और तो नही है ? नही, नहीं; है तो यह विज्ञान ही । पर यह यहाँ आया कैसे? जिस वजह से यह सदैव मेरी हँसी उडाया करता था, आज उसी के चक्कर मे स्वय कैसे आ गया ?

ज्ञान को आश्चर्य मिश्रित चिन्तन मुद्रा में देख उसका साथी सुदर्शन बोला– "कहो मित्र ज्ञान । यहाँ बीच रास्ते मे इस तरह खडे-खडे क्या सोच रहे हो ? क्या विज्ञान को मदिर मे इस तरह भक्ति-भाव से पूजा-पाठ करते देख तुम्हें भी आश्चर्य हो रहा है ?"

"हाँ भाई सुदर्शन । बात तो आश्चर्य की ही है, ऐसा कौन परिचित व्यक्ति होगा, जिसे विज्ञान को इस रूप मे देखकर आश्चर्य नही होगा?

आपने देखा नहीं, कलतक यह अपने सामने किसी को कुछ गिनता ही नहीं था, किसी की कुछ सुनता ही नही था, धार्मिक प्रवृत्तियाँ तो इसे सपने में भी नहीं सुहाती थी । खान-पान मे न भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार, न दिन-रात का विवेक । जब जो जी मे आया, खाया-पिया और मस्त । मदिरा तक से तो इसे परहेज नही था । अत आश्चर्य की बात तो है ही।"

ज्ञान की बातो को सुन सुदर्शन ने कहा — "भाई । यह सब ठीक है, पर इसमे ऐसे आश्चर्य की कोई बात नही है । जिसकी होनहार भली हो और काललब्धि आ गई हो, उसे पलटते देर नहीं लगती। भगवान महावीर स्वामी के पूर्वभवो को ही देखो न । मारीचि की होनहार भली नहीं थी तो तद्भव मोक्षगामी भरत चक्रवती का पुत्र और आदि तीर्थंकर ऋषभदेव का पौत्र होकर भी अपने मिथ्या मार्ग से नहीं पलटा। और जब भली होनहार का समय आ गया तो शेर की क्रूर पर्याय मे भी सुलट गया, सन्मार्ग पा गया । यह तो समय-समय की बात है । क्या तुमने उस दिन आचार्यश्री के प्रवचन मे वस्तुस्वातंत्र्य का सिद्धान्त नहीं सुना था, जिसमे उन्होने चार अभावो के माध्यम से पर्यायो की स्वतत्रता समझाई थी ?"

सुदर्शन ने आगे कहा — "भाई ज्ञान । जब पशु परमात्मा बन सकता है, सिह जैसे क्रूर पशु को सम्यग्दर्शन हो सकता है, मारीचि जैसा मिथ्यादृष्टि महावीर बन सकता है तो विज्ञान ज्ञान की राह पर क्यो नही आ सकता ?"

"चलो, ठीक है सुदर्शन । यदि तुम्हारी वाणी सही है तो तुम्हारे मुँह मे घी-शक्कर । पर अपने को तो अभी भी विश्वास नहीं हो पा रहा है । फिर भी हम तो यही कामना करते हैं कि — 'हे भगवान।

उसे सद्बुद्धि आ जावे और वह अपना मानव-जीवन सफल करले, सार्थक करले ।"

× × ×

ज्ञान अपने मित्र विज्ञान के इस अनायास हुये परिवर्तन से मन ही मन बहुत प्रसन्न था । मित्र कहते ही उसे हैं जो अपने मित्र का हृदय से हितचिन्तक होता है और उसके भले के लिये सदा अपना सर्वस्व समर्पण करने के लिये तत्पर रहता है ।

ज्ञान ने भी विज्ञान को सन्मार्ग पर लाने का अपनी शक्तिभर कोई भी प्रयत्न शेष नही छोडा था । धर्मवात्सल्य का स्वरूप ही ऐसा है। पर, जबतक उपादान जागृत न हो, तबतक कोई भी व्यक्ति अपने विकल्पों के सिवाय पर में कर भी क्या सकता है ? इस वस्तुस्वरूप का विचार करके ही ज्ञान ने अपने मन को समझा लिया था । वस्तुस्वरूप की सही समझ ही वस्तुत सुखी होने का एकमात्र उपाय है ।

ज्ञान विज्ञान की प्रवृत्ति को अपने मन के अनुकूल देखकर मन ही मन भारी प्रसन्न तो था ही, कुछ-कुछ हँसी-मजाक के मूड मे भी आ गया था । अत विज्ञान को एक दिन पुजारी के रूप मे पीले वस्त्र पहिने मन्दिर जाते देख उसे चिढाने के उद्देश्य से बोला – "कहो, भाई विज्ञान । दूसरो की हंसी उडानेवाले आज स्वय हंसी के पात्र कैसे बन बैठे ? दूसरो को पाखण्ड के चक्कर मे फँसा कहनेवाले आज स्वय इस पाप-खण्डन के चक्कर मे कैसे पड गये, जो सबेरे-सबेरे संन्यासी बने मंदिर जा रहे हो ?"

अपनी झेप मिटाते हुये विज्ञान बोला – "इसे भी तुम एक तरह का चमत्कार ही समझ लो न ।"

ज्ञान – "ठीक है, चमत्कार ही सही, पर यह भी तो बताओ कि चमत्कार कब, कैसे और कहाँ हुआ ? मुझे तुम्हारे मुख से वही सब तो सुनना है ।"

"ठीक है भाई । मैं सुनाऊँगा, अवश्य सुनाऊँगा, तुम्हें नहीं सुनाऊँगा तो और किसे सुनाऊँगा; पर अभी नहीं, फिर कभी फुरसत मे सुनाऊँगा। अभी तो पूजन का समय हो रहा है । सभी लोग मदिर मे मेरी प्रतिक्षा कर रहे होगे । आज सामूहिक पूजन करने का कार्यक्रम है न ।" — ऐसा कहकर विज्ञान मंदिर चला गया और ज्ञान अपने घर ।

× × ×

ज्ञान के मन मे विज्ञान मे हुये इस जादुई परिवर्तन के बारे मे जानने की उत्सुकता बराबर बढ़ती जा रही थी । वह जानना चाहता था कि आखिर यह हथेली पर आम जम कैसे गया ? उसे विचार आया कि — "कही हम लोगो को खुश करने के लिये इसकी यह कोई नाटकीय चाल तो नही है । अथवा किसी भय की आशका से यह किसी मत्र-तत्रवादी के चक्कर मे तो नही आ गया ? कभी-कभी कुछ लोग लौकिक प्रयोजन की पूर्ति की अभिलाषा से अथवा किसी लोभ-लालच में पडकर भी पूजा-पाठ करने लगते हैं — इसके साथ मे भी ऐसा कोई चक्कर तो नही है ?

नही, नही, वह इतना नादान तो नहीं है, जो ऐसी बातो मे आ जाए । और ऐसा कायर व लोभी भी नही है, जो किसी तरह के भय, आशा, स्नेह व लोभ-लालच मे पडकर यह सब आडम्बर करे ।"

ज्ञान किसी एक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पा रहा था । उसे पुन विचार आया — "कुछ नहीं कह सकते । कभी-कभी अच्छे-अच्छे समझदार लोग भी इन मंत्र-तत्रवादियो के चक्कर मे आ जाते हैं ।"

विज्ञान के हृदय परिवर्तन की बात अब भी ज्ञान को रहस्यमयी बनी हुई थी ।

यद्यपि वह विज्ञान की पैनी बुद्धि, सरल हृदय और सज्जन स्वभाव से भलीभाँति परिचित था । पर महत्त्वाकांक्षायें और मानव स्वभाव की कमजोरियाँ क्या-क्या असभावित परिकल्पनाएँ नहीं करा लेतीं । इससे भी वह अपरिचित नहीं था ।

उधर सुदर्शन भी यही सोच रहा था — "विज्ञान का यह आचरण और व्यवहार क्या किसी कूटनीति का परिणाम भी हो सकता है ? उसकी बातचीत व स्वभाव से ऐसा लगता तो नहीं है, पर कोई क्या जाने किसी के परिणामो को ? परिणाम की गति भी बडी विचित्र व चचल होती है । कब-कैसे हो जावे ? कोई नही कह सकता ।"

आत्मविज्ञान को समझने के लिए विज्ञान के पास रसायन-विज्ञान या भौतिक-विज्ञान की भाँति ऐसी कोई प्रयोगशाला तो थी नहीं, जिसमे वह आत्मा-परमात्मा की सिद्धि के लिए प्रयोग कर सके तथा जिस प्रयोगशाला मे आत्मज्ञान का प्रयोग होता है, उससे वह अभी कोसो दूर था ।

आत्मा की उपलब्धि के लिए तो केवल आगम, युक्ति और स्वानुभव ही असली प्रयोगशाला है, जिसके स्वानुभव मे आ जावे, प्रतीति मे आ जावे तो ठीक, अन्यथा उसके प्राप्त करने का अन्य कोई उपाय नही है ।

विज्ञान बात-चीत के बीच-बीच मे जो तर्क-वितर्क करता था, उससे भी ऐसा आभास नही मिलता था कि अभी उसे जिनागम के मूलतत्त्व मे आस्था हो गई है । अत यह कहना कठिन था कि उसके पूजा-पाठ करने के पीछे क्या रहस्य है ?

ज्ञान सोच रहा था — "सभव है बचपन मे उसके दादाश्री द्वारा उसे जो पौराणिक कथाये सुनाकर सस्कारो के रूप मे तत्त्वज्ञान के बीज डाले गये थे, वे ही अनुकूल वातावरण पाकर अकुरति होने लगे हो। कोई किसी के मन को क्या जाने कि उसके मन मे कब से, कैसा/क्या परिवर्तन हो रहा है ?"

ज्ञान भी विज्ञान मे हो रहे अन्तर के परिवर्तन को कैसे पहचान सकता था । उसने तो विज्ञान को अबतक उसी रूप मे देखा था । अत उसमे अनायास हुये परिवर्तन को जानने की उसकी जिज्ञासा स्वाभाविक ही थी । अत अगले दिन जब ज्ञान की विज्ञान से मुलाकात हुई तो सबसे पहले ज्ञान ने अपनी उत्सुकता प्रकट करते हुए कहा —

"भाई ? आज तो तुम्हें अपने इस परिवर्तन की कहानी मुझे सुनानी ही होगी ।"

अपने जीवन परिवर्तन की कहानी सुनाते हुए विज्ञान ने कहा — "मित्र ? नगर निगम के नियमानुसार हमारा कारखाना तो शाम आठ बजे ही बन्द हो जाता था । रात मे अन्य व्यापारिक काम कुछ रहता नही था। अत घण्टे-दो घण्टे को दोस्तों से मिलने और मनोरंजन के लिए मै क्लब चला जाता था, परन्तु मेरा क्लब जाना परिवार मे किसी को भी पसन्द नही था, क्योकि वहाँ दोस्त लोग मिल-जुलकर मुझे यदा-कदा थोडी-बहुत मदिरा पिला दिया करते थे और कभी-कभी रमी (जुआ) खेलते-खेलते घर आने मे देर भी हो जाती थी । इस कारण मेरी वाइफ (पत्नी) विद्या मुझसे रूठी-रूठीसी रहने लगी थी ।

मेरा मित्र सुदर्शन भी नही चाहता था कि मै सजू, राजू, अन्नू और अज्जू जैसे लोगो के साथ उठूँ-बैठूँ ।

मेरे निजी डॉक्टर की भी यही सलाह थी कि मुझे अब हर हालत मे अपने सभी शौको को तिलाजलि देकर शान्ति से घर मे ही अधिक से अधिक समय रहकर विश्राम करना चाहिए, अन्यथा मेरा शेष जीवन खतरे से खाली नही है ।

सर्वप्रथम तो मेरे परम सद्भाग्य से ही मानो ये सब कारण कलाप मिल गये और उनके कारण मेरा उस क्लब मे जाना सदा के लिए बन्द हो गया, जहाँ जाने से में दुर्व्यसन मे फँस गया था ।

दूसरे, उन दिनो आज की तरह घर-घर मे ना तो टेलीविजन सेट थे और ना वी सी आर एव वीडीओ फिल्मे, जिनके कारण जीवन के अमूल्य क्षण यों ही चले जाते हैं । दुर्भाग्य से यदि उन दिनो ये साधन होते तो कम से कम मेरे जैसे व्यक्ति के जीवन के ये शेष महत्त्वपूर्ण क्षण भी निश्चित ही बर्बाद हो जाते ।

तीसरे, डॉक्टर की सलाह के अनुसार अब मुझे आये दिन रोज-रोज सिनेमा जाना भी सभव नहीं था, इसकारण उस दोष से भी बच गया।

पर अब मेरे सामने समय बिताने की समस्या मुँहबाये खडी थी । आठ बजे से घर बैठे-बैठे मै करू तो करूँ भी क्या ? इतने जल्दी कोई नींद तो आती नही है । यही मेरी एक समस्या थी ।

देखो, विधि की विडम्बना । इतने बडे-बडे गलत मार्गो से बच निकलने पर भी अभी मेरे दुर्भाग्य का अन्त नही आया था । तभी तो मैने 'कुँए से निकाला तो खाई मे गिर गया' वाली कहावत को चरितार्थ करते हुए पुन अपने पतन का एक नया मार्ग खोज लिया ।

अब मै वाचनालय से बाजारू अश्लील कथा साहित्य घर ला-ला कर पढ़ने लगा । पहले तो मै इन्हे मात्र नीद लाने के लिए पढता था, पर बाद मे मेरा मन इन काम-कथाओ मे ऐसा उलझ गया कि उस कुत्सित साहित्य ने मेरी नीद हराम कर दी । अब मैं रात के दो-दो बजे तक उन्ही मे आँखे गडाये रहता । जब देर से सोता तो सवेरे नौ-दस बजे के पहले नीद खुलने का नाम ही नही लेती । इससे एकबार फिर मेरी सारी दिनचर्या ही चरमरा गई ।

दैवयोग से वाचनालय तो एकबार लगातार एक सप्ताह तक बन्द रहा और अपन ठहरे पक्के बनिये, सो खाने-पीने और भोग-विलास मे चाहे जितना खर्च कर दे, पर साहित्य खरीद कर कभी नही पढते । पर मजबूरी यह थी कि प्रतिदिन की आदत के अनुसार कुछ न कुछ पढ़े बिना नींद भी नही आती थी । अत सोचा – "चलो, आज दादाजी की अलमारी ही टटोलकर देखते हैं । सभावना तो कम ही थी, क्योकि उन्हें तो केवल धार्मिक ग्रथ और महापुरुषो के जीवन-चरित्रो को सग्रह करने का ही शौक था । फिर भी सोचा – चलो देख लेते हैं, देखने मे हानि भी क्या है, सभव है अपने काम की कुछ पुस्तकें मिल जाये।"

वहाँ उपन्यासो और लौकिक कहानियो का तो काम ही क्या था? पर हाँ, कुछ पौराणिक कथा-कहानियो की पुस्तकें अवश्य मिल गईं । 'न मामा से तो काना मामा ही भला' – 'ऐसा विचार कर उन्हें ही पढ़ना प्रारंभ कर दिया ।

प्रारंभ मे तो कुछ अटपटा लगा, क्योंकि उनकी शैली ही बिल्कुल पुरानी और अपरिचित थीं, परन्तु पढ़ना तो था ही, सो उन्हें ही मनोयोगपूर्वक पढ़ता रहा । जब गहराई मे उतरने की कोशिश की तो बीच-बीच मे आये आचार्यों के उपदेशो ने, नीति वाक्यामृतो ने और पूनर्जन्म के विचित्र कथानको ने मुझे इस दिशा मे सोचने के लिए बाध्य तो किया ही, साथ ही चित्त को भी अपनी ओर आकर्षित किया ।

तब से मेरा मन अधिकाश इसी तरह के साहित्य पढ़ने मे रमने लगा । इसप्रकार मेरे जीवन मे आये इस परिवर्तन के पीछे मूलत तो पौराणिक कथाये ही हैं, जिनमे पुण्य-पाप के फलो की विचित्रता का विस्तृत वर्णन था। पूर्वकृत पापोदय मे बडे-बडे राजा-महाराजा और धर्मात्मा साधु-सन्तो को भी कैसी-कैसी यातनाएँ भोगनी पडती हैं तथा वर्तमान पाप-भावो मे लिप्त प्राणियो को नरकों मे कैसे-कैसे कष्ट उठाने पडते हैं ।

उन दारुण दुख भोगनेवाले जीवो के कारुणिक दृश्यो का चित्रण पढकर मै पापाचरण से विरक्त तो हुआ, पर मेरे मन मे मानसिक उतार-चढाव भी कम नहीं आये । मै उनके सत्यासत्य के निर्णय करने मे कई रात तो सो भी नही सका था । अन्तत मै इस निष्कर्ष पर तो पहुँच ही गया कि – "अपने किये पापो का फल तो प्राणियो को भोगना ही पडता है और मैने भी अपने जीवन मे कोई कम पाप नही किये है । क्या मुझे भी यह सब नही भोगना पडेगा ?

धीरे-धीरे मेरी धारणाये व मान्यताये बदलीं । मै अबतक जो धर्म को ढोग व पूजा-पाठ को पाखण्ड समझ रहा था, अब मेरी समझ मे आया कि – "किसी पुजारी विशेष के पाखण्डी होने से पूजा-पाठ को ही पाखण्ड मान लेना कोई समझदारी का काम नहीं है । इसी तरह धर्मात्मा के भेष में कोई साधू ढोंगी भले हो, पर धर्म की साधना या साधुपना ढोंग नहीं है । धर्म तो आत्मा व परमात्मा का स्वरूप

है । अहिंसा, क्षमा, शान्ति व वीतरागता धर्म है और हिंसा, काम, क्रोध, राग-द्वेष आदि अधर्म हैं । इसमें ढोंग का क्या काम है ?

जिसतरह अग्नि का धर्म उष्णता है, पानी का धर्म शीतलता है, उसी तरह आत्मा का धर्म ज्ञाता-दृष्टा रहना है । ज्ञान आत्मा का धर्म है और अज्ञान अधर्म । वीतरागता आत्मा का धर्म है और राग-द्वेष करना अधर्म । क्षमा आत्मा का धर्म है और क्रोध अधर्म । इस धर्म में कहाँ आडम्बर है और कहाँ पाखण्ड ?"

यही सोचते-विचारते धीरे-धीरे पता नहीं, मेरी रुचि कब-कैसे अनायास ऐसी बदली कि अब तो जब देखो तभी उन्ही कथानको की चर्चा-वार्ता करने का मन होने लगा है । चाहे घर हो या दुकान, मंदिर हो या अन्य कोई स्थान, जब और जहाँ भी मौका मिलता है, घूम-फिर कर वही प्रसग छिड जाता है । अब तो धार्मिक चर्चा-वार्ता करने मे ही अधिक आनन्द आता है ।"

जिसकी जिसमे लगन लग जाती है, फिर उसे सर्वत्र वही-वही दिखाई देता है । लगन का तो स्वरूप ही कुछ ऐसा है, देखो न, जब लडका-लडकी की परस्पर लगन (सगाई) हो जाती है, तब से एक-दो दिन तो बहुत दूर, एक-दो घडियाँ भी ऐसी नहीं जाती, जब एक को दूसरे की याद न आती हो ।' बस, यही स्थिति विज्ञान की उन पौराणिक-धार्मिक कथानको चर्चा-वार्ताओ के बारे मे हो गई थी ।

बैठे-बैठे वह बोल उठता – "अहा । पुराणो का भी अपना अलग आकर्षण होता है । भले ही वे आज की आधुनिक शैली में नही हैं, तथापि अपनी ओर आकर्षित करने की अद्‌भुत क्षमता उनमे हैं । पुराणो मे मुख्यरूप से तो महापुरुषों के आदर्श चरित्र एवं उनके पूर्वभवो का ही वर्णन होता है, परन्तु बीच-बीच में नीतिवाक्यामृत, ऋषियो के प्रेरणादायक उपदेश एव धर्ममार्ग मे लगाने और पापाचरण से हटाने के प्रयोजन से लिखे गये अनेक उपकथानक भी होते हैं ।"

इसप्रकार पुराणों का परिचय देते हुए विज्ञान ने कहा – "भाई वे मुझे इतने रुचिकर लगे कि मै कुछ ही दिनों मे एक के बाद एक अनेक पुराण पढ गया । उनके पढ़ने से मनोरंजन तो जो हुआ सो हुआ ही, साथ ही अनेक नये तथ्य भी ध्यान में आये । अतीत को जानने की जिज्ञासा भी जागृत हुई और परलोक, नरक-स्वर्ग तथा जीवो के भव-भवान्तरो को जानने के बारे मे भी जिज्ञासा जगी ।"

अभीतक मै जिन स्वर्गों व नरको को कल्पनालोक की वस्तुयें मान रहा था, अब वे यथार्थ की भावभूमि पर उतर आये ।

सारा जिनागम सर्वज्ञ व वीतराग की वाणी तो है ही, वैज्ञानिक व मनोवैज्ञानिक तथ्यो पर भी आधारित है और युक्ति व स्वानुभव से भी सभी बाते सिद्ध हैं ।

"स्वाध्याय किये बिना किसी को कैसे पता चले कि वास्तविकता क्या है?"

अभी तक मै स्वर्गो व नरको को किसी सनकी मस्तिष्क की उपज व कल्पनालोक की वस्तुएँ मात्र मानता था, परन्तु पुराणो के अध्ययन करते समय नरको की सिद्धि के पक्ष मे एक तर्क मुझे यह भी ध्यान मे आया कि – वस्तुत. इस मनुष्यलोक में तो ऐसी कोई व्यवस्था है नहीं जिससे हम जगत को सही न्याय दे सकें, अतः कोई एक स्थान ऐसा अवश्य होना चाहिए, जहाँ पूरा न्याय दिया जाता हो ।

कल्पना कीजिए, किसी व्यक्ति ने यहाँ एक निरपराध प्राणी की निर्दयतापूर्वक हत्या की तो भी न्यायालय उसे फांसी की सजा देगा और यदि उसने उन्मादवश इसीप्रकार की निर्दयतापूर्वक हजारों हत्यायें कर डाली तो भी न्यायालय के पास उसे एकबार फांसी का दण्ड देने के सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं है । जब यहाँ हजार हत्याओं के अपराध का कोई अन्य विशेष दण्ड-विधान ही सभव नहीं है तो प्रकृति मे कहीं न कही तो ऐसी व्यवस्था होनी ही चाहिए न ? जहाँ एक से अधिक हत्यायें करनेवालो को तदनुरूप दण्ड व्यवस्था दी जा सके । बस, उसी

स्थान का नाम नरक है, जहाँ पर दण्ड के रूप मे नारकियो द्वारा तिल-तिल के बराबर देह के खण्ड-खण्ड करने से अनन्तबार मरणतुल्य दु ख भोगना पडता है, इसकारण मर जाना चाहता है, पर नरको मे अकाल मृत्यु न होने से मरता नही है ।"

ज्ञान को विज्ञान की इसप्रकार की युक्तिसंगत और आगमसम्मत गभीरवार्ता और विचारधारा सुनकर भारी प्रसन्नता हुई, अत· उसने विज्ञान को हार्दिक बधाई दी ।

यद्यपि एक कार्य की निष्पत्ति मे अनेक कारण मिलते हैं, और उनमे व्यक्ति का अपना पुरुषार्थ ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होता है, किन्तु अन्य कारणो मे निमित्त कारण भी विस्मृत करने योग्य नही है; क्योंकि सज्जन पुरुष दूसरों के द्वारा किये गये उपकारो को भी कभी नही भूलते ।

विज्ञान भी भला अपने उपकार को कैसे भूल सकता था, जिनसे उसे सन्मार्ग मिला था ? अत उसने सभी सहयोगियो के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापन करते हुए इस अवसर पर अपने स्वर्गीय दादाश्री को विशेषरूप से स्मरण किया ।

उसने कहा – "मुझे बार-बार एक विचार यह भी आता है कि यदि हमारे घर मे मेरे पूज्य दादाश्री द्वारा सग्रहीत वह सत्साहित्य नही होता और उनके श्रीमुख से मुझे बाल्यकाल मे वे पौराणिक कथा-कहानियाँ सुनने को नही मिली होती तो मेरा क्या होता ?

धन्य है वह साहित्य, जिसे पढकर और स्मरण कर मुझ में यह असाधारण परिवर्तन होता दिखाई दे रहा है और धन्य हैं वे प्रात· स्मरणीय दादाश्री, जिन्होंने यह सत्साहित्य जुटाया और मुझे जैनधर्म की कहानियाँ सुना-सुनाकर सन्मार्ग पर आने के संस्कार डाले ।

एक दिन रात्रि मे विज्ञान बिस्तर पर पडे-पडे सोच रहा था – "काश । ऐसे ही कोई कारण पाकर मेरे मित्र संजू, राजू और उनके

साथी भी सन्मार्ग पर आ जावे । एतदर्थ भी कुछ प्रयास करना चाहिए। भले ही इसमे मुझे सर्वस्व समर्पण ही क्यो न करना पडे ।"

— यह सोचते-सोचते विज्ञान विचारों में खो गया और निद्रा देवी ने उसे अपनी गोद मे समेट लिया और वह सो गया । •



१०

सेठ सिद्धोमल अपने इकलौते पुत्र सजू के दुर्व्यसन मे पड जाने से बहुत दुखी थे । उन्हें क्या पता था कि उनकी आँखो का तारा एक दिन उन्हीं की आँखो की किरकिरी बन जाएगा ।

उन्होने उसे सुयोग्य बनाने के लिए क्या-क्या नही किया था ? और जो कुछ किया सो तो किया ही, एक योग्य पिता के सभी कर्त्तव्यो और दायित्वो का निर्वाह वे अच्छी तरह कर सकें, एतदर्थ उन्होने एक शोधछात्र की भाँति तत्सबधी साहित्य भी खूब पढा था और जहाँ/जिस साधन से जो जानकारी उपलब्ध होने की सभावना दिखी, उसे प्राप्त करने के लिये वे सतत् प्रयत्नशील रहे ।

अपनी समझ से तो उन्होने उसके लालन-पालन, भरण-पोषण और शिक्षा-सस्कार आदि मे कहीं/कोई कमी नही रखी थी, फिर भी यह सब कैसे हो गया ? भूल कहाँ हुई ? कैसे हुई ? उनकी समझ मे कुछ नही आ रहा था ।

'कभी-कभी अति सावधानी और अधिक चतुराई भी कष्ट कारक बन जाती है' — इस तथ्य से अनभिज्ञ सेठ सिद्धोमल ने अपनी प्राप्त जानकारी के आधार पर सतान को सुयोग्य बनाने के कुछ मन-गढन्त सिद्धान्त (फार्मूले) बना लिये थे, जो उनके लिए दुखद सिद्ध हुए ।

उनका मानना था कि - "सतान को कभी मुँहबोला नहीं बनाना चाहिए, अपने मुँह नही लगाना चाहिए, उसे अपने सिर नही चढाना चाहिए । अपने हृदय मे उसके प्रति कितना भी प्यार क्यो न हो, पर उस प्यार का प्रदर्शन उसके सामने कभी नही करना चाहिए । लाड-प्यार केवल खिलाने-पिलाने तक ही सीमित रखना चाहिए । पढ़ाने-लिखाने और काम-काज सिखाने मे काहे का लाड-प्यार ? वह संतान ही किस

काम की, जो आँखों मे न डरे ? बच्चों की तो बडो से आँख मे आँख मिलते ही आँख नीची हो जानी चाहिए । उसे सब बाते आँख के इशारे मे ही समझना चाहिए । पिता के पैरो की आहट आते ही घर मे सन्नाटा न छाया तो वह काहे का अनुशासन ?"

× × ×

हृदय तो आखिर हृदय ही है । चाहे पिता का हो या माँ का। वह पुत्र से प्यार किए बिना कैसे रह सकता है ? सेठ सिद्धोमल का हृदय भी सजू से प्यार करने के लिए मचल रहा था फिर भी वे हृदय पर पत्थर रखकर अपने बेटे के हित के लिये इन सभी सिद्धान्तो का कठोरता से पालन कर रहे थे । यद्यपि इन सिद्धान्तो पर चलना उनके लिए तलवार की धार पर चलने के समान कठिन था, इसके लिये उन्हें अपने अन्दर बैठे पिता के हृदय को कुचलना पडा था । उनका मन बार-बार अपने प्रिय पुत्र सजू पर ढेरो प्यार उडेल देने का होता था, हँसने-हँसाने का होता था, उसके साथ खेलने और उसे खिलाने का होता था, उसे चटकारे ले-ले कर किस्से-कहानियाँ सुनाने का होता था, अपनी ही थाली मे एक साथ खाना खिलाने का होता था, पर वे अपने ही बनाये सिद्धान्तो का गला अपने हाथो से कैसे घोट दे ? अत: मन मारकर पीछे हट जाते थे और मुख पर गभीर भाव ले आते थे ।

अनेक बार तो ऐसा भी हुआ कि जब सजू सो रहा होता तो चुपचाप दबे पाँवो से उसके कमरे मे जाते और प्यार भरा चुम्बन लेने के लिए अपना मुँह बेटे के मुँह के पास ले जाते, फिर जाग जाने की आशका से तुरन्त पीछे हट जाते । सोते मे प्यार से उसके माथे पर हाथ फेरते, घटों खडे-खडे उसके मुखमडल को निहारते रहते और मन ही मन प्रसन्न होते रहते । पर उसके समक्ष उनका रुख वैसा ही कडा रहता ।

उस विचारे को क्या पता कि उसके पापा का उस पर कितना प्यार है? उसने तो सदा उनका विकराल रुख ही देखा था, अत. वह तो

सिंह के सामने बकरे की तरह भयभीत एव भयाक्रान्त ही रहा करता था ।

यद्यपि घर में वह भीगी बिल्ली की तरह रहता था, पर अपने साथियो मे पहुँचते ही वह शेर बन जाता था । आखिर मनोगत भावनाएँ कहीं न कहीं और कभी न कभी तो प्रगट होंगी ही, कबतक दबाकर रख सकता था वह उन्हें ?

वे अपने पास-पडौस मे बडे गर्व से कहा करते थे – "हमारा सजू तो कभी हमारे सामने आँख उठाकर भी नहीं देख सकता, मुँह लगने की तो बात ही क्या ? कभी पूरा मुँह खोलकर बात भी नही कर सकता । सतान हो तो ऐसी हो ।

यद्यपि घर मे किसी बात की कमी नहीं, पर हम तो सजू को जेबखर्च हिसाब-किताब से ही देते हैं । मुँहमाँगा मनमाना रुपया-पैसा मिलने से लडके बिगड जाते है । वह भी कभी सामने आकर रुपये-पैसे मागने की या अन्य कोई जिद करने की हिम्मत नही करता । जो दिया, सो चुपचाप ले लेता है । इस कलयुग मे सजू जैसा लडका चिराग लेकर ढूँढ़ने से भी नही मिलेगा ।"

सेठ सिद्धोमल की बच्चो को शिक्षा दिलाने के सबध मे यह धारणा बन गई थी कि – "भला बिना पिटाई के भी कही विद्या आती है ?" वे कहा करते थे – 'डडा चाले धम-धम, विद्या आवे छम-छम', अत उन्होने स्कूल के सभी अध्यापको से कह रखा था – सजू की हड्डी-हड्डी हमारी और चमडी-चमडी तुम्हारी । पीटते समय इतना ध्यान अवश्य रखना कि कही हड्डी न टूट जाय । यदि आप लोगो की बात न माने तो उधेड दो चमडी अच्छी तरह----। हम कुछ कहने वाले नही हैं ।"

सेठ सिद्धोमल के इस अविचारितरम्य कथन का अध्यापको ने भरपूर दुरुपयोग किया, खूब अनुचित लाभ उठाया । अब घर-बाहर का कोई भी काम हो, सबसे पहले सजू पर ही नजर आती थी, क्योंकि सजू

से कोई भी काम कराने मे उन्हें कोई खतरा नही रहा था । पिता का परमिट जो मिल गया था ।

परिणाम यह हुआ कि सजू स्कूल जाने से ही जी चुराने लगा । आखिर वह कब तक चमडी उधडवाता और वह भी पढ़ाई के कारण नही, बल्कि मास्टरजी के घरेलू कामो के कारण । या तो मास्टरजी के घर का काम करो, नही तो बन जाओ बेटा मुर्गा । चाहे काम उसके वश का हो या न हो, करना तो पडेगा ही, वर्ना-----।

× × ×

बच्चो को यदि कोई मारे-पीटे, परेशान करे तो उसके लिए पिता ही सबसे बडी अदालत होती है, जहाँ वह अपनी फरियाद करता है, पर सजू के लिए उस अदालत के दरवाजे तो पहले से ही बद हो चुके थे, उसके पिता तो उसकी बात सुनते ही नहीं थे । आखिर सुने भी क्यो ? उसके प्रति उनकी यह धारणा जो बन गई थी कि "बच्चो को मुँह लगाना ठीक नही । शिकवा-शिकायतो के सिवाय बच्चे कहेगे भी क्या ? बस खेलने, खाने और पानी की तरह पैसा बहाने के अलावा बच्चो को काम ही क्या है ? -----"

इन कारणो से उसके लिए तो अब केवल माँ ही उसकी सुप्रिम-कोर्ट थी । सो जब पानी सिर के ऊपर से जाता दिखता था तो माँ के सामने केवल उदास हो मुँह लटका कर बैठ जाता, बस इसी मे माँ सब-कुछ समझ जाती और आम महिलाओ की भाँति बड-बडाकर अपने गुबार निकाल लिया करती । पति के सामने इससे अधिक तो वह भी क्या कर सकती थी ?

एक दिन सजू की माँ सुधा ने अपने बीस वर्षीय बेटे सजू को उदास बैठा देखकर छोटे बच्चे की तरह अपनी गोद मे उसका सिर रखकर माथे पर हाथ फेरते हुए कहा — "बेटा । क्या बात है ? आज तू ऐसा उदास क्यो हो रहा है ? क्या पिताजी ने कुछ कहा है, डांटा-डपटा है ?"

माँ के मुँह की ओर दयनीय दृष्टि से देखते हुए सजू कुछ कहना ही चाहता था कि उसे कहने का अवसर दिये बिना ही सुधा ने कहना चालू रखा – "उनकी तो आदत ही ऐसी हो गई है, जब देखो तब डाँटते ही रहते है । कभी प्यार से बोलना तो जानते ही नहीं हैं। चाहे किसी की गलती हो या न हो, बस उनके सामने तो मुँह सिये बैठे रहो तो ठीक, किसी ने कुछ कहा नही कि बरस पडे । एक बोतल का नशा तो मानो बिना पिए ही चढा रहता है। आखिर । मेरे बेटे ने ऐसा कौन-सा अनर्थ कर डाला है ? बिचारा मुँह बोलना तक तो जानता नहीं है ।"

सजू ने फिर डरते-डरते अपनी बात कहनी चाही, तो माँ ने कहा – "चल । उठ ।। हाथ-मुँह धोले और नाश्ता कर । आने दे अभी तेरे पापा को ... आज मै उन्हें समझाकर ही रहूँगी । अरे । अब बच्चा बच्चा नही रहा, बराबरी का हो चला है, पर कुछ सोचते ही नही हैं और यदि खुदा न खास्ता कभी मेरे मुँह से सजू के लिए कुछ निकल गया तो मुझे उपदेश झाडने बैठ जात .. ...। बडे प्यार के लहजे मे कहेंगे – सुधाजी । आखिर बच्चा है, बच्चे गल्तियाँ नही करेंगे तो क्या हम बूढ़े लोग करेंगे? बच्चो पर ज्यादा गरम न हुआ करो ।" ऊँह ......। आने दो आज ......।

× × ×

सेठ सिद्धोमल के घर मे प्रवेश करते ही सुधा ने उन्हें आडे हाथो लेते हुए पुन कहना प्रारंभ कर दिया – "ओह । सजू के पापा । जब मै सजू को थोडा-बहुत डाँटती-फटकारती हूँ तो आप ही मुझे समझाते हो और बडी-बडी पोथियो के पन्ने पढ़-पढ़ कर सुनाते हो । मुझे याद है एक बार आपने एक श्लोक सुनाया था –

"लालयेत् पंचवर्षाणि, दस वर्षाणि ताडयेत् ।
प्राप्ते तु षोडसे वर्षे पुत्रं मित्रं समाचरेत् ॥

याद है न ?"

"हाँ, हाँ सुधा । देखो न । कितना अच्छा कहा इस संस्कृत के कवि ने ।" — सिद्धोमल ने उत्साहित होते हुए कहा ।

"क्या खाक अच्छा कहा — यदि अच्छा कहा होता तो तुम यह क्यो भूल गये कि अब आपका बेटा भी बीस बरस का हो गया है।" मै पूछती हूँ — "और कबतक डाँटते-डपटते रहोगे इस तरह" ? सुधा ने अधिकार भाव से अपनी बात चालू रखते हुए आगे कहा — "देखते नही अब आपके बेटे की डाढी-मूँछे निकल आई है । क्या अब भी दस-बारह वर्ष के बच्चो की तरह डाँटते-फटकारते रहोगे ?

नम्र होते हुए सिद्धोमल बोले — "डाढ़ी-मूँछों की कुछ न कहो, उनसे क्या फर्क पडता है । डाढ़ी-मूँछे तो बकरे के भी निकल आती है, क्या उनसे वह बकरा समझदार हो जाता है ? अस्तु । पर, यह तो बताओ महाभाग । कि मैने आज इससे कहा ही क्या है ? किसी की बिना सुने जो मन आये कहे ही जा रही हो । अरे । मैने सजू से आज तो कुछ कहा ही नहीं, पिछले एक सप्ताह से भी मेरा सजू से आमना-सामना नही हुआ । पता नहीं वह एक सप्ताह से क्यों मुझसे आँखे चुरा रहा है, मै इधर तो वह उधर, मै उधर तो वह इधर — दूर-दूर रह रहा है । फिर यह डाँटने-डपटने की बात आई कहाँ से ?

मै उससे कुछ पूछना अवश्य चाहता था, पर उसका यह रुख देखकर मैने जान-बूझकर बात नहीं की, क्योंकि मुझे अपने काम से ही फुरसत नही थी, अत मैने कोई भी बात छेडना ठीक नही समझा । आज तो मैने इस मनहूस की सवेरे से सूरत भी नहीं देखी, फिर यह बात आई तो आई कहाँ से ? मै तुमसे यह पूछना चाहता हूँ ।" — जरा । तेज स्वर में सिद्धोमल ने कहा ।

झुझलाते हुए सुधा ने कहा — "फिर मनहूस कहा, क्या यह डाँटना नहीं है ?"

"अरे । श्रीमतीजी । पर, यह तो मैने अभी कहा, इसके पहले क्या कहा ? जरा वह भी तो सुनूँ ।"

"मै कुछ नहीं जानती, यदि तुमने कुछ नहीं कहा तो फिर यह आज सवेरे से उदास क्यो है ? आज तो इसने खाना भी ढंग से नहीं खाया" – रुँधे गले से भर्राई हुई आवाज मे सुधा ने कहा ।

"मै क्या जानूँ ? इसकी इससे पूछो । मैने तो इससे अब कुछ कहना ही छोड दिया है, मुझे इस पर कितना गर्व था, इस कलयुग मे मुझे तो केवल यही एक सतयुगी बालक नजर आता था । पर जब से इसने स्कूल छोडा, तब से दिन-प्रतिदिन आवारा होता जा रहा है। आये दिन अडौसियों-पडौसियों की शिकायते सुनते-सुनते मेरे तो कान ही पक गये हैं । मेरी तो इसने नाक ही कटा दी है । अब तो इससे कुछ कहने को मेरा मन ही नहीं होता ।" – कहते-कहते सेठ सिद्धोमल भावुक हो उठे । हताश हुए दुखी मन से वे कहे जा रहे थे और सुधा विस्मयभाव से सुने जा रही थी – "अरे सजू की अम्मा । क्या करे इस मूरख का ? इतना बडा हो गया और आवारा बना फिरता है । अरे । बनिये का बच्चा है, न पढ़ पाया तो न सही, कौनसी नौकरी करनी थी, अपना धन्धा-व्यापार ही देखता । मै कब तक देखूँगा ? इतना बडा व्यापार और अकेली मेरी जान । क्या-क्या देखूँ ? तुम्हारे लाडले द्वारा घर का काम-काज देखना, मेरे काम मे हाथ बटाना, मेरा सहयोग करना तो एक तरफ रहा, मै तो रोज-रोज उसके उलाहने सुनते-सुनते ही परेशान हो गया हूँ ।

जहाँ देखो, वहाँ से उधार ले रखा है, जिसका लिया उसे वापिस देने का नाम नही, बाप जो बैठा है चुकानेवाला । झूठ अलग बोलता है, धोखा-धडी ही धन्धा बना रखा है । घर की कितनी चोरी की है, यब तो तुम सोच भी नही सकती । जब आये दिन होती हुई चोरी से मै परेशान हो गया तो मुझे एक-एक करके सभी नौकरों की छुट्टी करनी पडी है । अन्यथा चोरी के कलक का टीका उन बेचारो के माथे पर मुफ्त मे ही लग रहा था ।"

यद्यपि सेठ सिद्धोमल जान रहे थे कि चोरी नौकर नही करते, उनका बेटा ही करता है, पर नौकरो पर आँच न आये एतदर्थ उन्हें हटाना आवश्यक हो गया था । नौकरो के हटाने के बाद भी जब घर मे चोरी होना बन्द नही हुआ, तब तो हथेली पर रखे आवले की तरह स्पष्ट हो ही गया कि चोरी और कोई नही करता, सजू ही करता है, पर पुत्रमोह मे सजू की माँ ने कभी यह स्वीकार नही किया ।

× × ×

सजू की माँ की शह, मित्रो के दबाव और व्यसनो की बढ़ती हुई मार से वह धीरे-धीरे इतना मुँहफट और उद्दण्ड हो गया था कि पिता के पूछने पर उसने स्पष्ट कह दिया – "हाँ रुपये मैने उठाये हैं, बोलो । आपको इसमे कुछ कहना है ? जो कुछ कहना हो, कहो, दिल खोलकर कहो ।"

सजू की इसप्रकार दु साहसपूर्ण बाते सुनकर सेठ सिद्धोमल आग-बबूला हो गये । उन्होने कहा – "अच्छा तो तू ही चोर है ।"

"चोर । कैसा चोर ? मैने किस की चोरी की है ? जो मै चोर हूँ । मेरा माल है, मैने अपने काम मे लिया है, इसमे आपके पेट मे दर्द क्यो होता है ? बाप का पैसा बेटा खर्च नही करेगा तो और कौन करेगा ? लाओ तिजोरी की चाबियाँ भी मुझे दे दो, वर्ना ।"

सजू का इसप्रकार उद्दण्डता भरा व्यवहार देखकर सिद्धोमल ने माथा ठोक लिया और अचनाक सीने मे दर्द हो जाने से सीने को जोर से दबाते हुए वही बैठ गये ?

उनकी समझ मे नहीं आ रहा था कि यह कैसे हुआ ? और अब उन्हे क्या करना चाहिए ? सबसे पहले तो उन्होने उसको सर्व अधिकारो से वंचित करने की कार्यवाही करते हुए दैनिक पेपर मे यह सूचना निकलवा दी कि – "आज से सजू का मेरी सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं है । अत जो भी इसको आर्थिक सहयोग करेगा, उसकी जिम्मेदारी मेरी नही होगी" और पत्नी के लाख समझाने पर भी माँ की ममता की परवाह न करते हुए सजू से हमेशा के लिए सम्बन्ध विच्छेद क

लिया । तब से सजू आवारा बना दर-दर की ठोकरें खाते हुए समाज और राष्ट्र का कोड (कलक) बनकर रह गया ।"

यही सब रोना रोते हुए सिद्धोमल ने पत्नी से कहा — "सुना है उन अन्नू-अज्जू की गरीब पत्नियाँ अलग घाट-घाट पर इसके नाम को रोया करती हैं । अन्नू-अज्जू सीधे-सादे गरीब आदमी है, दैनिक मजदूरी करके अपना एव अपने परिवार का भरण-पोषण कर रहे थे, इसने उन्हें भी मदिरा पिला-पिला कर बर्बाद कर दिया है । एक बात होवे तो बताऊँ, क्या-क्या कहूँ इसकी करतूते ?"

बात पूरी ही नहीं हो पायी थी कि बीच मे ही पुत्र व्यामोह मे पडी सुधा ने कहा — "संजू के पापा । तुम्हें तो केवल एक सजू की ही सब गलतियाँ दिखती हैं । बेचारा वह अभी क्या जाने इन बातो मे ? ये औरते छिनारे ही ऐसी होती हैं, जो खुद तो दूसरों पर डोरे डालती हैं और बदनाम करती है बेचारे बच्चो को । तुम क्या जानो तिरिया-चरित्तर ? खैर, और तो सब ठीक, पर तुम उस पर कभी हाथ मत उठाना ।"

"अरे सुधा । मै क्या पागल हूँ, तू ने कभी देखा है उस पर हाथ उठाते ? हाँ, डाँटता-फटकारता तो मै अवश्य हूँ, पर पीटना तो मैने पिछले पाँच बरस से छोड दिया है । इतना तो मै अच्छी तरह समझ गया हूँ कि जब बाप का जूता बेटे के पैर मे आने लगे तब से बेटो पर हाथ नही उठाना चाहिए ।

देखो । तुम्हारे सामने कैसा भोला बना नीची गर्दन किये बैठा है। तुम्हें मालूम है यह तुम्हारे पास आज क्यो आया है और ऐसा रूठा-रूठा उदास-सा क्यो बैठा है ?"

सुधा ने अत्यन्त दुख के साथ कहा — "प्राणनाथ । मुझे यह कुछ मालूम नहीं था, मै व्यर्थ ही तुम पर इतनी झल्ला रही थी ।"

"तो सुनो, मैंने अब इसके सब तरफ से पख काट दिये हैं, मैने बाजार में सबसे साफ-साफ कह दिया, इसे कोई उधार न दे, वर्ना मै जिम्मेदार नहीं हूँ ।"

बस, अब जब इसे तुम्हारे सिवाय और कहीं शरण नहीं दिखी, तब यह तुम्हारे पास आया है ।

× × ×

माँ की तो कुछ ममता ही ऐसी होती है कि वह सबकुछ जानकर भी अनजान बन जाती है । पापा के चले जाने पर सजू ने अपनी मजबूरी का बयान करते हुए कहा – "माँ । इसमे मेरा क्या अपराध है ? स्कूल मे मास्टरो ने मुझे पढ़ने ही नही दिया, दिन भर अपने घर का काम कराते, बच्चो को खिलवाते, काम नही बनता तो कामचोर कहकर मारते-पीटते और पापा से शिकायत करने की धमकी देते । इधर पापा उनके विरुद्ध कुछ सुनने को तैयार नही थे, अत मुझे मजबूर होकर स्कूल छोडना पडा ।

तुम जानती ही हो कि पापा मुझे जेब खर्च को कितना-सा पैसा देते ? सारे दोस्त मेरी मजाक उडाते । इस कारण मुझे उधार लेना पडा । वह डॉ साहब का लडका राजू है न ? वह मेरा दोस्त है और उसके पापा उसे मन चाहा खूब पैसा देते, उसके साथ रहते-रहते उसने पहले मुझे सिगरेट पीना सिखा दिया और बाद मे उसके साथ रहने से धीरे-धीरे मुझे भी मदिरा पीने की आदत पड गई ।

एक दिन जब कही से मुझे रुपये नहीं मिले तो मैने पापा की जेब से हजार रुपये उठा लिये । पापा कहते है – "मैं चोर हूँ, भला अपने पापा के पैसे लेना भी चोरी है । वह तो मेरे ही हैं न ? चाहे आज लूँ या कल ?"

सजू की माँ सजू की बाते सुनकर किंकर्तव्यविमूढ़-सी होकर हतप्रभ रह गई, क्योकि पहली बार सजू को इतना बोलते सुना था । अत उसने पूछा – "बेटा । यह सब बोलना तुझे किसने सिखाया ?"

सजू ने कहा – "राजू अपने पापा से खूब बोलता है । माँ ! उसके पिता उसे जेब खर्च को मनमाना रुपया देते हैं, वे राजू से कभी कुछ नहीं कहते ।"

यदि गेंद को जरूरत से ज्यादा दबाया जाय तो या तो हाथ से छूटकर एवं उचट कर दूर चली जाती है या फिर फूट जाती है। यही स्थिति सजू की हुई थी । अब वह माता-पिता से उचट कर दूर, बहुत दूर जा गिरा था । •



११

छोटा परिवार सुखी परिवार का नारा देनेवाले डॉ धर्मचन्द और उनकी पत्नी डॉ कनकलता जब दैवयोग से बडे परिवार के चक्रव्यूह मे फस गये तो उनकी दशा भी दयनीय हो गई थी ।

पुत्र की चाह मे न चाहते हुए भी उनके एक के बाद एक — तीन लडकियाँ हो गई । राजू उनकी चौथी सतान था । तीनो बहने राजू से बडी थी । माता-पिता मिलाकर पूरे परिवार मे आठ सदस्य हो गये थे ।

यद्यपि आर्थिक दृष्टि से उनके पास कोई कमी नहीं थी, पिता रिटायर्ड जज थे, अत उन्हे भी भरपूर पेशन मिलती थी । लाखो रुपये अनिवार्य जमा योजना, जीवन बीमा आदि के उन्हें मिल चुके थे । डॉ दम्पति शासकीय सेवा मे सर्वोच्च पदो पर तो थे ही, अच्छी प्रतिष्ठा होने से उनके घर पर भी मरीजो की भारी भीड रहा करती थी ।

पर, संतान के जीवन को सुखमय बनाने के लिए पैसा ही सब कुछ नहीं होता, संतान पर व्यक्तिगत ध्यान देना भी अति आवश्यक होता है । थोडा-सा भी ध्यान हटा नहीं कि संतान पतन के किसी भी गहरे गड्ढे में गिर सकती है ।

डॉ धर्मचद और उनकी पत्नी डॉ कनकलता का स्वयं का कहना था कि "संतान पैदा करने से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण उनका सही ढंग से लालन-पालन, देख-भाल और पढ़ाने-लिखाने के साथ उनके सम्पूर्ण भविष्य को उज्ज्वल बनाना होता है और आज के इस महगाई के युग मे तथा अत्यन्त व्यस्त जीवन में कोई कितना भी साधन सम्पन्न क्यो न हो, दो संतानों से अधिक का दायित्व वहन नहीं कर सकता।

पुत्रों के प्रति माता-पिता का जितना दायित्व है, उससे भी कहीं बहुत अधिक दायित्व पुत्रियो के प्रति होता है, क्योकि यदि योग्य घर-वर की कमी के कारण उनका जीवन सुखी नही रह सका तो उनके माता-पिता न केवल उत्तरदायी ही होते हैं, बल्कि पुत्रियो को दुःखी देखकर स्वय भी दुःखी होते हैं । और यह पीडा जीवनभर सहनी पडती है । यदि दैवयोग से रूप-रंग या गुणों मे हीन हुई, तब तो लाखो रुपये खर्च करने पर भी योग्य घर-वर मिलना दुर्लभ हो जाता है ।

अत सन्तानोत्पत्ति के समय यह विवेक जरूरी है कि जितना उत्तरदायित्व निभा सके, उतनी ही संतान हो ।

यह सब जानते हुए भी पुत्र-लालसा ने डॉ धर्मचन्द और उनकी पत्नी डॉ कनकलता को अधा बना दिया था । दूसरो को मार्गदर्शन देने वाले स्वय ही मार्ग से भटक गये थे । परिणाम यह हुआ कि उनके कुल का दीपक एकमात्र पुत्र राजू पारिवारिक तूफानी थपेडो मे 'दिया और तूफान' की कहानी बनकर रह गया ।

× × ×

दादी माँ ने आवाज लगाई – "बेटा राजू । तू तैयार हो गया है न ? मुझे मन्दिर जाने को देर हो रही है, प्रवचन आरम्भ हो गया होगा ? चल बेटा चल, मुझे जल्दी छोड आ ।"

"दादी माँ । मुझे तो आज स्कूल से ढेर सारा होमवर्क (गृहकार्य) मिला है, मै वह कब करूँगा ?" – राजू ने कहा ।

"बस, छोडकर आ जा, वहाँ से तो मै किसी तरह उठते-बैठते किसी के साथ आ भी जाऊँगी । पर यहाँ से एक तो अकेली जाऊँ कैसे ? और किसी तरह धीरे-धीरे चली भी गई तो जब तक पहुँचूँगी, तबतक प्रवचन ही पूरा हो जायगा । बेटा । तुझे वहाँ रोकूँगी नहीं, चल जल्दी चल, देर मत कर ।"

किताबें-कापियाँ समेटकर बस्ते मे रखता हुआ राजू बडबडाया – "प्रतिदिन यही समय तुम्हारे मन्दिर जाने का होता है और यही समय

मुझे होमवर्क करने को मिलता है । तुम ही बताओ दादी माँ । ऐसा कैसे चलेगा ? कब तक चलेगा ?"

"अरे बेटा । तू ही बता न ? तेरे सिवाय मेरे बुढ़ापे का सहारा और है ही कौन ? मुझे रास्ते मे कुछ दिखाई तो देता नहीं है । सडक पार करने मे यदि किसी की टक्कर लग गई तो मेरी तो हड्डी-पसली ही टूट जायगी न ?" — बडे ही दीनभाव से दादी माँ ने कहा ।

"दादी माँ । यदि मन्दिर न जाओ तो नहीं चलेगा ?"

"बेटा । इसमे जाये बिना चलने न चलने की बात ही क्या है? भगवान थोडे ही कहते हैं कि तुम हमारे दर्शन करने आओ । दर्शन-पूजन करने और प्रवचन सुनने से अपना ही लाभ है, इसलिए जाते हैं ।"

"क्या लाभ होता है इससे ?" — राजू ने पूछा ।

"बेटा अभी ही सब कुछ पूछ लेगा, अभी तो तू मुझे वहाँ पहुँचा दे, वहाँ जाने की जल्दी है न ? फिर जब भी तुझे समय मिले — मेरे पास आ जाना, मै तुझे सब समझा दूँगी । हाँ, जब तूने पूछ ही लिया है तो इतना तो तू भी समझ ही ले कि जो प्रतिदिन भगवान के दर्शन-पूजन करता है, वह एक न एक दिन स्वयं भगवान बन जाता है । बाकी विस्तार से फिर कभी बताऊँगी । अब जल्दी चल। बाते रास्ते मे कर लेना ।"

रास्ते मे चलते-चलते दादी माँ ने कहा — "बेटा, मैने तो जिन्दगी मे कभी भी बिना मन्दिर का खाया-पिया नहीं है और बिना प्रवचन सुने भी कभी रही नहीं — इसलिए मैं सोचती हूँ कि अब थोडी-सी जिन्दगी और है, बुढापे मे धरम-करम न छूटे तो अच्छा है । एकमात्र यही तो जीवन की सच्ची कमाई है, इसके सिवाय और तो साथ जाता ही क्या है ? बेटा । यह तो मेरा सौभाग्य है जो तुझ जैसा पोता मिल गया, अन्यथा मुझे इस बुढ़ापे में यह सहारा और कौन देता ?

हाँ, और सुन ! मै तुझे प्रतिदिन दो रुपये दूँगी, पर तू यह किसी से कहना नही कि मै तुझे रुपये देती हूँ। जो भी जी मे आये खा-पी लिया करना, समझे ।"

दादी माँ ने मन मे सोचा — "मुझे कौन-सा यह सब सिर पर बाँधकर ले जाना है । बच्चा है, खायेगा-पीयेगा और इस लालच मे मेरा काम कर दिया करेगा ।"

"अच्छा दादी माँ । तुम कितनी अच्छी हो । जब तुम तैयार हो जाया करो तो मुझे आवाज दे दिया करना, मै कम से कम तुम्हारा काम तो करूँगा ही, तुम्हें दिखता नही है न ?

× × ×

राजू स्कूल से लौटा ही था कि दादाजी ने आवाज लगाई — "बेटा राजू । तुम आ गये ? जरा सुनो तो बेटा । मै तुम्हे यह पर्चा दे रहा हूँ, सो तुम दौडकर बाजार से दवा तो ले आओ ।"

"अरे । दादाजी, स्कूल से आया नहीं कि फिर " ?

"अरे बेटा । ऐसी बाते नहीं करते । देख बेटा । यदि मेरा काम तू ही नहीं करेगा तो और कौन करेगा ? मै तो तेरी कब से प्रतीक्षा कर रहा हूँ ? कितना अच्छा है मेरा बेटा । देख बेटा । तेरी बहिने तो अकेली बाजार जाने से रही, फिर उन्हें पढ़ाई के कारण समय ही कहाँ मिलता है? ले ये पच्चीस रुपये, इनमे से दो-ढाई रुपये बचेगे सो तुझे जो कुछ पसद हो खा-पी लेना । ठीक है न ?"

"अच्छा दादाजी । आज तो ले आता हूँ, पर ।"

"पर क्या बेटा । अब तो जबतक जीना है तबतक यही सब चलना है और यदि तू ही आना-कानी करेगा तो बोल और मै किससे कहने जाऊँगा ? हाँ, तुझे जेब खर्चे को जितने पैसे चाहिए हो, मुझसे ले जाया कर, पर ध्यान रखना, काम को कभी मना मत करना, समझे।"

राजू ने सोचा — "चलो ठीक है, दादा और दादी — दोनो से मन चाहे रुपया मिलेंगे सो खूब मजा आयेगा । इनका काम ही कितना-सा

है और फिर इनका काम करने से पापा भी तो खुश रहेंगे सो इनके सिवाय उनसे अलग पैसे से लिया करूँगा । गुड । वेरी गुड ।। इतने पैसे मेरे दोस्तों मे किसी को भी नही मिलते होगे, जितने मुझे मिलेंगे ।"

एक दिन राजू के पापा ने पूछा – "क्यों बेटा । तुम दादाजी और दादी माँ का काम तो बराबर करते हो न ?"

राजू ने एक क्षण सोचकर जवाब दिया – "पापा । करता तो हूँ, पर उनके कामो मे मेरा बहुत समय खराब हो जाता है, पापा आप ऐसा करो न? किसी लडके को इस काम के लिए नौकरी पर रख लो तो कैसा रहे?"

"अरे बेटा । अच्छे लडके मिलते ही कहाँ हैं ?"

"अच्छा पापा । यदि अच्छा लडका मिल जाय तो आप उसे क्या वेतन दे सकते हो ?"

यदि अच्छा लडका हुआ तो यही पाँच-सात रुपया रोज दे देगे ।

"हँसते हुए राजू बोला – "अच्छा पापा । बताओ मै कैसा लडका हूँ – अच्छा या बुरा ?"

पापा ने हँसी का जवाब हँसी मे देते हुए कहा – "अच्छा अब समझा मै । तू तो मुझसे भी ज्यादा होशियार हो गया है । अच्छा चलो ठीक है, तुम्हें पाँच रुपये रोज मिलेगा, पर दादाजी की कभी शिकायत नही आनी चाहिए ।

और हाँ, राजू सुनो । कल तुम्हारे मास्टरजी मिले थे, वे कह रहे थे कि आजकल राजू स्कूल समय पर नही पहुँच रहा है, क्या बात है ?"

"बात क्या है पापा ।"

राजू कुछ कहना ही चाहता था कि "चलो कोई बात नहीं, आगे ध्यान रखना " – यह कहकर उसके पापा अस्पताल चले गये ।

× × ×

बडी बहिन बेबी ने कहा – "राजू । राजू ।। ओ राजू ।।। क्यों राजू । तू सुनता क्यो नहीं है ? बहरा हो गया है क्या ?"

"क्या है दीदी ?वही बैठे-बैठे राजू ने कहा ।"

"वहीं बैठे-बैठे दीदी-दीदी करता रहेगा या यहाँ आयेगा भी ?"

राजू ने झुझलाकर अपना बस्ता एक ओर फेंकते हुए कहा – "फरमाओ । क्या आज्ञा है ?"

"जरा बाजार तो चला जा, सब्जी लेकर लौटते समय प्रोफेसर सिन्हा के यहाँ से एक बुक लेते आना ।"

"मै अभी डॉ सिन्हा के यहाँ नहीं जा सकूँगा, अभी मुझे स्कूल का कुछ जरूरी काम करना है । अभी-अभी बबली दीदी ने भेजा था, तभी तुम अपना काम बता देती । अब तो मै जब शाम को अपने काम से जाऊँगा तभी आपकी बुक भी ले आऊँगा ।" सब्जी तो अभी ढेरों पडी है, देखो न जरा फ्रिज मे ।"

"मुझे क्या पता था कि तू कब/कहाँ जाता है ? मुझे तो अभी बुक चाहिए । तू अभी जाकर ला । यदि मेरा कहना नहीं मानेगा तो समझ लेना, मै तुझसे कभी भी बात नहीं करूँगी और कभी कोई चीज लाकर तुझे नहीं दूँगी । ठीक है मत जा । आने दे पापा को ।"

× × ×

राजू सोच रहा था – "एक बिचारा राजू और ढेर सारे काम । किस-किस के काम करे ? और कब करे ? सभी के सब काम अर्जेन्ट, न कोई काम कल पर छोडा जा सकता है और न दो-चार काम कभी एक साथ ही किये जा सकते हैं ? जब जिसके मुख से जो निकले वह काम उसी समय होना चाहिए । सबको अपना-अपना काम ही महत्त्वपूर्ण लगता है, दूसरे के काम की तो किसी को कोई परवाह ही नहीं ।"

मम्मी-पापा के आते ही बेबी ने कहा – "पापा ! न तो राजू पढ़ता ही है और न कोई काम ही करता है, मै तो इससे तग आ गई हूँ ।"

बबली ने भी छाप लगा दी, "हाँ, पापा । दस बार कहो तब एक बार सुनता है ।"

जब मम्मी-पापा राजू की शिकायतें सुनते-सुनते परेशान हो गये तो एक दिन उन्होने भी लडकियो से कुछ कहने के बजाय राजू को ही उसके कर्त्तव्य का बोध कराया ।

उन्होने प्रेम से कहा — "देखो बेटा । हमे तो समय मिलता नही है, घर पर भी दिन-रात मरीज घेरे रहते हैं और अस्पताल भी जाना ही पडता है । दादी-माँ और दादाजी से तो अपना ही काम नहीं हो पाता । वे तो बिचारे कुछ कर ही नहीं सकते, उल्टा उन्हीं की सेवा अपने को करनी है । घर मे तुम्ही तो सबसे छोटे हो । और छोटो का कर्त्तव्य है कि वे बडो की बात माने । तुम्हारी बहिनों का काम तुम नही करोगे तो और कौन करेगा ? तुम्हीं तो एकमात्र उनके भाई हो । कल शादी होकर सब अपनी-अपनी ससुराल चली जावेगी, फिर कौन कहेगा तुमसे काम करने को? और उनकी डॉक्टरी की पढ़ाई भी तो कठिन है न ? तुम्हारा कितना-सा होमवर्क है ?

और हाँ स्कूल से भी कोई शिकायत नही आनी चाहिए । ठीक है न ।"

मम्मी ने भी पापा की हाँ मे हाँ मिलाते हुए राजू को उसके कर्त्तव्य का पाठ पढाया ।

वह माता-पिता को मना भी नहीं कर सका और सब के सभी काम भी करे तो कैसे करे ? इस कारण वह विचार मे पड गया, किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया ।

सोचने लगा — "करूँ तो करूँ क्या ? यह सब कैसे सभव है? काम का कोई ओर-छोर तो है नहीं ? जिसके सामने दिखता हूँ, वही छोटा समझकर आदेश दे देता है । कुछ नहीं तो जितने बार भी कालबैल — घंटी बजे — दरवाजा ही खोलते-लगाते रहो । कोई मेहमान आये तो पानी ले आओ, चाय बनालो, पान ले आओ, कुछ नहीं तो वह शीशी उठाना, वह रबर देना, स्केल कहाँ है ?

जब बच्चा सामने बैठा हो तो किसी को भी हिलने-डुलने की क्या जरूरत है ?"

राजू ने सोचा – "अच्छा तो यह होगा कि अपन किसी के सामने ही न रहे, तो फिर न कोई देखेगा और न भौकेगा । न होगा बास न बजेगी बासुरी ।"

यह गुरुमत्र बुद्धि मे आते ही वह खुशी के मारे उछल पडा । बस, अब क्या था ? अब तो वह अधिकाश समय घर से बाहर ही रहने लगा ।

जब पापा पूछते – "कहाँ गये थे राजू ? तो राजू का उत्तर होता – दादाजी के काम से ।"

और जब दादाजी पूछते – "राजू बहुत देर से दिखे नही कहाँ चले गये थे ?"

राजू का उत्तर होता – "पापाजी के काम से ।"

इस तरह कोई भी क्यो न पूछे – तुरन्त एक को दूसरे का नाम व काम बता कर छुट्टी पा लेता ।

धीरे-धीरे स्कूल जाने से भी बचने लगा, क्योकि जब स्कूल का होमवर्क पूरा नही होता तो वहाँ से भी शिकायतो पर शिकायते आती। और जब घर मे ठहरेगा ही नहीं तो होमवर्क करे कब ?

बाहर रहने के लिए भी तो कोई न कोई सहारा और साथी चाहिए। सो 'खुरपी को टेढा बेट' तो मिल ही जाता है, उसे भी सजू का साथ मिल गया । सजू भी इसी से मिलती-जुलती समस्या का शिकार था।

सजू घर से और होस्टल से निष्कासित था और राजू घर के कामो से परेशान । यद्यपि राजू घर से पूरी तरह नहीं भागा था, पर जो स्थिति भगोडो की होती है, लगभग वही स्थिति उसकी थी । •

१२

वर्षाऋतु का समय, कभी घनघोर घटाये, कभी रिमझिम-रिमझिम बरसात, कभी ओले तो कभी तूफान, कीट-पतंगो, मक्खी-मच्छरों का सचार, कीडे-मकोडों, चीटी-चीटियो, लट-केचुओ आदि सूक्ष्म जीवों की भरमार, जगल मे जहाँ देखो वहाँ चारो ओर हरियाली ही हरियाली, पाँव रखने को भी ऐसी कोई जगह खाली नहीं थी जहाँ हरियाली न हो । पगडडियो मे भी हरियाली उग आई थी । कच्चे रास्तों में जहाँ देखो वही पानी और कीचड ही कीचड भरा था ।

ऐसी स्थिति मे अहिंसा महाव्रत के धारी बनवासी साधुसघ का केवल आहार के निमित सुदूरवर्ती वन से नगर मे आना-जाना सभव नही था और नगर मे साधु रहते नहीं है, क्योकि गृहस्थो का सान्निध्य, नगर का कोलाहल तथा गृहस्थो के आवास उनकी आत्मसाधना के अनुकूल नही होते ।

नगरो मे तो वे केवल आहार के लिए ही आते हैं, सो उस समय भी बैठना ठीक नही मानते । अत खडे-खडे ही आहार लेकर तुरन्त वापिस चले जाते । इस कारण मुनि सघ को एक क्षण भी गृहस्थों के पास बैठना-उठना इष्ट नही था । यद्यपि उन्हें गृहस्थों से कोई द्वेष नही था, किन्तु वे जिन राग-द्वेष के उत्पादक प्रसगो का त्याग कर चुके है, गृहस्थो के पास तो प्राय उन्ही प्रसगो की चर्चा-वार्ता होती है । अत आचार्यो का भी यही आदेश होता है कि गृहस्थो के सम्पर्क मे साधु अधिक न रहें । इस कारण दिगम्बर साधुओ के सघ वर्षायोग के लिए ऐसा एकात स्थान वन प्रदेश चुनते हैं जो न नगर के न अति निकट हो और न अति दूर ।

एक दिगम्बर साधुसघ अपना चातुर्मास स्थापित करने के लिए किसी ऐसे ही वन प्रदेश की तलाश में था, जो न नगर के अति निकट हो और न अति दूर, निर्जन और निर्बाध भी हो । जगल के जानवरो से उन्हे कोई बाधा नही थी, क्योकि वे उनसे राग-द्वेष की बाते करके, उनका समय व उपयोग खराब नही करते, कोलाहल नही करते, आपस मे लडते-झगडते नही है, किसी से धोखा-धडी नही करते । शाम को आकर चुपचाप बैठ जाते है, सवेरे उठकर चुपचाप ही चले जाते हैं। न रात मे खाते-पीते, न रोते-गाते, बस जो दिन भर खाया-पीया, रात मे चुपचाप बैठकर उसी की जुगाली किया करते है ।

सयोग से उस साधुसघ को उसी नगर के निकट एक उपयुक्त स्थान मिल गया, जहाँ ज्ञान, सुदर्शन और विज्ञान वगैरह रहते थे । साधु सघ वहाँ ठहर गया और वही चातुर्मास - वर्षा योग स्थापित करने का निश्चय कर लिया ।

उस निर्जन-निर्बाध वन प्रदेश मे बडे-बडे घने छायादार वृक्ष थे, वही एक बरामदानुमा खण्डहर-सा बहुत बडा मकान था । उस मकान मे न किवाड लगे थे, न किवाड लगने जैसी कोई व्यवस्था ही बनी थी । केवल चारो ओर दीवाले थी और थे बीच-बीच मे छत के आधारभूत खभे, न कोई कमरा न कोई पार्टीशन दीवाले ।

साधुओ के वर्षा योग के अलावा तो वहाँ केवल जगली जानवर ही सुस्ताया करते थे, पर हर वर्षाकाल मे आस-पास बिहार कर रहा कोई न कोई साधु सघ वहाँ आ ही जाता था । साधुसघ से उन जानवरो को भी कोई बाधा नही थी, बल्कि लाभ ही था । दिगम्बर साधुओ की वीतराग भाववाही परम शात मुद्रा देखकर वे जानवर भी अपना जन्मजात बैर-भाव भूल जाते थे । वहाँ किसी के आने-जाने की रुकावट तो थी नही, पर गृहस्थ वहाँ स्वभावत कम ही ठहरते थे, क्योकि वहाँ उन्हें अपने अनुकूल आरामदायक बैठने-उठने एव सुख से समय बिताने के साधन जो नही थे । साधुओ के हित में भी यही था, वैसे

उस जगल में पूरा जनतत्र था । जब जिसे आना हो आये, जाना हो जाये, रोक-टोक का कोई काम नही ।

उस वन और भवन की बनावट से ऐसा लगता था कि संभवत वह किसी धर्मवत्सल राजा या राजपुरुष द्वारा साधु-सतो की साधनास्थली के रूप मे ही निर्मित और विकसित किया गया हो । उसे छोटा वन या बडा उपवन कह सकते हैं ।

पुराने जमाने मे ऐसे स्थानो को वसतिका कहा जाता था और उनमे साधु-संत आत्मसाधना किया करते थे ।

× × ×

यह नगर निवासियो का परम सौभाग्य ही समझना चाहिए कि कभी किसी उदारमना धर्मात्मा पुरुष ने वह साधुओ के धर्म साधन का साधना स्थल बना दिया था, जिससे वहाँ के नागरिको को सहज मे ही पीढ़ियों से धर्म लाभ मिलता आ रहा है । धर्मायतन बनाने का यही तो महत्व है । जिसके भी धन से वह साधन बना होगा, उसके उस द्रव्य का सबको कितना बडा लाभ है ? प्रतिवर्ष साधु तो लाभ लेते ही हैं, समाज भी उससे लाभान्वित होता है । वैसे तो किसी को पता ही नही था कि साधुसघ कब आकर ठहर गया है, पर जब साधुगण आहार के लिए नगर मे आये तो सर्वप्रथम वे दर्शनार्थ जिन मन्दिर गये ।

यद्यपि नग्न दिगम्बर साधुओं को जिन दर्शन पूजन एवं प्रक्षाल आदि करना अनिवार्य नहीं है, क्योंकि जो स्वय पूज्य और दर्शन देने योग्य बन गये है, उन्हे अब पूजन से कोई प्रयोजन नहीं रहा, पर जहाँ जिन मन्दिर होता है, वहाँ दर्शन करने वे जाते अवश्य हैं।

जहाँ जिन दर्शन का सहज लाभ मिल रहा हो, उसे भला कौन छोडना चाहेगा । जिनालय में सुदर्शन और ज्ञान दोनो उस समय मौजूद थे, क्योंकि अभी-अभी प्रवचन समाप्त हुआ ही था । दोनों ने भक्ति-भाव से साधुओ की वदना की और अपने भाग्य को सराहा । वर्षाऋतु में मुनिराजों के दर्शन होने से उन्हें निश्चय हो गया था कि साधुसघ ने

यही-कही आस-पास ही अपना वर्षायोग स्थापित करने का निश्चय किया है । आहार लेकर साधुसघ के सभी साधु एक-एक करके वन की ओर चले गये । ज्ञान और सुदर्शन भी उनके चरण-चिन्हों का अनुसरण करते हुए उस वन में पहुँच गये, जहाँ मुनिसघ ठहरा था ।

उनके पहुँचने तक सघ के सभी साधु सामायिक करने बैठ गये । ज्ञान और सुदर्शन न केवल दर्शन करने आये थे, वे सघ के आचार्यश्री से प्रतिदिन प्रवचन और तत्वचर्चा करने का निवेदन भी करना चाहते थे । अत वे सामायिक से उठने तक की प्रतीक्षा मे वहीं बैठ गये।

× × ×

पुण्यात्माओं के मनोरथ कभी निरर्थक नहीं जाते । ज्ञान और सुदर्शन मदिर मे आज ही चर्चा कर रहे थे कि यदि इस वर्ष किसी साधुसघ का वर्षायोग इस नगर के आस-पास कही हो जावे तो कितना अच्छा रहे । सो घटे भर बाद ही जिनमदिर मे साधुसघ के दर्शन हो गये।

दूसरे उनकी यह भावना हुई कि – "काश । इस सघ के आचार्य कोई विशिष्ट ज्ञानी हो और उनके सत्समागम का पूरा लाभ हम सबको मिले । किसी के कहने से तो कोई साधु प्रवचन देते नहीं है, फिर भी कहना तो चाहिए ही । सभव है करुणा आ जावे हम पर ।"

सयोग से आचार्यश्री ने सामायिक से उठते ही सब शिष्यो को बुलाकर सूचित किया कि कल प्रात काल से प्रवचन प्रारभ होगा । यह खुशखबरी सुनकर ज्ञान, बिज्ञान भारी हर्षित हुए, क्योंकि बिना कहे ही उनका मनोरथ पूरा हो गया । वे खुश होते हुए घर चले गये और उन्होने कल से होने वाले प्रवचनो की सूचना घर-घर भिजवा दी ।

पहला दिन था इस कारण आज ज्ञान, विज्ञान और सुदर्शन को बातो-बातों मे प्रवचन मे पहुँचने मे कुछ देर हो गयी थी, प्रवचन प्रारंभ हो चुका था । आचार्यश्री कह रहे थे कि – "संस्कारों की तो बात ही निराली है । देखो न । चिडियों को ऐसे सुविधासम्पन्न और सभी तरह के सुरक्षा साधनों से युक्त घोंसला बनाने का प्रशिक्षण कौन देता

है ? मधुमक्खियों को फूलों का रस एकत्रित कर मधु बनाने और सुरक्षित रहने के लिए मोमयुक्त वातानुकूलित छत्ता बनाने का प्रशिक्षण कौन देता है ? चींटियों को सामूहिक रूप से संगठित होकर अन्नकण इकट्ठा करने की शिक्षा कहाँ से मिलती है ? पशुओं को जन्मते ही पानी में तैरना किसने सिखाया ? और जाने ऐसे कितने विचारणीय प्रश्न है जो हमारे पुनर्जन्म और पूर्व के संस्कारों को सिद्ध करते हैं।

ये सब उनके जन्म-जन्मान्तर और वश परम्परागत सस्कारों के ही सुपरिणाम हो सकते हैं जो उन्हें अपनी पूर्व की पीढ़ी-दर-पीढी से मिलते आ रहे है ।

सस्कार दो तरह से प्राप्त होते हैं — एक वश परम्परागत पूर्व पीढ़ियो से और दूसरे जीव के पूर्व भवो से । अर्थात् एक देह की पीढ़ी से और दूसरे आत्मा की पीढी से ।"

वश परम्परागत सस्कारो को स्पष्ट करते हुए आचार्यदेव ने अपने प्रवचन मे एक किवदन्ती का उल्लेख करते हुए कहा — "कुसंस्कारों का कुप्रभाव भी कहाँ तक हो सकता है, इसकी कोई कलपना भी नहीं कर सकता ।

एक थी जेबकतरी, जो जेब काटने मे बहुत कुशल थी । उसे इस बात का गर्व था कि उसे कोई जेब काटते हुए पकड नही सकता ।

मान तो रावण का भी नही रहा, सो चोरो की तो बात ही क्या है? एक दिन जब वह जेब काटते हुए रंगे हाथो पकडी गई तो उसे तो पकडने वाले की होशियारी पर आश्चर्य हुआ ही, साथ ही जिसकी जेब काटी गई थी, उसे भी भारी आश्चर्य हुआ, क्योंकि वह भी अपने को अब तक एक अद्वितीय जेबकट माने बैठा था । उस दिन उसका भी गर्व गल गया, जब उसने जेब कतरी के हाथ की सफाई को अपनी आँखो से प्रत्यक्ष देखा ।

दोनो एक-दूसरे से प्रभावित तो हुए ही, आँखों ही आँखों मे दोनों का व्यवहार भी प्रेमालाप मे बदल गया । जेबकतरे ने जेबकतरी का

हाथ तो पकड ही रखा था और गुणों का मिलान भी बिना ब्राह्मण के मिलाये ही मिल गया । दोनो एक नम्बर के जेबकट जो थे, अत उनका वह हाथ का पकडना ही 'हथलेवा' हो गया, पाणिग्रहण-संस्कार में बदल गया । दोनो मिलकर वही अपना पुस्तेनी धधा करने लगे ।

वैसे तो सभी बालक जन्म से मुट्ठियाँ बाँधे ही आते हैं, परन्तु उनसे जो बालक हुआ, उसकी दायें हाथ की मुट्ठी कुछ इस तरह बन्द थी कि खुलती ही नहीं थी । जब भी खोलने का प्रयत्न किया जाता तो वह जोर-जोर से रोने लगता था । अन्ततोगत्वा उन्होने उसके हाथ का ऑपरेशन कराने का निश्चय किया । जाँच-पड़ताल के बाद डॉक्टर ने ऑपरेशन से इन्कार करते हुए मनोचिकित्सक को दिखाने की सलाह दी ।

मनोचिकित्सक ने बालक के भयाक्रान्त चेहरे और रोने की आवाज से बन्द मुट्ठी के रहस्य का बहुत कुछ अनुमान तो कर ही लिया था। शेष रही-सही शका को दूर करने के लिए उस बालक के माता-पिता से मनोरंजन के मूड मे कुछ अकडकर पूछा — 'तुम्हारा धधा क्या है ?'

सकपकाते हुए दबे स्वर मे बालक का पिता बोला — 'आप आपकी जो फीस हो, हम देने को तैयार हैं । आप हमारा धधा जानकर क्या करेंगे ?

अभयदान देते हुए गभीर स्वर मे डॉक्टर ने कहा — 'चिन्ता मत करो, हम पुलिस वाले नही हैं, हमे बताने मे तुम्हें कोई खतरा नही है ।'

वशपरम्परागत सस्कारो से अवगत हो डॉक्टर ने बालक की मनोवृत्ति पहचानकर अपने गले की सोने की चैन उतारकर ज्यो ही बालक को दिखाई कि बालक ने अपने पैतृक सस्कारवश सोने की चैन को देखते ही मुट्ठी की अँगूठी फेंक दी और चैन पकड ली ।

यह वही अंगूठी थी, जिसे प्रसूति के काल में दाई की उगली से गिरते ही बालक ने मुट्ठी मे दबा ली थी । क्यो नहीं दबा लेता ?

चुहिया का बच्चा भी तो जन्मजात जमीन खोदना व बिल बनाना जानता है ।"

इस प्रकार सरस और हृदयस्पर्शी प्रवचन करते हुए आचार्यश्री ने आगे कहा – "यदि हम अपनी सतान को दुराचारी नहीं देखना चाहते हैं, तो हमें अपने दुराचारो को तिलाजलि देनी होगी और अपने बच्चो को सदाचार के सस्कार देने होगे ।"

अपने प्रवचन को जारी रखते हुए आचार्यश्री ने कहा –

"दूसरे कुछ सस्कार ऐसे भी होते हैं, जो हमारे पूर्व भव-भवान्तरों से हमारे साथ आते हैं । राजुल-नेमीकुमार की विगत नौ भवो की पुरानी प्रीति, कमठ और पार्श्वकुमार का पुराना इकतरफा वैर-विरोध तो आगम सिद्ध व लोक प्रसिद्ध है ही, और भी ऐसे अनेक पौराणिक उदाहरण हैं जो पूर्वभवो से चले आ रहे सस्कारो को सिद्ध करते हैं ।

देखो न । वह ब्राह्मणकन्या, जिसे दैवयोग से उन्हीं दिगम्बर जैन साधु के दर्शन का सौभाग्य मिल गया जो उसके पूर्वभव (वायुभूत) के मामा थे । साधु को भी उसे देखते ही पूर्व सस्कारवश धर्मस्नेह उमड आया था । अत उन्होने उसे पात्र जानकर उसके कल्याण की भावना से पाच अणुव्रत दे दिये थे ।

जब यह बात उस बालिका के पिता को पता चली तो वह पुत्री से नाराज हुआ । नाराजगी का कारण व्रत ग्रहण करना नहीं, बल्कि जैन साधु से व्रत ग्रहण करना था, क्योंकि उसमे जैनत्व के सस्कार नही थे, इस कारण उसके अन्तरात्मा को जैन साधु के द्वारा दिये गये व्रत स्वीकृत नहीं हो सके । उसने बेटी से आदेश की मुद्रा में कहा – "बेटी । तू ये व्रत छोड दे ।"

× × ×

बेटी की हार्दिक भावना उन व्रतों को छोडने की नहीं होते हुए भी वह पिता की आज्ञा की अवहेलना नहीं कर सकी । अतः वह

पिताजी से विनयपूर्वक बोली — "पिताजी । साधु महाराज ने कहा था कि यदि तेरे पिता को ये व्रत पसद न आवे तो वही घर बैठे मत छोड देना, मेरे व्रत मुझे वापिस कर जाना । अत यदि आप इन्हें छुडवाना ही चाहते हैं, तो उन्हीं मुनिराज के पास चलकर मै ये व्रत उन्हें वापिस करूँगी, क्योंकि मै उन्हें वापस करने का वचन देकर आई हूँ ।"

बेटी के अनुरोध पर पिता पुत्री को लेकर मुनिराज के दिये व्रतो को उन्हें वापिस लौटाने के लिए जा रहा था कि रास्ते मे उन पिता-पुत्री ने एक के बाद एक चार ऐसी घटनाएँ देखी, जिनमे क्रमश एक को हत्या के अपराध मे फासी, दूसरे को असत्य भाषण के अपराध मे जिह्वाछेद, तीसरे को चोरी के अपराध मे आजीवन कारावास और चौथे को बलात्कार के अपराध मे लोहे की गर्म शलाकाओ से दागने का दण्ड दिया जा रहा था ।

बेटी ने कहा — "पिताजी । मैने तो इन्ही सब पापो के त्याग के व्रत लिये है । इसमे मैने क्या बुरा किया है ? क्या इन पापो को करके मुझे भी ये दु ख नही भोगने पडेगे ? अत आप मुझे इन व्रतो को छोडने के लिए बाध्य न करे ।"

"अच्छा । ठीक है, व्रत मत छोडना, परन्तु वहाँ तक चल तो सही, उस साधु को इतना उलाहना तो दे ही आवे कि मेरी बेटी को ये व्रत दिए सो दिए, परन्तु अब तुम आगे भविष्य मे किसी को इस तरह व्रत वगैरह देकर बहकाने की कोशिश नही करना ।"

ज्योंही उस कन्या के पिता ने जैन मुनि से उलाहना देते हुए कहा — "महाराज । आपने मेरी बेटी को मेरी अनुमति के बिना ये व्रत देकर अच्छा नही किया । यह तो कोई बात नही, पर ।

"पर क्या ?" कहते हुए करुणासागर मुनिराज बोले — "हे यज्ञदत्त। तुम्हारा कहना सत्य है कि माँ-बाप को सूचित किए बिना कोई व्रतादिक

देना योग्य नहीं है । परन्तु मैने तो अपने भानजे को व्रत दिये हैं, तेरी बेटी को नहीं ।"

यह सुनकर यज्ञदत्त आश्चर्यचकित होकर बोला – "महाराज । हमने तो सुना था कि जैन साधु सत्य महाव्रत के धारी होते हैं । ये आप क्या कह रहे हैं ? क्या यह मेरी बेटी नहीं है ?"

यज्ञदत के ऐसा कहने पर मुनिराज ने बेटी के माथे की ओर हाथ पसार कर कहा – "हे वायुभूत ! मैने तुझे तेरे पूर्वभव मे जो-जो पढाया था, उसे यथावत् सुना ।"

इतना सुनते ही उस कन्या को 'जातिस्मरणज्ञान' हो गया, जिसमें उसे अपने पूर्वभव वायुभूत की पर्याय मे मामा के पास पढ़ा हुआ सम्पूर्ण जिनागम का सार स्मृतिपटल पर प्रत्यक्षवत् प्रतिभासित होने लगा ।

ज्योही उसने अपने पूर्वभव मे पढ़े हुए संस्कृत-प्राकृत भाषा में आध्यात्मिक छंद गा-गाकर सुनाना प्रारम्भ किया, जिन्हें कभी न उस लडकी ने सुने-पढ़े थे और न उसके पिता ने । अत· उन्हें सुनकर उसका पिता आश्चर्यचकित तो हुआ ही, गद्‌गद् भी हो गया ।

जब अनन्तमती का पिता पानी-पानी हो गया तो मुनिराजश्री ने उसे उसकी पुत्री के पूर्वभव का सारा वृतान्त बता दिया, जिसे सुनकर यज्ञदत्त बहुत प्रभावित हुआ और मुनिश्री का नानाप्रकार से बहुमान प्रगट करता हुआ कृतज्ञता प्रगट करने लगा ।

आचार्यश्री ने अपने प्रवचन का उपसहार करते हुए कहा – "यदि हम भी अपनी संतान को सुखी, समुन्नत, सदाचारी और सब तरह से समृद्ध देखना चाहते हैं तो हमारा कर्तव्य है कि हम भी उनमें ऐसे ही धार्मिक व नैतिक संस्कार डालें जैसे वायुभूत के मामा ने अपने भानजे में डाले थे ।

देखो, अपने किसी कुटिल परिणाम के फलस्वरूप वायुभूति स्त्री पर्याय में चला गया, तथापि उसके पुराने सस्कारो के कारण उसे पुनः सन्मार्ग मिल गया ।

कदाचित् वायुभूत भी अपने भाई अग्निभूत की ही भाँति सस्कारविहीन रह जाता तो आज उसका क्या होता ?"

ज्ञान बैठा-बैठा सोच रहा था – "महाराजश्री ठीक ही कह रहे है । देखो न । विज्ञान भी तो अपने दादाश्री द्वारा प्रदत्त बाल्यकालीन सस्कारों के कारण ही तो इस ओर आकर्षित हुआ है, अन्यथा किसी की क्या ताकत जो उसे इस मार्ग पर ले आता ।"

जंगल में जमीन पर पड़े हुए वृक्षों के बीज जिस तरह हवा-पानी पाकर अपने आप अकुरित हो जाते है, उसी भाँति प्राणियों के जन्म-जन्मान्तरों के पूर्व सस्कार अनुकूल वातावरण पाकर विकसित हो जाते है । यदि जमीन में बीज ही न पडा हो तो अकेला हवा और पानी आदि का बरसाती वातावरण क्या कर सकता है ? चिंगारी ही न हो तो अकेली हवा और ईंधन अग्नि का उत्पादन नहीं कर सकते ।

धन्य हैं वे माता-पिता जो अपनी सतान को भौतिक धन-वैभव के साथ-साथ धर्म के सस्कार भी दे जाते है, णमोकार मंत्र भी दे जाते है और दे जाते है नित्यबोधक जिनवाणी, जिसे होनहार बालक समय पाकर पढते है और लाभान्वित होते है ।

जिनवाणी इस अर्थ मे नित्यबोधक है कि उसे जब जी चाहे उठाकर पढा जा सकता है । इस कलिकाल मे जब कि सर्वज्ञदेव की दिव्यध्वनि तो दुर्लभ है ही, सच्चे गुरु भी हरसमय उपलब्ध नही हो सकते, क्योंकि उनकी वृत्ति स्वाधीन है, अत सहजता से उनका समागम भी सभव नहीं है और रात मे तो वे बोलते भी नहीं हैं । ऐसी स्थिति मे एक जिनवाणी ही तो हमारे लिए शरणाभूत है । पता नही जिनवाणी कब-किसके लिए विज्ञान की तरह वरदान बन जावे । सुषुप्त सस्कारों को जगाने वाली जिनवाणी ही तो है । विज्ञान के सुषुप्त सस्कार भी तो सत्साहित्य के अध्ययन से ही जागृत हुए हैं, अन्यथा वह तो कभी मन्दिर भी नही जाता था । बस, इतनी गनीमत समझो कि वह प्रतिदिन

प्रात-शाम घर पर ही णमोकार मत्र की माला फेर लेता था । सो वह भी पिताजी की दी हुई विरासत समझकर । मात्र उन्हें सम्मान देने के लिए, अन्यथा उसे तो मानो धरम-करम से कुछ सरोकार ही नही था ।"

यह सोचते-सोचते ज्ञान ने सकल्प किया कि – "अब मै इसी धार्मिक सस्कारो के प्रचार-प्रसार के काम को सर्वाधिक महत्व दूँगा । इससे बढकर दुनिया मे और कोई काम नहीं हो सकता ।" •



१३

'सतोषी सदा सुखी, बहुधधी बहु दुखी' का सिद्धान्त अब धीरे-धीरे डॉ धर्मचन्द की समझ मे आने लगा था, क्योकि बहुधधी होने के कारण वे राजू पर उतना ध्यान नहीं दे पाये, जितना उसके जीवन के विकास के लिए आवश्यक था । उनके एकमात्र पुत्र राजू के आवारा होने मे उनका धनोपार्जन मे अतिव्यस्त रहना भी एक कारण था । पुत्र के लोभ मे उन्होने परिवार तो बढा लिया था, पर अब उसके भरण-पोषण के लिए धनोपार्जन करने मे उन्हें दिन-रात एक करने पड रहे थे ।

जिसके लिए डॉ धर्मचन्द यह सबकुछ कर रहे थे, वही उनका इकलौता बेटा यथोचित मार्गदर्शन व देख-रेख की कमी के कारण किसी भी कक्षा मे अच्छे अको से सफल नही हुआ । यद्यपि उसकी बुद्धि अच्छी थी, यदि उसे यथोचित मार्गदर्शन और पढ़ने का पर्याप्त मौका मिलता तो वह प्रथम श्रेणी मे ही हमेशा उत्तीर्ण होता । पर, दादा-दादी और बहिनों के काम के दबाव मे वह कभी ढग से पढ़ ही नही पाया था ।

डॉ दम्पति की भी अपनी एक समस्या थी, वे बेचारे मजबूर थे, उनका धनार्जन मे उलझने का सबसे बडा कारण उनकी तीन-तीन जवान कन्याये थीं । वैसे वे स्वभावत सतोषी प्राणी थे, पर परिस्थिति ही कुछ ऐसी निर्मित हो गई थी कि उन्हे धनार्जन के सिवाय दूसरा कोई रास्ता ही दिखाई नहीं देता था ।

तीनो ही लडकियाँ उच्च शिक्षा ले रही थी, तीनो की शादी की समस्या सामने अलग मुँह बाये खडी थी, दुर्भाग्य से लडकियाँ भी रूप-रंग और कद-काठी मे इतनी सुन्दर और आकर्षक नहीं थीं कि कोई भी उन्हें ललककर ब्याह कर ले जाये । अत दहेज के लिए उन्हें अधिक से अधिक धनार्जन करना उनकी आवश्यक आवश्यकता बन गई थी ।

दहेज न लेने का संकल्प करना तो उन्हें आसान था, पर दहेज न देने की बात तो सोचना भी उन्हें पागलपन-सा लगता था, क्योंकि वह अपने हाथ की बात ही नहीं है ।

वे सोचते थे, "आदर्श की बाते कोई कितनी भी करले, पर जिसके घर मे एक के बाद एक — तीन-तीन कन्यायें ब्याह के योग्य हो गई हो, उसके दिल पर क्या बीतती है ? यह तो उसी के दिल में झाँककर देखना पडेगा।

जो स्थिति घूस के लेन-देन पर घटित होती है, वही स्थिति आज दहेज की है । घूस न लेने की प्रतिज्ञा तो हम-तुम कोई भी कर सकता है, पर घूस न देने की कसम कैसे खाई जा सकती है ? खासकर वहाँ, जहाँ घर से बाहर कदम रखा नहीं कि हर कदम पर घूस के टुकडे डालने ही पडते हो भूखे भेडियों को । इस पर तुर्रा यह कि वह भी सलीके से दी जाए । घूस देना भी एक आर्ट है, कला है, जो हरएक के बलबूते की बात नहीं है । इस कारण सीधे-सादे सज्जनो का, ईमानदार आदमियो का तो घर से बाहर निकलना ही कठिन हो गया है ।

यदि हम ट्रेन मे बैठने के लिए टीटीआई को पचास का नोट नही चढ़ाये तो वह भी हमे ट्रेन में नहीं चढ़ने देता है । बोलो । कोई क्या करे ऐसी स्थिति मे ? यात्राये तो करनी ही हैं, कभी-कभी तो आरक्षण के बावजूद भी टीटी का टैक्स चुकाना आवश्यक हो जाता है, वरना क्या प्रमाण कि यही तुम्हारा नाम है ? और वर्मा का शर्मा तथा शर्मा का वर्मा लिखा जाना जितनी सामान्य भूल है । उस सामान्य-सी भूल को बिना घूस दिए सुधारना व यात्रा सुलभ कराना उतना ही दुर्लभ है ।

ये तो अब विश्वव्यापी समस्याये बन गई हैं ? इनके बारे मे अधिक सोचना ही पहाड से माथा मारने जैसा लगता है । हाँ, यदि दहेज और घूस लेने वालो को ही थोडा-बहुत नैतिकता का पाठ मिलता रहे

और शासन भी थोडा अनुशासन की ओर ध्यान दे तो शायद कुछ सुधार हो सकता है । पर बेचारे शासन को अपनी कुर्सी बचाने से ही फुरसत नही है, वह अनुशासन-प्रशासन कब देखे ?

घूस देने वाले भी अपराधी हो सकते है, पर उनका अपराध शायद अक्षम्य अपराध नही है, क्योकि ऐसा कौन है जो पसीने की कमाई को पानी मे बहाना चाहेगा, पर उसकी मजबूरी है, बाध्यता है ।

यदि वजन रखे बिना फाइल ही टेबल पर से उड जाए – गायब हो जाए तो उसे दबाने और समय पर आगे बढाने के लिए वजन तो रखना ही पडेगा न ? यदि कायदे से ही सब काम समय पर हो जाये तो कोई बेकायदा काम क्यो करेगा ?

खैर । अभी डॉ धर्मचन्द की समस्या घूस की नही, दहेज की थी । डॉक्टर ने बहुत सोचा, पर वह बिना दहेज दिए निवृत्त नही हो पाया । अस्तु, जो हुआ सो हो गया, डॉक्टर दम्पति अब सतुष्ट थे । अब वे तीनो बेटियो की शिक्षा और शादियाँ सम्पन्न कर चुके थे, उनके माता-पिता भी दिवगत हो गये थे, अब केवल पति-पत्नी और 'हम दो हमारा एक' – कुल तीन ही प्राणी घर मे रह गये थे ।

राजू पढ नहीं सका था, उसका उन्हें उतना अफसोस नही था, पर वह आवारा हो गया था, यह उनकी चिता का विषय अवश्य था।

उन्होने सोचा – "नौकरी तो वैसे भी नही करानी थी । न बन सका डॉक्टर तो न सही, मेडीकल स्टोर्स खुलवा देगे । वह भी आरामदायक काम है, पर पहले इसमे कुछ सदाचार के सस्कार पड जावे और इसका यह आवारापन समाप्त हो, इसके लिए इसे कुछ दिन को कही बाहर ऐसे स्थान पर रखना होगा, जहाँ इसे थोडा सदाचार का वातावरण मिले और इन आवारा दोस्तो का साथ छूटे । साथ ही इसकी कम से कम ग्रेज्युएशन तक पढ़ाई भी हो जावे । आजकल बिना ग्रेज्यूएट हुए तो कोई पढ़ा-लिखा ही नहीं कहलाता । तब तक यह शादी के योग्य भी हो जायेगा । अभी उम्र ही क्या है ? बीस बरस का ही तो है ।

इतनी जल्दी धधे मे लगाकर भी क्या करेंगे ? कमाई की तो कोई समस्या है नहीं । न भी कमाये तो भी इसके खर्च लायक दस-बारह हजार रुपये मासिक आय तो मकान किराया और ब्याज वगैरह से ही हो जायेगी ।

पर खाली दिमाग शैतान का घर होता है, अत धधे मे उलझाना भी जरूरी है । पर अभी नही, अभी तो कम से कम तीन बरस के लिए इसे कही बाहर ऐसी जगह भेजना ही चाहिए ।

इतने लबे सोच-विचार के बाद भी उन्हें यह समझ मे नही आ रहा था कि आखिर भेजे तो भेजे कहाँ ? कोई छात्रावास ? कोई होस्टल ? कोई रिश्तेदारी ? उन्हें कही कोई उपयुक्त जगह नजर नही आ रही थी । सोचते-सोचते सयोग से बैठक की सेंटर टेबल पर नजर चली गई, उस पर एक मासिक पत्रिका पडी थी, जिसके चौथे कवर पृष्ठ पर ही बडे-बडे अक्षरो मे लिखा था, **'आत्मार्थी छात्रों को अपूर्व अवसर'** । डॉक्टर ने कौतूहलवश यो ही उठाकर देखा, दो-चार लाइने पढी तो उन्हें ऐसा लगा कि यह तो राजू के हिसाब से बहुत ही अच्छी जगह है । क्यो न इस 'जैन सिद्धान्त महाविद्यालय' से सम्पर्क किया जाये ?

डॉक्टर जिसकी खोज मे था, घर बैठे ही उसका समाधान उसे मिल गया था, इसलिए वह बहुत प्रसन्न था ।

डॉक्टर तो कभी उस पत्रिका का ग्राहक बना नहीं था । आज तक उस पत्रिका को कभी उठाकर पढ़ा भी नहीं था । डॉक्टर के पिताजी जरूर जैन पत्र-पत्रिकाओ के पढ़ने के शौकीन थे और इनके आजीवन सदस्य भी थे । वे स्वय भी पढ़ा करते थे और मरीजो को पढाने के लिए डिस्पेसरी के वेटिंग रूम मे भी रख दिया करते थे ।

दादाजी की भावनाओ के अनुसार वह सिलसिला अब और अधिक व्यवस्थित कर दिया गया था । क्योंकि मरने के बाद माता-पिता के प्रति भक्ति-भावना कुछ अधिक ही हो जाती है । उनके जीते-जी भले

ही हम उनसे पानी की भी न पूछ पाये हों, पर मरने के बाद उनके चित्रों पर मालायें अवश्य डालते हैं । काश । उनके जीवनकाल मे यदि हम उनकी भावनाओ की कुछ कद्र कर पाये तो उनकी आत्मा को अधिक संतुष्टि दे सकते हैं । अस्तु ।

सर्वप्रथम तो डॉक्टर ने मन ही मन अपने स्वर्गीय पूज्य पिताजी को धन्यवाद दिया, क्योंकि धन तो वे दे ही गये थे, धर्म के साधन भी दे गये थे और दे गये थे उस ज्वलत समस्या का समाधान, जिसके कारण वह आज अधिक परेशान हो रहा था ।

सयोग से राजू भी मैट्रिक मे सैकिण्ड डिवीजन उत्तीर्ण हो गया था। बुद्धि मे तो तेज था ही, अब उसे पढ़ने को समय भी पर्याप्त मिल गया था।

"जो लौकिक कार्यों में होशियार होते है, वे ही पारलौकिक कार्यों में भी सफल होते है, केवल उसकी वृत्ति बदलने की देर है । कहा भी है – 'ये कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा' निश्चय ही यह काम वहाँ आसानी से हो ही जायेगा" – ऐसा विचार कर डॉक्टर ने राजू को उसी महाविद्यालय मे प्रविष्ट कराने का निश्चय कर लिया था ।

पर जैसे ही यह बात उसने अपनी पत्नी, बेटियो और रिश्तेदारो से कही तो कोई भी इस बात के लिए राजी नही हुआ । सभी एक स्वर मे डॉक्टर की बात का विरोध करने लगे ।

अरे । क्या धरा है उस पढ़ाई मे ? वहाँ भेजकर कोई पण्डित थोडे ही बनाना है । नही, नही, वहाँ नही जायेगा हमारा राजू ।

बडी लडकी बोली – "पापा ! तुम्हें पता नही, वहाँ जाकर तो लडके पूरे पण्डित बन जाते हैं, पण्डित । फिर वे हमारे-तुम्हारे साथ भोजन करना भी पसंद नहीं करते । उनके बडे नखरे बढ़ जाते हैं। आप को पता है, वहाँ से लौटने पर ये लोग रात मे नही खाते, अनछना पानी नहीं पीते, आलू-प्याज आदि कोई भी जमीकंद नहीं खाते और तो और दहीबडा, चाट और बाजार की मिठाइयाँ भी नही खाते, और

पता नहीं क्या-क्या नही खाते ? अच्छी तरह सोच लो, समझ लो । हमारी दिल्ली से एक लडका गया था । वह वहाँ ऐसा बिगडा कि वहाँ से आकर अपने माँ-बाप को ही उपदेश देने बैठ गया । उन बेचारों को केवल उसके कारण दिन मे ही खाना बनाना पडता, आजकल आलू-बैगन के सिवाय और साग-सब्जियाँ आती ही क्या हैं बाजार मे ? पर उन हजरत को यह कुछ चलता ही नही है । इस कारण उसकी माँ बहुत परेशान रहती है । कहती है – 'रोज-रोज क्या बनाकर रख दे, अपनी तो कुछ समझ मे नहीं आता । अच्छा आ गया पण्डित बनके ।'

जब भी उसकी पत्नी पिक्चर का प्रोग्राम बनाती, तभी उन्हें प्रवचन मे जाना होता है, जब वह गर्मियो की छुट्टी बिताने के लिए शिमला का प्रोग्राम बनाती तो वही टाइम उनके शिक्षण शिविर मे जाने का होता । एक बात हो तो अलग । उसकी माँ अलग अपने दुख रोती फिरती, पत्नी अलग । न बाबा । अपने को तो यह सब पसद नही है । फिर आपकी मर्जी ।"

मँझली लडकी ने छाप लगाते हुए कहा – "पापा । दीदी ठीक ही कह रही हैं । हमारे बम्बई का भी एक लडका वहाँ पढ़ने गया था । वह तो और भी दो कदम आगे निकल गया । कहता है – 'मै तो शादी ही नही करूँगा, क्या धरा है इस असार ससार मे ? मनुष्य भव ऐसे बार-बार थोडे ही मिलता है । वह आत्मा आत्मा । भगवान आत्मा ही करता रहता है । वैसे प्रवचन बहुत अच्छे करता है, हजारों लोग उसकी सभा मे आते हैं और बिलकुल शात बैठे-बैठे उसी के मुँह की ओर टकटकी लगाये देखा करते हैं, पर क्या बतायें, मानो उसे तो भगवान आत्मा की बीमारी-सी हो गई । खाने-पीने के मामले में भी वही हाल जो दीदी के दिल्ली वाले का है ।

इसलिए मेरा तो ऐसा विचार है कि आप तो किसी अच्छे होस्टल मे प्रवेश दिला दो, वहाँ इस बेचारे को पढ़ाई का और होमवर्क करने

को खूब समय भी मिल जायेगा । जब हम पढ़ते थे तो इस बेचारे को होमवर्क को ही टाइम नहीं मिलता था । जब किसी भी काम को बोलो तो बोलता – दीदी मेरा होमवर्क कौन करेगा ? हूँह ।"

सब अपनी-अपनी कहे जा रहे थे और डॉक्टर सब की बातो को शांति से सुन रहा था । अत मे वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि एक बार स्वय वहाँ जाकर सब अपनी निजी आँखो से देखना-समझना चाहिए। सुनी-सुनायी सब सच नही होती । वास्तविकता क्या है ? वहाँ जाने से ही पता चलेगा ।

होस्टल वगैरह तो व्यर्थ की बकवास है, उसकी दुर्दशा तो मैने स्वय भी देखी है ।

डॉ धर्मचन्द ने सबकी बाते सुनकर अपनी राय कायम करते हुए कहा – "देखो । होस्टल मे तो मै भूलकर भी नही भेजूँगा । वहाँ तो अच्छे-अच्छे लडके बिगड जाते है, तुम राजू की बात करती हो। देखा नही तुमने विज्ञान को ? कितना सीधा-सादा-सज्जन लडका था वह, फिर उसे तो उसके दादाश्री द्वारा बचपन मे चार-पाँच वर्ष तक कुछ सदाचार के सस्कार भी मिल गये थे, फिर भी वह होस्टल मे जाकर पथभ्रष्ट हो गया था ।

वहाँ बिगडने मे लडको के बजाय वहाँ के वातावरण का ही अधिक हाथ होता है । जिस तरह ऊँट पर बैठने वाले को मलकना ही पडता है। यदि सवार ऊँट की मलक मे मलक न मिलाये तो उसकी कमर ही टूट जाए । यही स्थिति वहाँ के आवासी छात्रो की होती है । उन्हे भी बाध्य होकर उन परिस्थितियो से समझौता करना ही पडता है । अन्यथा उन्हें उन होस्टलो मे रहना कठिन हो जाता है ।

और तो और अधिकारियो को भी छात्रों से मिलजुल कर ही अपना निर्वाह करना पडता है, अन्यथा उनकी हूटिंग करने मे भी उन्हे क्या देर लगती है ? और अधिकारियो की भी ऐसी क्या अटक रही है, जो व्यर्थ ही झझट मोल ले ।

शराब और सिगरेट तो मानो वहाँ की सभ्यता मे शामिल हो गये है । आये दिन सिनेमा, सगीत-नृत्य और नौटंकियाँ देखना भी उनकी चर्या के अभिन्न अग बन जाते हैं । जो शामिल न होना चाहे तो भी उसे शामिल होना पडता है, अन्यथा नाना यातनाये सहनी पडती हैं सो अलग । और पढ तो सकते ही नही, लाइट गुम कर दी जायेगी, पुस्तकें गायब कर दी जायेगी, और भी जो सम्भव होगा, कुछ भी करने से नहीं चूकेगे ।

अत होस्टल का तो तुम नाम ही मत लो, वहाँ भेजने का तो प्रश्न ही नही है । रही बात सिद्धान्त महाविद्यालय मे भेजने की, सो उसके बारे मे भी पूरी छानबीन और तलाश करके और पूर्ण सतोष होने पर ही निर्णय करेगे । अत तुम निश्चित रहो ।



१४

"काम । काम ।। काम ।।। जब देखो तब काम, घर मे काम, बाहर काम, जहाँ जाओ वहाँ काम – इसकारण न सुबह चैन न शाम को चैन, न दिन मे चैन न रात मे चैन, चौबीसो घंटे बेचैन । ऐसा काम भी किस काम का ? जिसके कारण खाना-पीना भी हराम हो जाता हो । बाल-बच्चों को सभालना भी कठिन हो जाता है ।

इस काम के भूत ने ही तो राजू को बेकाम कर दिया है । उसकी पढ़ाई-लिखाई पर पानी फेर दिया है, उसे आवारा बना दिया है, उसे परिवार के प्रति विद्रोही बना दिया है, और बना दिया है दुर्व्यसनी और दुराचारी ।

केवल धन कमाना ही तो जीवन का लक्ष्य नही है । धन तो केवल साधन है न ? साध्य तो नही, पर हमने उसे साध्य बना रखा है।

अब करना ही क्या है हमे अधिक धन कमाकर । केवल पेट ही तो भरना है, पेटी भरने मे तो अब मेरा विश्वास रहा नही । देखो न । यह उक्ति कितनी सटीक है कि – **'यदि पुत्र सुपुत्र है तो भी धन का संचय व्यर्थ है और यदि पुत्र कुपुत्र है तो भी धन का संचय व्यर्थ ही है; क्योंकि यदि पुत्र सुपुत्र है, योग्य है, होनहार है तो स्वयं धर्नाजन कर लेगा । और यदि वह कुपुत्र है, तब सारा अर्जित धन क्षण भर में बर्बाद कर देगा ।'**

इस प्रकार दोनो ही परिस्थितियों मे, जरूरत से ज्यादा धर्नाजन करना व्यर्थ है । अत अब तो केवल राजू को सन्मार्ग पर लाने का ही मात्र एक-सूत्रीय कार्यक्रम बनाना है । उसी पर पूरा ध्यान केन्द्रित करना है ।

जो हो गया सो तो हो ही गया, उसमें सुधार करने के लिए केवल पश्चाताप के आँसू बहाना ही काफी नहीं है । जो भी सभव हो वह उपाय करना भी आवश्यक है ।"

डॉक्टर धर्मचन्द बैठे-बैठे इन्हीं विचारों में डूबे हुए थे । उनकी पत्नी कनकलता ने उनका ध्यान भग करते हुए कहा – "चाय-नाश्ता तो समय पर ले लो । अभी थोडी देर मे मरीजो की भीड जमा हो जायेगी, फिर सास लेने को भी समय नहीं मिलेगा ।"

डॉक्टर ने कहा – "कनक । मै सोचता हूँ, यदि हम दोनों ही घर की प्रेक्टिस—घर पर मरीजो को देखना, उनका उपचार करना बन्द कर दे तो कैसा रहे ?"

डॉ कनकलता ने गभीर होते हुए कहा – "आपका सोचना सही है, पर यह डॉक्टर का पेशा ही ऐसा है कि जो एक बार इसे पकड लेता है, फिर यह व्यवसाय उसे ऐसा जकडता है कि इससे पिण्ड छुडाना कठिन हो जाता है । हम छोडना भी चाहें तो मरीज हमे नहीं छोडेंगे।

सवाल अपनी कमाई का ही अकेला नही है, पर उन मरीजो का क्या होगा, जो अपने ऊपर विश्वास किये बैठे हैं ? वे कहाँ जायेगे क्या करेगे ? और फिर यह एक तरह से समाज सेवा भी तो है।"

डॉक्टर ने मुस्कराते हुए कहा – "कनक । यह सब तुम्हारा भ्रम है । यह कोई समस्या भी नही है और समाज सेवा भी नहीं । यह तो केवल हमारा पैसा कमाने का तरीका है, तरीका । अन्यथा सेवा तो हम इससे भी बहुत अच्छी हॉस्पिटल मे भी कर सकते थे ।

तुम स्वयं डॉक्टर हो, एक ईमानदार डॉक्टर की क्या ड्यूटी है ? यह भी तुम अच्छी तरह जानती हो और अपनी कार्यक्षमता क्या है? यह भी अच्छी तरह पहचानती हो । जरा, तुम मुझे यह बताओ कि हॉस्पिटल मे तुम कितने घंटे में कितने मरीज देखती हो ? और ईमानदारी से कितने देख सकती है ?

घर की डिस्पेंसरी मे जो तुम्हारी सजगता, सक्रियता और उत्साह रहता है, क्या हॉस्पिटल मे भी वैसी ही सजगता, सक्रियता और उत्साह रहता है।

मै यह मानने को कतई तैयार नही हूँ कि हमे हॉस्पिटल मे समय नहीं मिलता, इसलिए हम वहाँ का काम यहाँ डिस्पेसरी मे करते है। सत्य तो यह है कि हम वहाँ से मरीजो को यहाँ इसलिए बुलाते हैं, ताकि हमे फीस मिले और कमाई हो । हम चाहे तो यहाँ का और वहाँ का काम सब आराम से वही कर सकते हैं ।

बोलो इस विषय मे क्या विचार है तुम्हारा ?"

कनकलता ने कहा – "आप ठीक कहते है, इसमे जरा भी सदेह नहीं है, ऐसा ही है । पर "

डॉ धर्मचन्द ने कहा – "पर क्या ? आज मरीजो की आम धारणा भी ऐसी ही बन गई है कि एक बार डॉक्टर के घर पर फीस देकर दिखाए बिना वह अस्पताल मे ध्यान नही देगा, अत घर पर दिखाने के बहाने सौ-पचास रुपया जो उसकी फीस हो देना जरूरी है । यदि घर पर फीस दे दे तो वह फीस का रुपया तो कही से भी वसूल हो जाएगा । अन्यथा डॉक्टर एक-एक गोली और एक-एक इन्जेक्शन बाजार से लिखेगा, जिसमे सैकडो रुपये तो यो ही लग जायेगे । डॉक्टर लाइन मे घटो खडा रखेगा सो अलग ।"

पर, अब डॉ धर्मचन्द और कनकलता के साथ यह बात नही रही थी। उन्होने मरीजो की इस धारणा को तोड दिया था । अब मरीजो को भी विश्वास हो गया था कि इन डॉक्टर दम्पति द्वारा अब उनका इलाज अस्पताल मे ही भली प्रकार से हो जायेगा ।

डॉक्टर ने अपनी पत्नी डॉ कनकलता से कहा – "देखो अब हमे अधिक पैसो की आवश्यकता नही है । हम कितना भी जोड कर रख जाये यदि राजू के यही हाल रहे तो सारा धन बर्बाद करने मे दस-बीस वर्ष तो क्या दस-बीस महीने भी नहीं लगेगे और यदि राजू सही राह

पर आ गया तो वह और उसके पुत्रों की तो बात क्या, उसके पोतों-पड़पोतों तक को भी धन की कमी नही पडेगी । उसके भाग्य से आय के सहज मे ही ऐसे साधन जुट गये हैं ।

इसलिए मैने तो अब निश्चय कर लिया है कि अस्पताल की ड्यूटी के सिवाय पूरा समय राजू के चरित्र-निर्माण और अपने आत्म-कल्याण मे ही लगाऊँगा । इसके अतिरिक्त जो समय मिलेगा उसमे समाज के निर्धन और असहाय रोगियो की नि स्वार्थ सेवा करूँगा ।

पर अभी कम से कम एक वर्ष तो सब कामो को गौण करके एकमात्र राजू को सन्मार्ग पर लाने मे ही लगाना होगा । हमारी लापरवाही से उसके जीवन के साथ जो अन्याय हो गया है, उसके प्रायश्चित स्वरूप जो भी समर्पण करना पडेगा, करूँगा । ऐसा किए बिना उसका जीवन तो बर्बाद हो ही जायगा, मेरा शेष जीवन भी सुख शान्ति से नही बीत सकेगा ।"

माँ तो आखिर माँ ही होती है । पेशे से कनक भले ही डॉक्टर थी, पर पुत्र के प्रति उसका हृदय भी समर्पित था, अत उसने भी अपने पति का लम्बा भाषण सुनने के पहले ही अपने बेटे राजू के हित मे अपनी प्राइवेट प्रेक्टिस छोडने का निश्चय कर लिया था और दोनो पति-पत्नी राजू के भविष्य को उज्ज्वल बनाने के प्रयास में जुट गये थे ।

× × ×

राजू अब बच्चा नही रहा था, उसमें अब काफी प्रौढ़ता आ चुकी थी । यद्यपि उम्र मे वह अपने मित्र विज्ञान और सजू से काफी छोटा था पर सजू के साथ ही वह अधिक रहा करता था । इस कारण संजू के व्यक्तित्व का प्रभाव उस पर होना स्वाभाविक ही था । पर सजू अपने पिता के काम-काज मे हाथ बटाने लगा था और विज्ञान तो अपने व्यापार में व्यस्त था ही । इस कारण अब राजू का कोई ऐसा खास दोस्त नहीं रहा था, जिसके साथ वह अपना मनोरंजन कर सकता ।

पर आदते तो जो पड चुकी थी सो पड ही गई थीं । अत जो भी बचे-खुचे छुट-पुट साथी थे, उन्हीं के साथ अनमने मन से समय गुजार रहा था । उसके मन में न पढ़ पाने की कुठा अभी भी बराबर बनी हुई थी । इस कारण वह अपनी बहिनो से भी हृदय से नहीं जुड पाया था।

जब कोई बहिनो की बात भी करता था तो उसे उनका स्वयं के प्रति हुआ कठोर और स्वार्थ भरा व्यवहार स्मरण हो आता था और एक अजीब-सी घृणा के साथ उसका मानस उनके प्रति विद्रोह कर बैठता था ।

एक दिन राजू के पापा और मम्मी ने बहुत प्यार से राजू को अपने पास बिठाकर अपने दिल का दु खदर्द बताते हुए उससे कहा – "बेटा। आजकल तुम उदास-उदास से रहते हो । हम जानते हैं कि तुम्हारे दोस्त सजू वगैरह का साथ छूट जाने से तुम अकेले पड गये हो, इस कारण तुम्हें यहाँ अच्छा नहीं लगता होगा ।

खैर ? यदि तुम्हारी इच्छा हो तो हम तुम्हें किसी अच्छे छात्रावास मे भर्ती कराना चाहते हैं जहाँ तुम आराम से ग्रेजुएट भी हो सको और अच्छे मित्रो का साथ मिलने से तुम्हारी ये छोटी-मोटी जो सिगरेट आदि पीने की आदते पड गई हैं, ये भी छूट जावे ।"

राजू की असमय मे पढ़ाई छूट जाने से उसे भी कम दु ख नही था, क्योंकि उसकी पढ़ने की तमन्ना तो थी ही, पढ़ने मे उसकी गहरी रुचि भी थी । उसके अवचेतन मन मे पढ न पाने की पडी कुठा समय-समय पर माता-पिता और परिवार से भी विद्रोह कर बैठती थी, क्योंकि उसका पढ़ना पारिवारिक परिस्थितिवश ही छूटा था न ? पढ़ना छूटने के बाद खाली दिमाग हो जाने से उस पर शैतान सवार हो गया था । लोकोक्ति भी है – 'खाली दिमाग शैतान का घर' ।

जब उसके पापा ने पुन. पढ़ाई की बात कही तो उसका मन उत्साहित हो उठा और वह प्रसन्नता से उछल पडा । उसने सोचा – "अच्छा

है छात्रावास मे रहने से पढ़ाई को भी पूरा समय मिल जायगा और अच्छे मित्र भी मिल जायेगे । इधर मम्मी-पापा को मेरी आदतो से जो परेशानी है, यदि वे बदल गई तो वे भी प्रसन्न हो जायेगे । मै अपनी दीदियों को भी बता दूँगा कि — मै गधा हूँ या एक अच्छा इसान ?" अत उसने हाँ भर ली ।

डॉ धर्मचन्द ने सोचा — "अब राजू इक्कीस वर्ष का हो गया है। अत अब तीन-चार वर्ष से अधिक नहीं पढ़ाया जा सकता, क्योंकि चौवीस-पच्चीस वर्ष की उम्र ही शादी के लिए सर्वोत्तम है ।

जिस तरह बाईस वर्ष से कम उम्र में शादी करना हानिकारक है, उसी तरह पच्चीस-छब्बीस वर्ष के बाद अधिक उम्र में शादी करना भी शरीर विज्ञान व मनोविज्ञान की दृष्टि से हानिकारक है ।

अभी भी अपने पास राजू की एजूकेशन के लिए तीन-चार वर्ष तो है ही । क्यो न इन तीन-चार वर्षों मे उसे जैनदर्शन मे ग्रेजुएशन करा लिया जाये ? जैसाकि उस दिन 'वीतराग विज्ञान' मासिक पत्रिका मे पढा था । उसमे स्पष्ट लिखा था कि 'राजस्थान विश्वविद्यालय मे न केवल जैनदर्शन का बल्कि सभी भारतीय दर्शनो के एवं सस्कृत साहित्य व सस्कृत व्याकरण आदि विषयो के पाठ्यक्रम हैं । और हजारों की सख्या मे सभी विद्यार्थी इन विषयो की परीक्षाओ मे सम्मिलित होते हैं।

और हाँ, वहाँ के स्नातक चाहें तो आईएएस, आरएएस आदि किसी भी प्रतियोगिता परीक्षा में सम्मिलित हो सकते हैं ।

जब यह बात राजू को बताई जायेगी तो वह जरूर ही इस पाठ्यक्रम को पढ़ने के लिए तैयार हो जायेगा, क्योंकि उसके मन मे न पढ़ पाने की कुठा तो अभी भी बनी है, उसके विद्रोही होने का एक प्रमुख कारण यह भी है ।

अब किसी अन्य विषय को पढ़ाने से कोई लाभ नहीं है । व्यवसाय तो अपना ही करना है । जैनदर्शन में ग्रेजुएशन कराने से हमारे लिए भी 'एक पथ दो काज' ही नहीं, बल्कि 'एक पथ अनेक काज' वाली

कहावत चरितार्थ हो जायेगी । ग्रेजुएट तो वह हो ही जायेगा । जैनदर्शन मे ग्रेजुएट होने से उसे जैनधर्म का ज्ञान भी हो जायेगा, और उसका आचरण भी सुधर जायेगा ।

जब रिपट ही पडे हैं तो हर-हर-गगे करके स्नान ही क्यो न कर लिया जाय ? लोगो को हंसने का मौका ही क्यो दे ? अन्यथा लोग कहेगे 'ये डाक्टर तो कमाई मे उलझे रहे और बेटे को आवारा बना लिया ।' कल शादी-विवाह करने के भी लाले पड सकते हैं । कौन देगा आवारा लडके को अपनी लडकी ? दुनिया मे लडकों की कमी नहीं, अच्छे लडकों की कमी है ।

और हाँ, धर्म की दो बाते को सीखकर आयेगा तो बुढ़ापे मे हमे भी तो धर्म सुना-समझा सकेगा । अन्यथा हम भी तो धर्म की दो बाते सुनने को तरस जायेगे, तत्वज्ञान से वचित रह जाएगे ।

परलोक मे धर्म के सिवाय और साथ जाता ही क्या है । अत राजू को जैनदर्शन पढ़ाना ही सर्वोत्तम रहेगा ।"

यह विचार कर डॉक्टर दम्पति ने अपने बेटे राजू को जैनदर्शन मे शास्त्री तक अध्ययन कराने हेतु उसी जैनसिद्धान्त महाविद्यालय मे प्रवेश कराने का मन बना लिया, जिसका उन्होने विज्ञापन पढ़ा था ।

जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या का समाधान पाकर वे अपने को हल्का-सा महसूस करते हुए शयनकक्ष मे विश्राम करने चले गये।

•

१५

फागुन का महीना था, न अधिक गर्मी न अधिक सर्दी, यात्रा के लिए सबसे अच्छा समय देखकर डॉक्टर दम्पति ने विचार किया — "यदि राजू को जुलाई सत्र मे उसी छात्रावास और विद्यालय मे प्रवेश दिलाना है तो अभी से प्रयत्न करना होगा, एतदर्थ क्यो न कल-परसों से ही पन्द्रह दिन का तीर्थयात्रा का कार्यक्रम बना लिया जाए । शुभकाम मे देर क्यो ?

वैसे तो वहाँ जाकर देखने जैसी कोई बात नही थी, पत्राचार से सम्पर्क द्वारा भी काम बन सकता था, पर बेबी, बबली आदि ने व्यर्थ का बबेला मचाकर वहाँ के विरुद्ध वातावरण बनाकर सशय मे जो डाल दिया था, अत जब तक अपनी आँखो से वहाँ की स्थिति न देख ले, तब तक स्वय को भी सतोष नहीं होगा और दूसरो से भी दृढ़ता से नही कह सकेंगे ।"

डॉ धर्मचन्द एव उसकी पत्नी का यह सोचना उचित भी था, क्योंकि दूध का जला छाछ को भी फूँक-फूँक कर पीता है । उन्हें भय था कि राजू दुबारा कही गलत संगति मे न पड जाये । अत उन्होने एक बार स्वय उस सस्था के वातावरण को देखने का निश्चय किया था ।

तीर्थयात्रा का कार्यक्रम तो बन गया था, पर वे अभी तक यह निर्णय नही कर पा रहे थे कि असलियत का पता कहाँ से/कैसे चल सकता है ? सोचते-सोचते वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि पहले यात्री के रूप मे वहाँ दो-तीन दिन ठहर कर वहाँ की एक-एक गतिविधियों पर दृष्टि डालना चाहिए एव वहाँ के आवासी छात्रो से सीधा सम्पर्क करके उनकी मन:स्थिति एव वहाँ की परिस्थितियों का अध्ययन करना चाहिए ।

ऐसा विचार करके वे यात्रा की तैयारी मे लग गये ।

× × ×

दूसरे दिन ही सवेरा होते-होते डॉ धर्मचन्द, उनकी पत्नी एव राजू उस जैन नगरी मे जा पहुँचे, जहाँ वह विद्यालय स्थापित था ।

ज्यो ही वे प्रवेश द्वार पर पहुँचे तो प्रथम तो वे भवन की भव्यता से ही बहुत प्रभावित हुए । सवेरे के पाच बज रहे थे, आते ही मगलाचरण के रूप मे जिनालय मे से सामूहिक प्रार्थना की गूँजती मधुर ध्वनि ने उनका स्वागत किया। तत्पश्चात उनके कानो मे पूरे प्रागण मे गूँज रही वैराग्यरस से ओत-प्रोत बारह भावना की सगीतमय ध्वनि ने उनके हृदयपटल पर अपनी अमिट छाप छोडी । तत्काल बाद टेप प्रवचन के माध्यम से 'अहा हा भगवान आत्मा' के स्वर सुनाई देने लगे । साढे छ -सात बजते-बजते जिनालय में भक्तो की भीड, फिर क्रमश. कक्षाये, प्रवचन, छात्रो की सामूहिक पूजन होते-होते साढे नौ बज गये।

बारहमासी प्रात पाच से साढे नौ बजे तक एक के बाद एक और एक से बढ़कर एक दैनिक कार्यक्रम देखकर वे चकित रह गये । कहाँ मिलता है ऐसे मगलमय वातावरण सहज सयोग ?

सुबह से शाम तक और शाम से सुबह तक पूरे चौबीस घटे की कितनी व्यवस्थित और सतुलित है यह दिनचर्या ? जिसमे न एक मिनट फालतू है और न विद्यार्थियो पर अनावश्यक बोझ । लौकिक और लोकोत्तर दोनो प्रकार के जीवन के विकास के लिए सतुलित साधन, व्यवस्थित समय का निर्धारण और सभी प्रकार से शुद्ध सात्विक वातावरण।

खेल-कूद से लेकर खान-पान तक और आध्यात्मिक अध्ययन से लेकर लौकिक पत्र-पत्रिकाओ की समुचित व्यवस्था । सभी छात्र स्वतन्त्र रहते हुए भी पूर्ण अनुशासित, आतिथ्य सत्कार में अग्रणी, पूर्ण प्रसन्न, हंसमुख, शांत, सरल और परस्पर मे बधुत्वभाव से रहते हुए एक-दूसरे के सुख-दु ख मे समभागी और समर्पित । न कोई शिकायत न शिकवा और न कोई असतोष की भाषा । जैसा जो उपलब्ध उसी मे संतुष्ट ।

यह सब देखकर डॉक्टर दम्पति तो सतुष्ट हुए ही, राजू भी वहाँ रहने के लिए मानसिक रूप से तैयार हो गया था । पर डॉक्टर धर्मचन्द ने सोचा – "यह बाहरी वातावरण तो किसी विशिष्ट व्यक्तित्व के दबाव से या उसके सहज प्रभाव से बनावटी भी हो सकता है, नकली भी हो सकता है । इसकी अतरग स्थिति का परिचय तो वहाँ के कार्यकर्ताओ और छात्रो से बात करने से ही स्पष्ट हो सकेगा ।"

छात्रो की मनस्थिति जानने के लिए डॉक्टर ने एक-एक करके अनेक छात्रो से सम्पर्क किया । सबकी लगभग यही रिपोर्ट थी कि "घर और बाहर की सुख-सुविधाओ मे तथा व्यक्तिगत और सामूहिक व्यवस्थाओ मे जो अन्तर होता है, उसे ध्यान मे रखकर देखे तो आज ऐसी सुविधाये और प्रगति के अवसर अन्यत्र दुर्लभ हैं ।"

छात्रो ने बताया "जो छात्र गाँव और कस्बो से आते हैं या मध्यम घरो से आते है, उनके लिए तो यह स्वर्ग-सा लगता ही है, साथ ही जो घर का बहुत ही आरामदायक जीवन छोडकर आते हैं, वे भी यहाँ के आध्यात्मिक वातावरण मे थोडा कठोर जीवन जीना सीख लेते है। उन्हे भी फिर घर का वह भोग प्रधान आरामदायक जीवन अच्छा नही लगता ।"

छात्रो के साथ हुई बातचीत के दौरान डॉ धर्मचन्द ने एक छात्र से पूछा – "आप लोगो को यहाँ अपने माता-पिता और कुटुम्ब परिवार तथा मित्रो की याद तो सताती ही होगी ?"

एक छात्र का उत्तर था – "यहाँ हमारे माता-पिता और परिवार के लोग तो नहीं हैं, पर हमे माता-पिता और परिवार जैसा स्नेहपूर्ण वातावरण यहाँ मिल जाता है और मित्रो की क्या कहें ? पाच-दस मित्रो को छोडकर आते हैं और सत्तर-बहत्तर नये मित्र मिल जाते हैं। अत हमें यहाँ ऐसा लगता ही नही कि हम घर से दूर कहीं बाहर रह रहे हैं । फिर समय-समय पर घर जाने की छुट्टियाँ भी मिल ही जाती हैं । यहाँ भी हमारे घर वाले और रिश्तेदार आते रहते हैं।"

डॉक्टर ने अगला प्रश्न किया – "यहाँ भोजन मे जमीकद नहीं बनता, बेसन व छाछ के मिश्रण से बनने वाले कढ़ी आदि स्वादिष्ट वस्तुयें कुछ भी नहीं बनतीं, आपके घर जैसा भोजन भी नहीं बन पाता, इससे आप लोगों को असुविधा नहीं होती ?"

दूसरे छात्र ने आत्मविश्वास के साथ उत्तर दिया – "यह बात सच है कि भोजन सबके मन का नही बनता, बन भी नही सकता, क्योंकि यहाँ विभिन्न प्रान्तो के विभिन्न भाषा-भाषी छात्र रहते हैं और सबके खान-पान और रहन-सहन की सस्कृतियाँ और रुचियाँ भिन्न-भिन्न होतीं हैं । किसी को मीठा पसद है तो किसी को तीखा । यदि हमारे घरो मे भी ऐसा करना पडे तो हम वहाँ एक-दो दिन को भी नही निभा पाते तो यहाँ बारहों मास ऐसा कैसे सभव हो सकता है ? पर जो बनता है वह अच्छे स्तर का बनता है ।"

दूसरे, हम लोग पढ़ने के लिए आते हैं, पढना ही हमारा मुख्य लक्ष्य है, अत हम लोग भोजन सम्बन्धी छोटी-मोटी कमियो पर ध्यान नही देते, देना भी नही चाहिए । सामूहिक व्यवस्था मे जो सभव होगा, वही तो किया जायेगा । घर जैसी सुविधाये तो घर पर ही सम्भव हैं न ?

आप अपने को ही देखिये न । आप यात्रा पर निकले, तो क्या आपको हर जगह घर जैसी सुविधायें मिल रहीं हैं ?

रही बात जमीकन्द और द्विदल आदि सब्जियो के न बनने की, सो जैन होने के नाते जिनमें त्रस और बहुस्थावर जीवों की हिसा हो – ऐसा हिंसाजनित भोजन तो अभक्ष्य होने से खाने लायक ही नहीं है ।

जिसमें असख्य सूक्ष्म त्रस-स्थावर जीवों की हिसा होती हो, वह अभक्ष्य भोजन यह अहिंसक समाज कैसे खा सकता है ?"

डॉक्टर ने कहा – "यह अहिंसक जैन समाज क्या कर सकता है और क्या नहीं – यह तो जाने दो । तुम तो अपनी कहो, यहाँ

बनता नही है, इसलिए तुम नहीं खाते हो या कि तुमने अपने दिल से ही इनके खाने का त्याग कर दिया है ?"

दूसरे छात्र ने उत्तर दिया – "प्रारम्भ मे प्रवेश के समय तो यहाँ बनते नहीं थे, इस कारण हम खाते भी क्या ? और अब हमे प्रवचनों और कक्षाओ के माध्यम से भली-भांति इनकी हेयता का ज्ञान हो गया है, ये अभक्ष्य है, खाने योग्य नहीं है, यह अच्छी तरह समझ मे आ गया, अत अब हम सब लोगो ने अपने मन से ही उन सबका आजीवन त्याग कर दिया है ।

इतना ही नही, जब हम अपने-अपने घर जाते हैं तो घरवालों को भी यही समझाते हैं । इससे धीरे-धीरे अब हमारे घरों मे भी आलू आदि जमीकद और दही व दालो के मिश्रण से बनने वाली द्विदल सब्जियाँ नही बनती ।"

अब तक राजू की झिझक टूट चुकी थी । अत उसने पूछ लिया – "क्या आप लोग बतायेगे कि ये अभक्ष्य क्यों होते हैं ?

एक छात्र ने कहा – "हाँ, हाँ जरूर बतायेगे, क्यों नहीं बतायेंगे ? आप पूछें और हम न बताये – ऐसा कैसे हो सकता है ? जो खाने योग्य हो वह भक्ष्य और जो खाने योग्य न हो वह अभक्ष्य। इतना तो आप समझते ही हैं न ?"

डॉक्टर ने बीच मे ही अपने डॉक्टरी मतव्य को प्रगट करते हुए प्रश्न किया – "अरे भाई । ये जमीकंद तो खाने योग्य होते हैं, इनमें तो बहुत सारे विटामिन्स और प्रोटीन यानि शरीर पोषक तत्व होते हैं तथा शरीर के लिए घातक नहीं, बल्कि लाभदायक होते हैं, फिर ये अभक्ष्य कैसे हुए ?"

एक मुँह फट छात्र बोला – "डॉक्टर साहब ? क्षमा करना, अभी आपने अकेले साग-भाजियो के तत्व ही पढ़े हैं । अब आपको इनके सिवाय जैनदर्शन के तत्वों को भी पढ़ना होगा, क्योंकि इन तत्वों के

खाते-पीते भी तो यह शरीर पुष्ट नहीं रह पाता । देखिये न । आप तो सभी तत्व (विटामिन्स) बराबर खा-पी रहे हैं फिर भी ।"

दूसरे छात्र ने उसको रोकते हुए कहा – "अभी पहले डॉक्टर साहब के प्रश्नो का उत्तर देना चाहिए । यह बात जो तुम कह रहे हो, प्रथम परिचय मे कहने की नही है । मित्र । जरा सभ्यता सीखो ।"

उस छात्र की ओर से क्षमा मागते हुए इस छात्र ने पुन कहा – "डॉक्टर साहब अभक्ष्यपना केवल अपने स्वास्थ्य के हानि-लाभ से ही सम्बन्ध नहीं रखते । वरन् इनका सम्बन्ध अपने आत्मा की क्रूरता और पर जीवों के घात से भी है, अत इस सम्बन्ध में इन अभक्ष्यों का पाच भागों में वर्गीकरण किया गया है – (1) त्रसघात (2) बहुघात (3) नशाकारक (4) अनिष्ट और (5) अनुपसेव्य ।

सभी प्रकार का मासाहार तो चलते-फिरते त्रसजीवों के घात से बनता है, अत वह तो त्रसघात नामक अभक्ष्य है ही, मुर्गी के सभी प्रकार के अडों से बने खाद्य पदार्थ भी मासाहार ही है । जिन अडों से मुर्गी के चूजे (बच्चे) पैदा नहीं होते उन अण्डों में भी सूक्ष्म त्रसजीव निरतर पैदा होते रहते हैं, अत वे ही मासाहार ही है । उन्हे शाकाहारी कहकर नहीं खाया जा सकता ।

अत यह सब तो त्रसघात अभक्ष्य है ही, इनके अतिरिक्त बासा भोजन, पुराने अचार-मुरब्बा आदि में भी दो-इन्द्रिय आदि त्रस जीव पैदा हो जाते हैं, अत वह भी त्रसघात अभक्ष्य है ।

कोई भी करुणावन्त दयालु व्यक्ति इनका सेवन कैसे कर सकता है ? क्योंकि ये भी तो हम-तुम जैसे ही प्राणी हैं । इनकी हिंसा महापाप है ।

शराब और शहद में भी अनंत जीव निरंतर पैदा होते रहते हैं।

शराब तो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होने से अनिष्ट भी है, शहद भले अनिष्ट न हो, पर उसमें न केवल फूलों का रस ही होता है; बल्कि फूलों के रस के साथ असंख्य मधुमक्खियों के अंडे भी मिल

जाते है । मधुमक्खियों की लार एवं मल-मूत्र भी मिल जाता है, क्योंकि उनके छत्ते में न तो अलग से कोई यूरिनल (पिशाबघर) होता है और न सडास । तथा फूलों का रस लाने के लिए उनके पास केवल मुँह ही बर्तन के रूप में होता है, जिसे न धोने-माजने की व्यवस्था है, न दातुन-कुल्ला करने का कोई टूथपेस्ट और मंजन । वे मक्खियाँ उसी मुँह से गंदगी भी खाती है और उसी गंदे मुँह में फूलों का रस भर कर लाती है ।

अब आप ही सोच लीजिए, मधु (शहद) भक्ष्य है या अभक्ष्य ? हमारे विचार से तो शहद खाना तो दूर, छूने लायक भी नही है, क्योंकि वह मल-मूत्र, और थूक-लार का मधुर मिश्रण है । अत. आज से आप मरीजो को भी वे दवाये न दे, जिनमे मद्य, मधु, मास मिले रहते है ।

दूसरे प्रकार के अभक्ष्य पदार्थ वे हैं, जो बहुत से स्थावर जीवों के घात से बनते है, उन्हें बहुघात अभक्ष्य कहते हैं । आलू आदि सम्पूर्ण जमीकन्द इसी श्रेणी में आते है ।

राजू ने कहा – "आलू, प्याज, लहसन आदि के काटने पर उनमे जीव तो दिखाई देते नही, भिन्डी, फली आदि की भांति उनमे लटें वगैरह भी नही पडती, फिर यह कैसे मान लिया जाय कि उनमे जीव होते है ?"

छात्र ने शास्त्र के आधार से राजू को चुप करने के बजाय युक्ति से समझाकर उसके गले उतारते हुए कहा – "देखो । आलू मे अनत जीव होने का सबसे बडा प्रमाण तो यही है, कि वे डलिया (टोकरी) मे रखे-रखे भी बढ़ते हैं, हमेशा ताजे से रखे रहते हैं, सूखते नही, सडते भी नही ।

जिस तरह हमारे-तुम्हारे शरीर मे जब तक जीव रहता है तब तक यह शरीर सडता नही, सडान की दुर्गन्ध भी नहीं आती, और प्राणान्त होते ही सडने लगता है । यही आलू, प्याज की स्थिति है ।"

डॉक्टर ने कहा – "पर्यूषण पर्व मे मैंने एक दिन छहढाला पर हो रहे प्रवचन मे सुना था कि निगोदिया जीवो की आयु बहुत कम होती है । वे एक स्वाँस मे अठारह बार जन्म-मरण कर लेते हैं । स्वाँस भी सास लेने वाली स्वाँस नहीं, बल्कि हाथ की नाडी के एक बार फडकने को एक स्वाँस कहा गया है, जो लगभग एक मिनट मे अस्सी बार फडकती है ।

जो जीव इतने जल्दी मर-जी लेते हैं, उनका घात कौन कर सकता है ? जब तक उन्हें कोई घात करने की सोचेगा, उसके पहले तो वे न जाने कितने बार जी-मर लेंगे ? और ये ही निगोदिया जीव आलू आदि जमीकद मे हैं – ऐसा कहा जाता है । ऐसी स्थिति मे आलू खाने से बहुघात कैसे हुआ ? वे जीव तो आलू के न पकाने एव खाने पर भी रखे हुए आलूओ मे जी-मर रहे है । आलू खाने न खाने से उन निगोदिया जीवो के सुख-दु ख मे क्या फर्क पडने वाला है ? वे तो अपनी नियति के अनुसार अपना कर्म फल भोग ही रहे हैं । फिर आलू आदि का त्याग क्यो कराया जाता है ?"

छात्रो मे से एक सीनियर छात्र बोला – "डॉक्टर साहब । आपकी तर्क और युक्तियाँ तो ठीक हैं । और आपने इस विषय पर इतना सोचा सो यह भी बहुत बडी बात है, पर जैनधर्म के अनुसार पाप-पुण्य का बन्ध जीवों के मरने न मरने के बजाय खाने वाले के परिणामों पर अधिक निर्भर करता है । जिसे यह मालूम हो जाय कि यह तो जीवों का ही कलेवर है और इसमें प्रति समय असंख्य जीव मर-जी रहे हैं, वह भला उसे कैसे खा सकेगा ? तीव्र राग के बिना और अत्यन्त निर्दय क्रूरता के बिना उस पदार्थ का खाना संभव ही नहीं है । ये अत्यन्त निर्दय परिणाम क्रूरता और तीव्रराग ही वास्तविक पाप भाव है एवं बंध के कारण हैं । जीवों का मरना तो निमित्त मात्र है । जीव घात न भी हो तो भी इस क्रूरता के परिणामों से पाप-बन्ध तो होगा ही । वस्तुतः आत्मा में राग आदि विकारों की

उत्पत्ति ही हिंसा है और इन रागादि विकारों की उत्पत्ति न होना ही अहिंसा है।"

यद्यपि आलू आदि जमीकंद मे रहने वाले जीव अपने आप ही मरते हैं, फिर भी आलू क्यों नहीं खाना चाहिए, इसका उत्तर यद्यपि एक सीनियर छात्र डॉक्टर परिवार को शास्त्र के आधार से दे चुका था, पर वहीं बैठे दूसरे छात्र को एक बहुत प्रबल युक्ति का स्मरण हो आया। अत उत्साहित होकर आगे आते हुए वह बोला – "इसका एक मनोरंजक किस्सा मै आप को सुनाता हूँ । सभव है उससे आपकी रही-सही शका का भी समाधान हो जायेगा ।"

अपने कानो सुनी सत्य घटना सुनाते हुए उस छात्र ने कहा – "बात बम्बई की है, पर्यूषण पर्व का समय, बरसाती मौसम, कभी रिम-झिम वर्षा तो कभी मूसलाधार पानी का जमाव, जो घटो तक रुकने का नाम ही नही लेता, फिर भी मन्दिर मे चल रहे प्रवचन मे भारी भीड । जीने तक मे भी खडे होने को जगह नहीं । बाहर से बहुत बडे विद्वान जो बुलाये गये थे । प्रवचनो के आकर्षण से भीड दिन दूनी बढ़ती ही जा रही थी । गर्मी तो वैसे भी थी ही, पर भीड के कारण और अधिक महसूस हो रही थी । फिर भी जब तक प्रवचन पूरा न हो जाता, कोई हिलने का नाम नही लेता ।

एक दिन जब पण्डितजी यह समझा रहे थे कि आलू क्यों नही खाना चाहिए, तभी प्रवचन के बीच मे ही एक नवयुवक खडा होकर बोला – "अभी आपने कहा था कि आलू में निगोदिया जीव होते हैं और वे हर क्षण अपनी मौत मरते हैं, तो फिर हमे शाकों के राजा आलू को न खाने का उपदेश क्यों दे रहे हो ? हमारी वजह से तो वे जीव मरे नहीं, क्योंकि वे तो हर पल अपनी ही मौत से मरते रहते हैं न ?"

पण्डितजी ने मीठी चुटकी लेते हुए कहा "भैया । कम से कम राजा को तो बचने दो । जरा विवेक से सोचो ! जो अपनी मौत मर

रहे हो, क्या उन्हें भी कोई दयालू खा सकता है ? और क्या कहा शाकों का राजा। अरे । राजा को ही खा जाओगे तो फिर प्रजा का क्या होगा ?"

नवयुवक बोला – "बात को मजाक मे मत टालो, पण्डितजी । मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिए ।"

पण्डितजी ने अत्यन्त शान्त भाव से कहा – "देखो भाई । यदि तुम्हें सही समाधान चाहिए तो पहले मै जो कुछ पूछूँ, तुम्हे उन बातो का सही-सही उत्तर देना होगा ।"

युवक ने उत्साह से कहा – "हाँ यह बात मजूर है । पूछो जो पूछना हो, पर शास्त्र की बात मत पूछना । वे मुझे नही आती ।"

पण्डितजी ने पूछा – "भाई तुम रहते कहाँ हो ?"

युवक का उत्तर था – "यही बम्बई सेन्ट्रल मे ।"

"तुम्हारा मकान कितना बडा है ?"

"मकान की क्या पूछते हो ? पूरी हवेली ही हमारी है, चारो ओर बहु मंजिला मकान है और बीच मे काफी बडा चौक है ।"

पण्डितजी ने मन ही मन सोचा – "बात तो बन गई ।" अत पण्डितजी ने पुन प्रश्न किया – "भाई ? क्या तुम बता सकते हो कि तुम्हारे मुहल्ले से मरघट और प्रसूति गृह कितने-कितने फासले से होंगे ?

युवक को इस प्रश्न का उत्तर ज्ञात नही था, अत वह सोचने लगा – "मेरे प्रश्न का इन सब बातो से क्या प्रयोजन है ? ये पण्डितजी ऐसे ऊँट-पटाग प्रश्न क्यों कर रहे हैं ?"

मन मे क्रोध भी बहुत आ रहा था पर क्रोध को पीता हुआ वह बोला – "मरघट तो करीब तीस-पैतीस किलोमीटर होगा और प्रसूति गृह भी बीस-पच्चीस किलोमीटर दूर तो होगा ही ।"

पण्डितजी ने कहा – "तब तो आप के मुहल्ले वाले को मरघट तक मुर्दा ले जाने और प्रसव की पीडा से पीडित महिलाओ को प्रसूतिगृह तक ले जाने में बडा भारी कष्ट झेलना पडता होगा ? क्यों जी ।

एक काम क्यो न करें ? तुम्हारी हवेली के चौक मे तो मुहल्ले के मुर्दे दफनाने की व्यवस्था हो जावे और पहली मंजिल मे प्रसूतिगृह बनवा देवे । क्यो ठीक है न ?"

"क्या बकते हो । आपको शर्म नहीं आती ऐसा कहते हुए । मेरा मकान मरघट और प्रसूतिगृह ?" — एकदम आग बबूला होकर युवक बोला।

पण्डितजी ने शान्त करते हुए कहा — "तुम चिन्ता क्यो करते हो? तुम्हारी हवेली मे तो मात्र वे ही मुर्दे दफनाये जायेगे, जो अपनी मौत मरे होगे । हत्या और आत्महत्या से मरे मुर्दे नही । तथा उन्ही महिलाओ का प्रजनन कराया जायेगा जो वैध होगे, जायज होगे । अवैध और नाजायज प्रसूतियाँ नही कराई जायेगीं । तब तो ठीक है न ? और सुनो । यह सब काम मुफ्त मे नही होगा । तुम्हें इसके किराये का मुँह माँगा पैसा दिया जायेगा ।"

युवक गरज कर बोला — "नही, यह हरगिज नही हो सकता। मेरा मकान और मुर्दा घर ? बद करो यह बकवास ।"

पण्डितजी ने उसकी आवाज को दबाते हुए उसी जोश से व्यगबाण छोडते हुए कहा — "तुम्हें मकान को तो किसी कीमत पर भी मरघट और मुर्दाघर बनाना पसद नही है और मुँह को मुफ्त मे ही मरघट बनाना पसद है और अपने मुँह को प्रसूतिघर भी खुशी-खुशी बना लेते हो ? तुम्हें शर्म नही आती । असख्य जीव तुम्हारे मुँह मे मरे — क्या तुम्हे यह पसद है ? भले ही वे अपनी मौत ही मरते हैं, पर मरते तो तुम्हारे मुँह मे ही हैं न ?"

पण्डितजी का यह शका-समाधान सुनकर न केवल युवक बल्कि वहाँ बैठे लगभग सभी गद्गद् थे और लगभग सभी का मन उसी दिन से आलू न खाने का सकल्प करने के लिए आतुर हो उठा था ।

× × ×

जब यह किस्सा उस छात्र द्वारा डॉक्टर दम्पति और राजू ने सुना तो उनका हृदय भी हिल गया था और उनके मुँह से यह निकल पडा — "बात तो सच है, यदि जमीकद कोई न खाये तो क्या बिगडने वाला है ? दुनिया मे उनसे भी कही अधिक विटामिन और प्रोटीन दालों और अन्य शाक-भाजियो मे है, जिनसे हमारे शारीरिक तत्वों की पूर्ति हो सकती है । अत हमारे लिए भी यह बात विचारणीय तो है ही ? क्यो न हम भी इनका त्याग कर दे ?

डॉ धर्मचन्द ने छात्रो को सहयोग के लिए धन्यवाद देते हुए अंतिम प्रश्न पूछा — "यह कैसे मान लिया जाये कि सभी छात्र यहाँ के वातावरण और व्यवस्था से पूर्ण प्रसन्न और सतुष्ट है ।"

छात्र ने मुस्कराते हुए कहा — "आपने भी खूब कहा, इस दुनिया मे कभी/कोई/किसी को पूर्ण प्रसन्न और सतुष्ट रख सका है ? कोई कितना भी साधन सपन्न क्यो न हो, उससे क्या ? माता-पिता भी अपनी सतान को सदा सतुष्ट नहीं रख पाते, सो यह तो विद्यालय है, छात्रावास है ।"

छात्र ने अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए अकबर-बीरबल का एक मनोरंजक किस्सा सुनाते हुए कहा — "बात बादशाह अकबर के जमाने की है । अकबर बादशाह के मुँह बोले वजीर बीरबल का बेटा बहुत देर से फूट-फूट कर रो रहा था और बीरबल उसे तरह-तरह से समझाने और मनाने की कोशिश कर रहे थे, पर वह चुप होने का नाम ही नही ले रहा था ।

इसी बीच अनायास बादशाह अकबर घूमते-घामते नगर का निरीक्षण करते हुए बीरबल के घर जा पहुँचे और बालक को रोता देख कर बोले — 'बीरबल । बालक क्यों रो रहा है ? अकबर बादशाह के वजीर होकर तुम्हें किस बात की कमी है । वह जब जो मागे तुरंत पेश कर दो, फिर रोने का क्या काम ?'

'महाराज । बात तो आप बिलकुल ठीक कहते हैं, पर'

'पर क्या ?' बादशाह ने बीच मे ही बीरबल की बात काटते हुए कहा ।

बीरबल ने सोचा – 'बादशाह की समझ मे ऐसे नहीं आयेगा ।'

अत उसने एक क्षण सोचकर कहा – 'बादशाह । आपका फरमाना तो वाजिब है, पर मनुष्य की इच्छाये बडी विचित्र होती हैं और फिर बालहठ, राजहठ और त्रियाहठ तो जगत प्रसिद्ध है ही । इन्हें समझाना इतना सरल नहीं है, जितना आप समझते हैं । यदि आपको यकीन नही हो तो आप स्वय प्रयोग करके देख ले । थोडी देर के लिए आप मेरे बाप बन जाइए और मै आपका बेटा बनता हूँ । आपके पास तो किसी भी वस्तु की कमी नहीं है । आप मुझे न रोने के लिए या रोते हुए को चुप करने के लिए जो विधि अपनायेगे, उसी विधि से मै अपने बेटे को कभी रोने का अवसर नही दूंगा । यदि रोयेगा भी तो उसी विधि से चुप कर दिया करूँगा ।'

बादशाह ने कहा – 'चलो ठीक है, यह बात हमे मजूर है ।'

बस, फिर क्या था, बीरबल बेटा बनकर बिना कुछ कहे जोर-जोर से रोने लगा ।

बाप की हैसियत से बादशाह ने प्रेम से कहा – 'बेटा । रोते क्यो हो ? बोलो तुम्हें क्या चाहिए ?'

बेटे के रूप मे बीरबल ने कहा – 'ऊं ऊं ऊं मुझे जोर से भूख लगी है अब्बाजान ? मै दाल-भात खाऊँगा ।"

देरी का क्या काम था, तुरत दाल-भात पेश कर दिया गया । फिर भी बेटा चुप नहीं हुआ ।

अब्बाजान ने कहा – 'अब क्यो रोते हो बेटा ।'

बेटे ने रोते-रोते कहा – 'इसे मिलाकर खाऊँगा । नौकर द्वारा तुरंत दाल-भात मिला दिया गया । फिर भी बेटा चुप नही हुआ । नौकर के हाथ से दाल-भात मिलाता देख और जोर-जोर से रोने लगा।'

अब्बाजान ने पूछा – 'अब क्यों रोते हो बेटा ?'

बेटे ने कहा – 'नौकर ने क्यो मिलाया ? तुमने अपने हाथ से क्यों नहीं मिलाया ?'

अब्बाजान ने कहा – 'चलो । कोई बात नही, चुप हो जाओ। दूसरा दाल-भात मगाकर हम अपने हाथ से मिलाये देते हैं ।'

बेटा बोला – 'मै दूसरा दाल-भात नहीं खाऊँगा । आप तो इसे ही अलग-अलग करवा कर फिर अपने हाथ से मिलाकर खिलाये, मै यही दाल-भात खाऊँगा और आप से ही मिलवाकर खाऊँगा ।'

बस इतने मे बादशाह की समझ मे सब कुछ आ गया कि मनुष्य की इच्छाये असीम और विचित्र हैं, उन्हे पूरी करने की बात कहना जितना आसान है, उनका पूरा करना उतना आसान नहीं । अत उन्होने कहा – "बीरबल तुम जीते और हम हारे ।"

छात्र से यह किस्सा सुनकर डॉक्टर दम्पति खूब हसे और बोले – "यह सब तो ठीक है । तुमने हमारा अच्छा खासा मनोरंजन तो कर दिया, पर इससे हमे कोई सतोषजनक समाधान नही मिला ।"

इस किस्से से डॉक्टर की समझ मे इतना तो आ गया था कि "सपूर्ण रूप से तो कोई/किसी को सतुष्ट नही रख सकता, फिर भी जो छात्र पूर्ण सतुष्टी की बात करते है, तो उनके कथन मे अवश्य ही कही/कोई अतिश्योक्ति है, इस छात्र का यह कहना तो उचित ही है । पर यह कैसे पता लगे कि इन छात्रो को कोई खास कठिनाई और परेशानी नही होती ?"

डॉक्टर ने पुन प्रश्न किया – "आप तो हमें यह बताइये कि आप लोग यह किस आधार पर कहते हैं कि अधिकाश छात्र तो सतुष्ट और प्रसन्न ही रहते हैं ? आपको छात्रो की मन.स्थिति का क्या पता ? वह असतुष्ट रहते हुए भी तो किसी व्यक्ति विशेष के प्रभाव के कारण या अपनी व्यक्तिगत किसी कमजोरी के कारण चुप रह सकते हैं और औपचारिकता वश सतोष प्रगट भी कर सकते हैं ।"

छात्र ने बहुत गभीरता से सोच-विचार कर उत्तर दिया – "इसका सबसे प्रबल प्रमाण तो यह है कि जिस ग्राम या नगर से पहली साल एक छात्र आ गया तो अगले साल उससे प्रेरणा पाकर और भी अनेक छात्र वहाँ से आये ।

और तो ठीक, जितने छात्र यहाँ से पढ़ाई पूरी करके घर वापिस गये, उनमे से अधिकाश ने अपने छोटे भाई, भतीजे, भानजे या अन्य रिश्तेदारों और परिचितो को यहाँ पढ़ने की न केवल प्रेरणा दी बल्कि भेजा भी ।

आज तक यहाँ पढ़े छात्रो मे शायद ही कोई ऐसा विद्यार्थी हो जिसने अपने नजदीकी रिश्तेदार एव भाई, भतीजो और भानजों से किसी न किसी को प्रवेश दिलाने का प्रयास न किया हो ।

नब्बे छात्रो मे बीस के भाई-भतीजे आदि रिश्तेदार तो यहाँ अभी भी पढ रहे हैं । अब तक विगत दस वर्षों मे कुल एक सौबीस छात्र यहाँ से विद्वान बनकर निकले, जिनमे चालीस छात्र ऐसे थे, जो परस्पर या तो भाई-भाई थे या चाचा-भतीजे या फिर मामा-भानजे थे । शेष छात्र भी परस्पर अडौसी-पडौसी, मित्र-मित्र या जान-पहचान वाले ही थे । जो एक-दूसरे की प्रेरणा पाकर ही यहाँ आये थे ।

यदि वे यहाँ सतुष्ट न होते तो भला वे उन्हें यहाँ आने की सलाह और प्रेरणा क्यों देते ?

इस उत्तर से डॉक्टर दम्पति पूर्ण संतुष्ट हो गये थे और उन्होंने राजू के यहाँ प्रवेश कराने का मानस बना लिया था । उनके इस निर्णय से राजू भी मन ही मन खूब प्रसन्न था । •

१६

"पुण्योदय से प्राप्त सयोगों की अनुकूलता में जो व्यक्ति जितना हर्षित होता है, प्रसन्न होता है; पापोदयजनित प्रतिकूलताओं में उसे उतना ही अधिक दुःख होता है, खेद होता है । वस्तुतः अनुकूल-प्रतिकूल सयोगों में तत्वज्ञान के बल से समभाव रखना, साम्यभाव से तटस्थ रहना ही सुखी होने का सच्चा उपाय है ।"

इस तथ्य से अनभिज्ञ सेठ सिद्धोमल ने यद्यपि अपने प्रिय पुत्र सजू से सबध विच्छेद की घोषणा करके सपत्ति तो बचा ली थी, पर इससे उनकी विपत्तियो का अन्त नही हुआ था, विपत्तियाँ कम भी नहीं हुई थी, बल्कि विपत्तियाँ तो और अधिक बढ़ गई थी, क्योकि जिसे बारह वर्ष की कठिन साधना के बाद बडी दुर्लभता से पुत्र का मुँह देखने को मिला हो, उसका हर्षित होना तो स्वाभाविक था ही, पर जिसे उसी इकलौते दुर्लभ प्रिय पुत्र का परिस्थितिवश सदा के लिए सबध विच्छेद करना पडा हो, उसके दु ख का भी क्या ठिकाना ?

सेठ सिद्धोमल के दुःख का कोई पार नही था, क्योंकि ऐसी दुर्लभता से प्राप्त पुत्र से सदा के लिए सबध विच्छेद करके उसे दर-दर की ठोकरें खाने को छोड देना कोई सहज बात नहीं थी । कितने अन्तर्बाह्य सघर्ष करने पडे थे उन्हे ? छाती पर पत्थर रखकर जिसने यह कार्यवाही की होगी, उसके दिल पर क्या बीती होगी ? यह या तो भुक्तभोगी ही जान सकता है या फिर सर्वज्ञ भगवान ।

'जिसके पांव फटी न बिंबाई, वह क्या जाने पीर पराई ।'

सजू की माँ के तो आज तक आँसू ही नहीं थमे थे, पिताजी भी कम दुःखी नहीं थे । यद्यपि स्त्रियो की तरह उनके आँसू बाहर नहीं

टपक रहे थे, पर वे भी आँसू पी-पी कर ही अपनी अशांति की आग बुझा रहे थे ।

बिना कारण अपने शरीर का उपयोगी अग काटकर कौन फेंकना चाहेगा ? पर यदि कोई अग सड गया हो और निरंतर मौत के मुँह मे ले जा रहा हो, उस अग के कट जाने से कितना भी दु ख क्यों न हो ? उसे तो बिना मीन-मेख किए तुरत कटवाना ही पडता है। उसके सिवाय जीवित रहने का अन्य कोई उपाय भी तो शेष नहीं है। ऐसी स्थिति मे कोई करे तो करे भी क्या ? ठीक यहि स्थिति सेठ सिद्धोमल की हो गई थी । उनका पुत्र सजू उनकी बालमनोविज्ञान विषयक अनभिज्ञता के कारण ही तो विद्रोही हुआ था। इसका उन्हें भी बहुत अफसोस था, पर अब वे करें तो करें भी क्या ? उन्हें कुछ समझ मे नही आ रहा था ।

× × ×

उनकी इस छोटी-सी नासमझी का इतना बडा दड देने पर भी उनके भाग्यविधाता को अभी सतोष नहीं हुआ था । सो आये दिन पुलिस की परेशानियाँ अलग झेलनी पड रही थी । पुलिस को तो मानों चुगने के लिए हरा-भरा चनो का खेत मिल गया था, जिसे मन चाहा चोंटें जाओ और चुगे जाओ । जब भी मन चाहे सेठ सिद्धोमल की छाती पर बैठकर मनमाना होरा भून-भून कर खाओ ।

पुलिस के सिपाहियो को जब कही कोई काम नहीं दिखा या हाथ तग हुआ तो आ धमके सेठ सिद्धोमल के यहाँ उनके बेटे की कुशल क्षेम पूछने । जब भी जेब खाली हुई नहीं कि सबसे पहले उन्हें सेठ सिद्धोमल ही याद आते । यदि सेठ ने आनाकानी की तो दूसरे ही दिन सच्ची-झूठी रिपोर्ट बनाकर संजू थाने में पिट रहे होते और इसकी खबर उन तक जल्दी ही पहुँचा दी जाती, ताकि उसकी माँ सिर धुने और फिर उनकी तिजोरी खुले।

सजू को पुलिस के चक्कर से छुडाने के लिए अब तक वे लाखो रुपया लुटा चुके थे । उनकी इस पुत्रमोह की कमजोरी का पुलिस तो भरपूर लाभ उठा ही रही थी, समय-समय पर बिचौलिये भी सजू के सहयोग के नाम पर उनसे मुँह मागा रुपया वसूला करते थे ।

× × ×

सजू भी कौन-सा सुखी था । चारो ओर से उपेक्षित, माथे पर बदनामी का सेहरा बाधे, भूखा-प्यासा, यहाँ-वहाँ मारा-मारा फिरता । अपराधवृत्ति से ग्रसित, भयाक्रान्त, सशकित और आतकित होने से उसकी तो सूरत ही बदल गई थी । सारा शरीर काला पड गया था, कुपोषण का शिकार और दुर्व्यसनों की आदत पड जाने से बीमार भी रहने लगा था । उसका दुख नगर निवासियो से भी नही देखा जाता था । अत आये दिन लोग सेठ सिद्धोमल को समझाते थे ।

"सेठजी । क्या करोगे इस अटूट सपत्ति का ? अगले जन्म मे साथ तो जायेगी नहीं यह । पुलिस को कब तक खिलाते-पिलाते रहोगे इस तरह ? अरे किसी तरह सजू से ही समझौता कर लो । उस बेचारे का ऐसा दोष भी क्या है ? जो आपने उसे घर से ही निष्कासित कर दिया है । यह तो ककडी के चोर को कटार मारने जैसा दण्ड दे दिया आपने । अब मुसीबत के तूफानी थपेडो मे वघूले के पत्ते की तरह इधर-उधर गिरना-पडना तो उसकी नियति ही बन गयी है । अत हमारी तो यही सलाह है कि गुस्सा थूको और सजू को गले लगा लो ।"

लोगो को क्या पता था कि सेठजी स्वयं भी सजू के लिए तडप रहे हैं, अत. उनका समझाना तो स्वाभाविक ही था, सेठजी को भी उन लोगो पर क्रोध नहीं आया, उन्होंने उन्हें प्रेम से जवाब दिया —
"हाँ। भाई तुम ठीक कहते हो, मै भी इसी प्रयत्न मे हूँ कि उसकी वापसी का कोई रास्ता मिल जाये पर ।"

× × ×

सेठ सिद्धोमल को एक दिन बैठे-बैठे विचार आया कि विज्ञान भी तो कभी सजू का ही साथी था । उसके बारे मे भी तो यही सब सुनने को मिला करता था जो आज संजू के बारे मे सुनता रहता हूँ। वह कैसे सुधरा ? उसके जीवन में यह अनायास परिवर्तन कैसे आया? इस बात का पता लगाना चाहिए । काश । उसी उपाय से मेरा बेटा सजू भी सुधर जाये, यदि वह पुन सन्मार्ग पर आ जाये तो मेरा शेष जीवन भी सुख से बीत जाये और वह भी दर-दर की ठोकरें खाने से बच जाये ।"

उसके विद्रोही होने मे अकेले उसी का दोष नही है, मै भी एक कारण हूँ । भले ही मेरी भावना गलत नहीं थी, पर तरीका तो सही नही था, फिर वह तो बालक ही है, बालको मे समझ ही कितनी होती है, वे तो हरे बास की तरह होते हैं । जैसा चाहता मोड सकता था, पर मैने तो यो ही मरोड दिया उस छोटे से पौधे को, मै ही कहीं चूका हूँ । खैर । जो हुआ सो तो हो ही गया । अब उस पर पश्चाताप करने से क्या लाभ ? अब तो आगे इस दिशा मे क्या हो सकता है ? यही एकमात्र विचारणीय है ।

× × ×

इधर विज्ञान भी सोच रहा था कि – "एक दिन सजू के पिता सेठ सिद्धोमल से मिलकर यदि उन्हें संजू की परिस्थिति का ज्ञान कराया जाये तो सभवत उनका हृदय पिघल सकता है और वे उसे अपना सकते हैं ।

और सजू भी तो अब दुर्व्यसनों के भले-बुरे सब प्रकार के कटु अनुभव ले चुका है, अत उसे पलटने में भी अब अधिक समय नहीं लगेगा । यदि उसे पिता की पुन शरण मिलने की आशा दिलाई जाये और विद्या की भाँति ही किसी योग्य लड़की से रिश्ते का आश्वासन देकर उसे सद्गृहस्थ का जीवन जीने की प्रेरणा दी जावे तो वह अवश्य ही आत्मसमर्पण कर देगा ।

'जैसी होनहार होती है तदनुसार ही बौद्धिक विचार बनने लगते हैं, पुरुषार्थ भी वैसा ही होने लगता है, निमित्तादि सहायक कारण-कलाप भी स्वतः वैसे ही मिलते जाते हैं ।'

तात्पर्य यह है कि जब जैसा कार्य होना होता है, तदनुसार सभी अतरंग एव बहिरंग कारण-कलाप स्वतः मिल जाते हैं ।

संभव है सजू के और उसके माता-पिता के दुर्दिनों का अत आ गया हो। मानो इसी वजह से मेरे मन मे यह विचार इतनी उग्रता से उठ रहे हो, अत प्रयत्न करने मे कोई हानि नही हैं ।'

× × ×

एक दिन विज्ञान बडे उत्साहपूर्वक सजू की वापसी की पृष्ठभूमि की तैयारी के साथ सेठ सिद्धोमल के घर पहुँचा । उसे देखकर सिद्धोमल खुशी से उछल पडे । 'अधा क्या चाहे दो आँखे सेठजी स्वय भी विज्ञान से मिलना चाहते थे । वे उसके घर जाने की सोच ही रहे थे कि विज्ञान स्वय ही उनके घर आ गया था ।

विज्ञान को देखते ही सेठजी की तो केवल आँखे ही डबडबाई, पर सजू की माँ तो जोरो से फूट-फूट कर रो पडी थी । विज्ञान उन दोनो के हृदय की वेदना बराबर समझ रहा था सो उन्हें आश्वस्त करते हुए उसने कहा – "आप दुखी न हो, सजू को राह पर लाने का एक उपाय मुझे समझ मे आया है, वही कहने मे आपके पास आया हूँ ।"

"कहो-कहो । बेटा । अवश्य कहो । तुम जो कुछ कहोगे, मै उस पर गभीरता से विचार करूँगा और जो भी सभव होगा, वह सब करने की कोशिश करूँगा ।" – सजू के पिता ने कहा ।

"मै कुछ कहूँ इसके पहले मे यह जानना चाहता हूँ कि क्या आप चाहते हैं कि संजू घर लौट आये ?" – विज्ञान ने कहा ।

सेठजी बोले – "बेटा । ऐसे कौन माँ-बाप होंगे जो अपने बेटे का भला नहीं चाहेंगे ? फिर हमारा तो अन्य दूसरा है ही कौन ?

हम तो मौत के मुँह में ही बैठे हैं, हमारा क्या भरोसा ? रहें न रहें, यह अटूट सपत्ति कल कौन संभालेगा ? क्या करें हमारी तो किस्मत ही फूट गई है। बुढ़ापे मे ये दिन भी देखने बाकी थे¨।

भाई । कोई उपाय हो तो जरूर करो, पर¨।"

"पर क्या ? सेठ साहब ! आप इस बात से निश्चिंत रहें । अब यदि आयेगा तब तो कुन्दन बनकर ही आयेगा, पर लौटकर आना आसान नहीं है, क्योंकि जिसे एक बार दुर्व्यसनों और दुराचार की आदत पड जाती है, फिर उसे त्याग पाना सहज बात नही है । हाँ, एक उपाय मुझे सुझा अवश्य है, पर " विज्ञान ने कहा ।

"पर क्या ?" — सेठजी बोले ।

विज्ञान ने अपनी बात मनवाने के लहजे मे कहा — "जैसा मै कहूँ वह आप कर सकोगे ?"

"हाँ । हाँ । जो तुम कहोगे मै सब करूँगा, कहो-कहो क्या कहते हो ?"

विज्ञान ने सेठजी के परिणामो को अच्छी तरह परख लिया था, सेठजी उसकी सब बाते मानने को तैयार थे ।

विज्ञान ने कहा — "मेरे दादाश्री ने मुझे बचपन मे एक कहानी सुनाई थी, जो उस समय तो मेरे लिए केवल मनोरंजन का साधन मात्र बनकर रह गई थी, पर कल जब मैं बिल्कुल अकेला शात बैठा था, तब अनायास वह कहानी तो मुझे याद आई ही, साथ ही उस कहानी मे ही मुझे सजू को सुधारने का, उसे सन्मार्ग पर लाने का एक महामंत्र भी मिल गया । पहले मै आपको वही कहानी सुनाना चाहता हूँ ।"

"सुनाओ । सुनाओ ।। जरूर सुनाओ बेटा ।।!" — सेठजी ने कहा ।

विज्ञान ने उनमें कौतूहल उत्पन्न करते हुए कहा — "वह कहानी साधारण कहानी नहीं है, भला मेरे दादाश्री साधारण कहानी कहते ही क्यों? उसमें पूरा तत्वज्ञान भरा है — मुझे यह बात उस दिन नहीं,

आज समझ में आई है । वह कहानी और किसी की नहीं हमारी-तुम्हारी ही कहानी है, घर-घर की कहानी है ।"

सेठानी बीच मे ही उत्साहित हो बोल उठी — "अरे बेटा ! सुनायेगा भी या यों ही पहेलियाँ बुझाता रहेगा ।"

× × ×

विज्ञान ने कहानी कहना प्रारंभ किया — "एक सेठ था उसका नाम था धनदत्त । धनदत्त के केवल एक ही बेटा था जिसका नाम था श्रीकात । श्रीकात को बचपन से ही नृत्य-गान देखने-सुनने का बहुत शौक था । धनदत्त उसकी किसी भी इच्छा को दबाना नही चाहता था, उसकी हर इच्छा को पूरी करने की उसकी भावना रहती थी । यदि वह आसमान के तारे तोडकर लाने को कहता तो शायद सेठजी उन्हे लाने मे भी पीछे नही रहते । यह तो सौभाग्य ही समझो कि उसने अब तक ऐसी कोई अनहोनी इच्छा जाहिर नहीं की थी ।

नृत्य-सगीत देखते-सुनते श्रीकात को उस नृत्यागना से प्रेम हो गया और वह उस पर इतना मोहित हुआ कि अधिकाश समय वही रहने लगा । अब वह केवल रुपया-पैसा लेने के लिए ही घर आता था ।

दुर्भाग्य से वह नृत्यागना वैश्या की पुत्री थी, इसकारण श्रीकात के माता-पिता बहुत दुखी रहने लगे, क्योंकि न सेठजी उसे बहू के रूप मे अपना सकते थे और न श्रीकात उसे छोड ही सकता था तथा बेटे के प्रति उनका अनुराग और सपूर्ण समर्पण की भावना होने से वे उसका दिल भी नहीं तोडना चाहते थे, अत उनके सामने यह समस्या थी कि उसे वहाँ जाने से रोके तो रोके कैसे ?

वह नृत्यागना भी ऐसे लक्ष्मीपुत्र को आसानी से कैसे छोड दे ? सेठजी नृत्यागना से भी नहीं कह पाते, क्योंकि उन्हें भय था कि यदि हमने उस नृत्यागना से कुछ भी कहा या अपने पुत्र से उसे अलग करने की कोशिश की तो वह दुखी होगा — यह बात भी सेठ-सेठानी को इष्ट नहीं थी ।

पर्यूषण मे सुगंध दशमी के दिन सेठ धनदत्त और उनकी पत्नी धनदत्ता जिनमंदिर में दर्शन करने के लिए गये थे । वहाँ बाहर से पधारे हुए एक बहुत बडे विद्वान का प्रवचन चल रहा था । पण्डितजी ने शास्त्र तो पढ़े ही थे, आत्मा भी पढा था और लोकजीवन को भी पढ़ा था अर्थात् वे शास्त्र मर्मज्ञ तो थे ही आत्मज्ञानी भी थे और लोक व्यवहार मे भी निपुण थे।

पण्डितजी समयसार परमागम की तीसरी गाथा पर प्रवचन कर रहे थे। उन्होंने कहा – "एकत्व निश्चय को प्राप्त भगवान आत्मा ही लोक में सबसे सुन्दर है । जो एकबार उस शुद्धात्मा का दर्शन कर लेता है, उसे फिर संसार में कुछ भी अच्छा नहीं लगता ।

कहा भी है –

'जब आतम अनुभव आवे ।
तब और कुछ न सुहावे ॥'

जो एकबार दाख चख लेता है फिर उसे महुआ नहीं भाता । जिसे अमृत तुल्य मीठा पानी मिल जाय, फिर भला वह समुद्र का खारा पानी क्यों पियेगा ? जिनके घर देवांगना तुल्य गृहणियाँ हों, वे वेश्याओं के यहाँ जाकर अपना धन क्यों लुटायेंगे ?

पर अनादि काल से इन कामी-भोगी जीवों ने अपनी विवेक की आँख से कभी भगवान आत्मा को देखा ही नहीं है, इसीकारण ये विषयों में फसे है । एकबार यदि यह भेदज्ञान की आँख से उस एकत्व-विभक्त भगवान आत्मा को देख लेता तो संसार के भोगों से स्वतः विरक्त हो जाता और कर्मबंधन से मुक्त हुए बिना नहीं रहता।"

पण्डितजी बोलो जा रहे थे, सेठ धनदत्त और सेठानी धनदत्ता एकाग्र मन से सुने जा रहे थे । वैसे तो सभी श्रोता मंत्रमुग्ध थे, पर सेठजी सबसे अधिक प्रसन्न दिखाई दे रहे थे । उनका तो आज मंदिर आना ही सार्थक हो गया था, क्योंकि उन्हें प्रवचन मे पुत्र को घर वापिस लाने का महामंत्र जो मिल गया था ।

वे खुशी-खुशी घर लौट रहे थे, रास्ते में सेठानी ने उनकी प्रसन्नता का कारण पूछा ।

सेठजी ने कहा – 'अरे महाभाग । अपने से कितने बडी भूल हुई है जो आज पाँच दिन यो ही खो दिये । यदि पचमी से ही पंडितजी के इन प्रवचनों को सुनते तो हम निहाल हो जाते ।

आज के प्रवचन मे ही मुझे महामत्र मिल गया है, जिससे श्रीकात बिना किसी प्रताडना के सुधर जाएगा और किसी का भी दिल दु खाये बिना ही हमारा बेटा हमे मिल जायेगा ।'

'कहो भी तो वह महामत्र क्या है ?' – धनदत्ता ने बडी आतुरता से पूछा ।

धनदत्त ने कहा – 'कुछ नही कल ही अपने बेटे के लिए एक सर्वसुन्दर कन्या की तलाश के लिए नाई और पडितजी को बुलाकर नगर-नगर मे उद्घोष करा दिया जाये । भले ही बेटे के तौल स्वर्णमुद्राये भी क्यो न देनी पडे, पर सबसे सुन्दर कन्या के साथ बेटे की शादी करेगे ।'

'उससे क्या होगा स्वामिन् ?' – धनदत्ता ने जिज्ञासा प्रगट की।

'अरे । जब हमारा बेटा सर्वगुण सम्पन्न सुन्दरी को देखेगा तो उस बालक की भांति जो नया खिलौना देखते ही पुराना खिलौना फेंक देता है, वह स्वत ही उस नृत्यागना का परित्याग कर देगा' – सेठ धनदत्त ने खिलखिलाकर कहा ।

उपाय तो उत्तम था, कारगर भी था, पर कहने मे जितना सरल-सहज दिखता था, प्रयोग करने मे उतना आसान नही था, फिर भी **'सही दिशा में किया गया प्रयत्न निष्फल नहीं जाता'** । इस विश्वास के साथ सेठजी ने श्रीकांत की शादी करने का निश्चय कर लिया और एक सर्वगुण संपन्न सर्वांग सुन्दर तथा गीत-संगीत और नृत्यकला मे निपुण सुशील कन्या के साथ उसकी सगाई कर दी गई ।

श्रीकांत सुशील और आज्ञाकारी तो था ही, अत· उसने पिता द्वारा की गई सगाई का विरोध नहीं किया, बल्कि उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया ।

जब यह बात उस नृत्यांगना को ज्ञात हुई तो वह चिंतित हो उठी, उसे विचार आया कि श्रीकात की शादी होने के बाद जब वह उस सर्वांग सुन्दर एव सर्वगुण सम्पन्न सुन्दरी को देखेगा, उसके सम्पर्क में आयेगा तो स्वभावत यहाँ आना छोड देगा । अत उसने सोचा कि शादी अब टल नही सकती, अत ऐसा कोई उपाय करना चाहिए जिससे वह उसका मुँह ही न देखे ।

दूसरे दिन जब श्रीकांत नृत्य देखने को उस नृत्यागना के नाट्यगृह मे पहुँचा तो वहाँ उसने उस नृत्यागना को अत्यन्त उदास मुद्रा मे बैठा देखा। देखते ही उसने पूछा – 'आज तुम ऐसी उदास क्यों हो ? क्या तुमसे किसी ने कुछ कहा है ? अरे मेरे रहते तुमसे कोई कुछ नही कह सकता। जो आँख दिखायेगा उसकी आँख फोड दी जायेगी और जो अँगुली दिखायेगा उसकी अँगुली तोड दी जायेगी ।'

नर्तकी ने कहा – 'स्वामी । ऐसी कोई बात नही है, मेरी चिन्ता का विषय और कोई नहीं, आप ही हैं ।'

'मै । मै कैसे ? मुझसे ऐसी क्या भूल हुई है ?' – श्रीकांत ने कहा।

नृत्यागना ने दु खी मन से कहा – 'श्रीकात । भूल आपसे नहीं आपके पिताजी से हुई है ।'

आश्चर्यचकित हो श्रीकात ने पूछा – 'क्या कहा ? भूल और मेरे पिताजी से । असंभव ।'

नृत्यागना ने कहा – 'घबराओ नहीं, मै जो कहती हूँ उसे ध्यान से सुनो । एक ज्योतिषी आया था, वह कहता था कि – श्रीकांत की शादी जिस कन्या से हो रही है, उस कन्या का मुख देखते ही श्रीकात अधा हो जायेगा । बस यही मेरी चिंता का विषय है ।'

श्रीकात बोला – 'बस इतनी-सी बात है, ठीक है, मै उसका मुँह ही नहीं देखूगा फिर तो कोई भय नही है – अब तो ठीक है न? अब तुम प्रसन्न हो जाओ और हमे प्रसन्न करने के लिए नृत्य प्रारंभ करो।'

नर्तकी के तीर का निशाना सही जगह लगा, वह अपने लक्ष्य-बेध मे सफल हुई, अत वह प्रसन्न हो गई ।

× × ×

श्रीकात ने अपनी आँखो पर अपने ही हाथो से पट्टी बाँध ली थी। पट्टी बाधे-बाधे ही शादी हो गई, दुल्हन घर आई, एक माह बाद पीहर जाकर फिर वापिस घर आ गई, पर अभी भी श्रीकात की आँख से पट्टी नही उतरी । पत्नी को चिता हुई, आखिर बात क्या है ? कुछ दाल मे काला नजर आता है, वह भी कम बुद्धिमान नही थी, सुन्दरी तो थी ही, चतुर भी बहुत थी ।

उसने एक दिन पतिदेव से कहा – 'स्वामिन् । जब आँख पर पट्टी ही बधी है तो आप दूकान पर क्यो जाते हैं, घर पर ही आराम कीजिए?'

'नही-नहीं, दूकान जाना तो जरूरी है, आजकल एक तो वैसे ही घाटा ही घाटा हो रहा है और फिर घर बैठ गये तो ' भोलेपन से श्रीकात ने कहा ।

श्रीकात की पत्नी ने सोचा – 'इस रहस्य का पता तो लगाना ही है, अत क्यो न अपनी दासी को यथार्थ स्थिति का पता लगाने के लिए गुप्तचर के रूप मे श्रीकात के पीछे लगा दिया जाय ?'

दासी भी चतुर-चालाक थी । उसने शीघ्र ही सब यथार्थ स्थिति का पता लगा लिया ।

श्रीकात जितना स्नेह नर्तकी से करता था, अपनी पत्नी से भी उससे अधिक प्रेम करने लगा था, क्योंकि उसने भी अपने सद्व्यवहार से उसका मन मोह लिया था । उसका मुँह न देखना तो उसकी मजबूरी थी।

नर्तकी की भाँति एक दिन उसकी पत्नी ने भी श्रीकात के घर आते ही अपने हाव-भाव से उदासी प्रकट की ।

श्रीकात ने वही सवाद जो नर्तकी को उदास देखकर बोला था, पत्नी के सामने दुहराया — 'जिसने आँख दिखाई हो, उसकी आँख फोड दूगा, जिसने उगली दिखाई हो, उसकी उंगली तोड दूंगा ।'

तब पत्नी ने भी वैसे ही लहजे मे कहा — 'स्वामिन् । ऐसी तो कोई बात नहीं है । हाँ, एक ज्योतिषी आया था ।'

'क्या कहता था वह' — घबडाकर श्रीकात बोला ।

'और तो कुछ खास नहीं कहा, पर इतना अवश्य कहा कि जब तक तेरा पति तेरा मुँह नही देखेगा, तब तक उसके व्यापार में घाटा ही घाटा होता रहेगा । बस यही एक मेरी उदासी का कारण है ।'

श्रीकात बोला — 'ये ज्योतिषी भी कमाल करते हैं ।'

इसमे कमाल की क्या बात है ? जैसा उनके निमित्त ज्ञान में आया, बता दिया' — पत्नी ने कहा ।

'पर सबका मत अलग-अलग क्यों ? एक कहता है कि पत्नी का मुँह देखेगा तो अधा हो जायेगा, दूसरा कहता है कि नही देखेगा तो दिवाला निकल जायेगा, अब तू ही बता क्या करूँ ?

'एक उपाय है' — पत्नी ने गभीरता से कहा ।

'वह क्या ?' — श्रीकात ने जिज्ञासा प्रगट की ।

'खास तो कुछ नही, बस आप मुझे एक आँख से देख लो, दिवाला तो नहीं निकलेगा कम से कम । दिखने को तो एक आँख से भी उतना ही दिखता है जितना दोनो आँखो से, बल्कि निशाना लगाने में भी आसानी रहेगी' — हंसी रोकते हुए पत्नी बोली ।

"क्या बात करती है, काना नहीं हो जाऊँगा ?'

'सोच लो दिवाला नहीं निकलने देना हो, तो इतना तो करना ही पडेगा। ऐसे आँख पर पट्टी कबतक बाँधे रहोगे ? और हाँ, यह तो विज्ञान का युग है न । अत अब तो आँखे पुनर्स्थापित करने की सुविधा भी उपलब्ध है ।' — पत्नी ने कहा ।

'हाँ ! यह ठीक है', कहकर श्रीकात ने डरते-डरते एक आँख खोली तो चाँदसा मुखडा देखता ही रह गया । उसने आँख फूटने की आशका से आँख को बार-बार मिलामिलाकर देखा, पर हुआ यह कि चमडे की आँख फूटने की बजाय हृदय की आँखे, विवेक की आँखे खुल गई और पत्नी की चतुराई से नर्तकी के त्रियाचरित्र का भेद जानकर श्रीकांत बहुत प्रसन्न हुआ ।"

विज्ञान ने सेठ सिद्धोमल को यह कहानी सुनाते हुए कहा — "जिस तरह सेठ धनदत्त को पडितजी के इस प्रवचन से दुहरा लाभ मिला था। सिद्धांत समझ मे आ जाने से आत्मा का स्वरूप तो समझ में आया ही, साथ ही दृष्टान्त सुनकर, उसने भी अपने पुत्र श्रीकात की सगाई एक ऐसी सुन्दर कन्या से तय कर ली जो सर्वगुण सम्पन्न और सर्वांग सुन्दर थी । उस कन्या के सम्पर्क मे आने पर उसके सब दुर्व्यसन और दुराचार की बुरी आदते स्वत छूट गई, क्योंकि अब उसे उस सुन्दरी के सिवाय और कुछ अच्छा लगता ही नही था । ठीक इसीतरह यदि तुम भी अपने पुत्र सजू की सगाई किसी सर्वांग सुन्दर कन्या से कर दो तो उसका ध्यान भी सब जगह से हटकर एक जगह टिक जायगा ।"

सेठ सिद्धोमल यह कहानी सुनते ही बासो उछल पडे, मानो उन्हें निधि मिल गई हो । बस फिर क्या था, उन्होने भी सजू की शादी सर्वश्रेष्ठ रूप-गुण सम्पन्न कन्या से करने का निश्चय कर लिया, ताकि वह भी तथाकथित दुराचार से मुक्त हो सके । उसके लिए उन्हें जो कुछ त्याग करना पडे, वे करने को तैयार हो गये ।

इधर विज्ञान ने सजू से सम्पर्क करके उसके पिताजी के विचारो मे आये परिवर्तन की खुशखबरी सुनाकर उसे भी पुन घर लौटने के लिए राजी कर लिया । •

१७

सेठ सिद्धोमल ने सोचा – "ऐसा अखण्ड पुण्य तो बिरलों के ही होता है, जिसके फल मे सब प्रकार की अनुकूलताये एक साथ मिलती है । हम जैसे अधिकाश लोगो का तो दात-चनो जैसा खेल ही होता है । जब दात होते है तब चबाने को चने तक नसीब नहीं होते और जब पुण्य योग से सब कुछ भोग सामग्री उपलब्ध हो जाती है, तब तक आते इतनी कमजोर हो जातीं हैं कि मूंग की दाल का पानी भी नही पचता ।

ठीक यही स्थिति सजू की शादी के सबध मे घटित होती दिखाई देती है । अपने बराबरी का रिस्ता, भरपूर दहेज और सर्वांग सुन्दर कन्या – मन चाहे सभी सयोग मिलना तो सभव है नहीं, क्योंकि जिनके पास देने को भरपूर दहेज, सर्वांग सुन्दर व सर्वगुण सम्पन्न कन्या तथा सभी प्रकार की सम्पन्नता होगी, वह सजू जैसे आवारा लडके को अपनी लडकी क्यो देगा ? भले सजू मे कोई खास खराबी नहीं है, पर मैंने उससे संबध विच्छेद की घोषणा करके अपने हाथ से ही अपने पैरो पर पत्थर जो पटक लिया है । इस परिस्थिति मे यदि सुन्दर बहू चाहिए तो किसी निर्धन व्यक्ति की लडकी ही लेनी पडेगी । दहेज मिलना तो दूर, यह भी हो सकता है कि लडकी के माँ-बाप का आर्थिक सहयोग भी करना पडे । अत क्यो न अपनी ओर से ही दहेज न लेने की घोषणा करके उदार और आदर्शवादी होने का यशलाभ ही ले लिया जावे ? प्रतिष्ठा प्राप्त करने के इस स्वर्ण अवसर को यों ही खो देने में कोई समझदारी नहीं है ।"

यह विचार करके सेठ सिद्धोमल ने समाज में अपनी मित्र मंडली और अपने सब मिलने-जुलने वालो से यह कहना प्रारंभ कर दिया कि

— "देखो भाई । हम दहेज लेन-देन के तो कट्टर विरोधी है । आप भी देखो न । इस दहेज दानव के आतकवाद से आये दिन कैसी-कैसी दुःखद दुर्घटनाये सुनने और पेपरो मे पढ़ने मे आती है । बहू-बेटियों और उनके माता-पिता के साथ कैसे-कैसे अत्याचार होते हैं । अत हम तो अपने बेटे सजू की शादी मे शकुन के रूप में केवल एक रुपया और श्रीफल ही स्वीकार करेंगे । चाहे कन्यापक्ष वाला कितना ही बडा आदमी क्यो न मिले ? वह हमे कितना भी दहेज देने का प्रलोभन क्यो न दे ? पर हमे कुछ नही चाहिए ।

हम तो इस लेन-देन की परम्परा को ही जड-मूल से उखाडकर फैंक देना चाहते है, बिल्कुल ही खत्म कर देना चाहते हैं । ताकि 'न रहे बास न बजे बाँसुरी' । कोई कितना भी धन सम्पन्न क्यो न हो ? पर वह मुँहमागा दहेज देकर भी वरपक्ष को सतुष्ट नही कर सकता । भला ईंधन अग्नि को कभी तृप्त कर सका है ? जिसतरह ईंधन पाकर अग्नि और अधिक भभक उठती है, इसीतरह आशा रूपी अग्नि धनादिक भोग सामग्री पाकर तृप्त होने के बजाय और अधिक भभकती है ।

भाई ? हम तो इस पक्ष मे भी नही हैं कि सजू की ससुराल किसी बडे घर मे ही हो । कन्यापक्ष की आर्थिक स्थिति साधारण भी हो तो हमे कोई परेशानी नही होगी । धन की हमारे पास भी क्या कमी है, जो हम धन के लिए दूसरो का मुँह देखे । पराया धन का आना तो उस बरसाती नदी-नालों में आए गंदे — मटमेले पानी की तरह होता है, जो इधर से आया उधर बह गया, न वह कभी किसी के पीने के काम आता है और न स्थायी रूप से टिकता ही है । प्यास बुझानेवाला पीने का शुद्ध पानी तो उन कुओं से ही उपलब्ध होता है, जिनमें जमीन के अन्दर जलस्रोतों से निरन्तर निर्मल जल आता रहता है ।

अरे भाई । हम तो उन लोगो मे से हैं कि यदि जरूरत हुई तो कन्यापक्ष का भी तन-मन-धन से — हर तरह से पूरा-पूरा सहयोग करने को तैयार हैं । पर कन्या सर्वगुण सम्पन्न और सर्वांग सुन्दर होनी चाहिए ।"

इसप्रकार सेठ सिद्धोमल ने समाज मे और अपनी मित्र-मडली मे लम्बे-लम्बे वक्तव्य देकर आदर्शवादी बनने की कोशिश तो बहुत की, पर वे आदर्श व्यक्ति बन नही पाये । उनके इस प्रस्ताव को सुनकर एक क्रान्तिकारी समाज सुधारक से नहीं रहा गया । उसने सेठ सिद्धोमल को आडे हाथों लेते हुए उन्हें अपने वचनबाण का निशाना बनाकर कहा — "मै सेठ सिद्धोमल और उन जैसे सहस्रों श्रीमन्तो से पूछना चाहता हूँ कि यदि आप लोग दहेज द्वारा मनचाहा धन लेकर वर-विक्रय नही करोगे तो तन-मन-धन से सहयोग देने के बहाने मुँहमागा धन देकर कन्याओ का क्रय करोगे, पर यह बणिक वृत्ति तुम करोगे अवश्य । विक्रय नही तो क्रय, क्रय नही तो विक्रय । तुम क्रय-विक्रय का धंधा किए बिना नही रह सकते । बनिये जो ठहरे । क्या ऐसा नही हो सकता कि क्रय-विक्रय कुछ भी न करो ?

ध्यान रहे, कन्यापक्ष को दहेज देने के लिए किसी न किसी तरह बाध्य करना जितना बडा नैतिक व सामाजिक अपराध है, बे-मेल सबधो के लिए कन्या का क्रय करना भी उतना ही बडा अपराध है, क्योंकि कन्या के क्रय की प्रथा ने ही तो अनमेल रिस्तो को प्रोत्साहित किया था, परम्परा डाली थी । साठ-साठ वर्ष के वृद्ध श्रीमन्त भी निर्धन व्यक्तियो को मुँह-माँगा धन का प्रलोभन देकर पन्द्रह-सोलह वर्ष की कन्याओ से शादी कर लिया करते थे और स्वयं दस-पाँच वर्ष में ही राम को प्यारे होकर पच्चीस-तीस वर्ष की भरी जवानी मे ही उसे वैधव्य के दु सह दु ख भोगने को छोड जाते थे । बेचारी वे विधवाये जीवनभर हिरणी की भाँति दीन-हीन बनी कामियो की कुदृष्टि से अपने

को बचाती-सकुचाती कुटुम्बियो से उपेक्षित रहकर जैसे-तैसे अपनी जिन्दगी के दिन पूरे करती थीं ।

सौभाग्य से आज वह प्रथा तो नही है, पर उसके बदले वर-विक्रय का श्रीगणेश हो गया है । दोनो ही परिस्थितियो मे कन्याये ही अत्याचार की शिकार बनती रही है । विवेकशून्य समाज की कन्याओ की दुर्गति तो होनी ही थी, सो उन्हें कुए से निकाला तो बेचारीं खाई में जा गिरी ।"

दुनिया मे सब तरह के लोग होते है, जिन्हे धन की ही सर्वाधिक महिमा है, ऐसे लोगो की भी कमी नही है । ऐसे लोग धन के सिवाय अन्य गुण-दोष देखते ही नही है । जिस तरह मीठे पर मक्खियाँ और माँस पर गिद्ध मँडराने लगते है, उसीतरह सेठ सिद्धोमल के पास भी अनेक सुन्दर से सुन्दर कन्याओ के प्रस्ताव आने लगे ।

जबतक धन का लालच और बडे लोगों से चिपकने की आदत नहीं जायेगी, तबतक न वर-विक्रय रुकेगा और न कन्या-क्रय पर ही रोक लग पायेगी । कन्या-क्रय और वर-विक्रय ये दोनों ही बे-मेल सबंधों को प्रोत्साहित करते है ।

सयोग से सजू के लिए अनेक रिस्तो मे एक ऐसी लडकी का रिस्ता भी आया, जिसके पिता सजू की वास्तविक योग्यता और उसकी वर्तमान परिस्थिति से परिचित थे एव उसको वर्तमान स्थिति मे पहुँचाने मे केवल उसके पिता को ही उत्तरदायी मानते थे । वह कन्या भी सजू के व्यक्तित्व से सुपरिचित और प्रभावित थी । इधर सजू के लिए भी यह रिस्ता अपरिचित नही था । वह भी इस रिस्ते से प्रसन्न था । पर दोनो पक्षो मे इतना वैचारिक मतभेद अवश्य था कि सजू के पिता अपनी घोषणानुसार केवल एक रुपया और नारियल के सिवाय कुछ नही लेना चाहते थे और कन्यापक्ष का यह आग्रह था कि वह अपनी हैसियत और परम्परानुसार स्वेच्छा से जो भी उपहार अपनी बेटी और होने वाले जमाई को देगा, वह वरपक्ष को स्वीकार करना ही होगा । तथा हमारे घर पर पधारे

बरातियो का स्वागत-सम्मान करना और यादगार के रूप मे या शादी की स्मृति स्वरूप दी गई छोटी-मोटी भेट भी बरातियो को स्वीकार करनी ही होगी ।

कन्यापक्ष का कहना था कि "परम्परागत प्रत्येक पुरानी बात बुरी ही होती हो, गलत ही हो, यह बात भी नहीं है और प्रत्येक नवीन बात सही ही हो, भली ही हो – यह भी कोई नियम नहीं है । वस्तुतः अति ही सर्वत्र बुरी होती है । इसीलिए किसी मनीषी ने ठीक ही कहा है कि 'अति सर्वत्र वर्जयेत् ।"

कन्या के पिता ने आगे कहा – "शादी-विवाह के बहुत से रीति-रिवाज और परम्पराये बहुत अच्छे होते हैं, हमे उन्हें तोडना भी नही चाहिए। पर अविवेक के कारण आज दोनो पक्षो मे हो रही अति से अनेक अच्छे रीति-रिवाज और परम्पराये भी बदनाम हो गई है । उनमे सबसे अधिक बदनामी दहेज को मिली है ।

वस्तुत दहेज का परम्परागत रिवाज बुरा नहीं था । बल्कि यह एक अच्छी परम्परा थी । यह कभी किसी बुद्धिमान व्यक्ति की सूझ-बूझ का सुखद परिणाम रहा होगा । पर आज तो इसका स्वरूप ही बदल गया है, विकृत हो गया है । यह पहले जितनी सुखद थी, आज उससे कहीं बहुत अधिक दुःखद बन गई हैं । उस दुःखद स्थिति के मूल कारणों को न देखकर कुछ लोग दहेज जैसी पवित्र परम्परा का ही विरोध करने लगे हैं । दहेज को ही कोसने लगे हैं । ऐसे लोग दहेज का सही स्वरूप, अर्थ व उसका मूल प्रयोजन नहीं जानते । दहेज वस्तुत कन्या के माता-पिता, भाई-भाभी, बंधु-बान्धव, कुटुम्ब-परिवार और रिस्तेदारों द्वारा अपनी-अपनी शक्ति और रुचि के अनुसार प्रेमपूर्वक सहर्ष दिया गया वह उपहार है, जिसे प्रदान कर वे प्रसन्न होते हैं कृतार्थ होते है । इसमें परस्पर प्रेम और सहयोग की भावना भी निहित होती है ।

इस परम्परा को प्रचलित करने के पीछे एक पवित्र उद्देश्य यह भी रहा होगा कि जिन लडके-लडकियों को परिवार और समाज के लोग वर-वधू के रूप में गृहस्थ जीवन में प्रवेश कराते है, उनकी प्रारंभिक या प्राथमिक आवश्यकताओं को पूरा करने का उत्तरदायित्व भी तो उनके परिवार व समाज का है । अत सभी घर-कुटुम्ब के लोग, रिस्तेदार, पंच और समाज के सब लोग मिलकर अनेक नेग-दस्तूरों के रूप में कुछ न कुछ दैनिक आवश्यकता की वस्तुयें देकर एक नया घर बसाते हैं ।

आपने देखा होगा दहेज मे क्या-क्या दिया जाता है ? रसोई के बर्तन, शयनकक्ष का सामान, बैठक का फर्नीचर, पहनने-ओढने के वस्त्र, सामान्य गहने आदि । व्यवहार व आशीर्वाद के रूप मे नगद रुपया भी अनेक लोग देते हैं, जो पारस्परिक व्यवहार के रूप मे शादी-विवाह एव जन्मदिनो के अवसरो पर वापिस भी हो जाता है ।

जिसतरह मेहमान को मेजवान अपनी परिस्थिति के अनुसार उत्तम से उत्तम भोजन बनाकर प्रेमपूर्वक मना-मनाकर परोसता है, पर मेहमान की इज्जत और प्रतिष्ठा इस बात मे ही है कि वह कभी कुछ अपने मुँह से माँगता नही है । इसी मे होती है दोनो पक्षो की शोभा । मेहमान सोचता है –

रूखी अरु आधी भली, जो परसे मन लाय ।
परसत मन मैला करे, तो मैदा जर जाय ।।

ठीक यही स्थिति दहेज के सदर्भ मे समझना चाहिए । अत जो दहेज मागेगा, मै उसे तो अपनी कन्या दूँगा ही नही, पर जो मेरे द्वारा प्रेमपूर्वक दी गई भेट को स्वीकार नहीं करेगा, उसे भी मै अपनी कन्या देना पसन्द नही करूँगा, क्योकि बिल्कुल कुछ भी दहेज स्वीकार न करना भी कन्यापक्ष का अपमान है ।

हमारी जो लेन-देन की विशुद्ध परम्परायें हैं, उनका निर्वाह तो होना ही चाहिए । वस्तुतः देखा जाए तो दहेज कोई समस्या नहीं,

समस्या है दहेज की मांग करना, दहेज का सौदा करना, दहेज देने के लिए कन्यापक्ष को येन-केन-प्रकारेण बाध्य करना ।

दहेज देने-लेने का व्यवहार तो सदा से है और रहेगा । वह कोई अनुचित भी नहीं है । विरोध दहेज का नहीं, दहेज प्रथा का होना चाहिए । दहेज देने एवं लेने को अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाना ठीक नहीं है ।

कुछ लोग अधिक दहेज मिलने में अपनी इज्जत समझते हैं तो कुछ बिल्कुल भी दहेज न लेने में, स्वीकार न करने में अपनी इज्जत समझते है, पर वे दोनों ही प्रकार के लोग भूल में हैं, वस्तुस्थिति से अनभिज्ञ है ।"

× × ×

कन्या के पिता के ये आदर्श विचार सुनकर सेठ सिद्धोमल भी उनके विचारो से सहमत हो गये । दहेज के कारण और निवारण पर अपने महत्त्वपूर्ण विचार प्रस्तुत करते हुए कन्या के पिता ने कहा – "आज शायद ही कोई लेखक, कवि, कहानीकार और वक्ता बचा हो, जिसने दहेज के विरोध मे कभी न कभी अपनी कलम या जबान न चलाई हो, पर उनमे ऐसे बहुत कम होगे जो उसकी तह तक पहुँचे हो । अधिकाश तो केवल वरपक्ष को कोसने मे ही अपने कर्त्तव्य की इति-श्री मान लेते है ।

पर क्या ऐसा वर्गीकरण सभव है कि अमुक-अमुक व्यक्ति वरपक्ष के है और अमुक कन्यापक्ष के ? क्या वे सभी व्यक्ति, जिन्हें आप आज वरपक्ष का कह रहे हैं, कभी भी कन्यापक्ष के नही रहे होंगे या आगे कभी कन्यापक्ष के नहीं रहेंगे । अरे, जिनके घर मे एक लडका एवं एक लडकी है, दोनो शादी लायक हैं । आप ही बताओ । उन्हें हम किस पक्ष का मानें ? क्या वह एक ही व्यक्ति दोनों पक्ष वाला नहीं है ? और यह एक-दो घर नहीं, घर-घर की कहानी है ।

ऐसी स्थिति मे यह वर्गीकरण कैसे सभव है ? इसतरह वरपक्ष को गालियाँ देकर क्या हम स्वय को ही नही कोस रहे हैं । पर हम ऐसा नही मान पाते । वरपक्ष का बनते ही पता नही हम मे वह अकड कहाँ से आ जाती ? वे क्षारतत्त्व कहाँ से पैदा हो जाते हैं कि हम किसी को कुछ समझते ही नही है ? उस समय हम भूल जाते है कि यदि इनके स्थान पर हम और हमारे स्थान पर ये होते तो हम से यह सब सभव हो पाता, जिन असभव बातो की हम इनसे अपेक्षा रख रहे हैं ?

जो बाते आपको आज कन्यापक्ष का होने से बुरी लगती है, वही बाते कल वरपक्ष का बनते ही अच्छी क्यो लगने लगती है ? क्या इस दिशा मे कभी सोचा है ?

यदि नही, तो यह भी एक विचारणीय बात है — इतना विवेक जागृत होते ही दहेज कोई समस्या नही रह जायेगी ।

फिर हमे वह सिद्धान्त याद आ ही जाना चाहिए कि "आत्मन' प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत', जो दूसरों की बात या व्यवहार हमें अच्छा न लगे, वैसी बात या व्यवहार हम दूसरों से न करे ।"

इसप्रकार सजू के होनेवाले श्वसुर साहब के विचारो से प्रसन्न होकर सेठ सिद्धोमल उनकी बात से सहमत हो गये और दोनो की राजी से सजू का विवाह एक आदर्श विवाह के रूप मे अत्यन्त सादगी के साथ दिन मे सम्पन्न हुआ । सहभोज मे कोई भी अभक्ष्य वस्तु नही बनाई गई ।

कन्या के पिता ने अपने बेटी-जमाई को दैनिक आवश्यकता की वस्तुओ मे जो कुछ दिया सो तो दिया ही, एक गोदरेज की अलमारी भर के चारो अनुयोगो के शास्त्र भी उपहार मे दिए तथा बारातियो को भी इक्यावन रुपये की पुस्तको का एक सेट भेट मे दिया ।

एक आदर्श विवाह से वरपक्ष व कन्यापक्ष के सभी लोग तो प्रसन्न थे ही, समाज के गणमान्य व्यक्ति भी प्रसन्न थे । सभी इस विवाह

की प्रशसा कर रहे थे और कह रहे थे कि हम सबको भी इसीतरह के आदर्श विवाहो को प्रोत्साहित करना चाहिए ।

अभी हो रहे आदर्श विवाह जो निर्धनता के प्रतीक बनते जा रहे है, उनमे भी इसीतरह का सुधार अपेक्षित है, अन्यथा वह योजना लम्बे काल तक नहीं चल सकेगी । ●



१८

"प्रशंसा और पुरस्कार एक ऐसी संजीवनी है, जो अनजाने ही अन्तरात्मा में नवीन चेतना का संचार कर देती है । यह एक ऐसा टॉनिक[1] है, जिसके बिना व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास ही अवरुद्ध हो जाता है । वस्तुत यह मानवमात्र की वह मानसिक खुराक है, जिसके बिना मानव में काम करने का उत्साह उत्पन्न ही नहीं होता। जिस तरह मनुष्य का शरीर संतुलित भोजन के अभाव में रोगी हो जाता है, कमजोर हो जाता है, उसीतरह संतुलित प्रोत्साहन व प्रशंसा की कमी के कारण मानव की कार्यक्षमता कम हो जाती है ।

प्रशंसा व प्रोत्साहन एक ऐसी रामबाण अचूक औषधि है, जो हताश, हतोत्साहित व निरुत्साहित मानवों के मनों में आशा, उमंग व उत्साह भर देती है । प्रशंसा की खुराक देकर आप एक भूखे-प्यासे व्यक्ति से भी मनचाहा कठिन से कठिन और हीन से हीन काम करा सकते है ।

आये दिन होनेवाले स्वागत समारोह, अभिनन्दन-पत्रो और प्रशसा-पत्रो का समर्पण एव उपाधियों व पुरस्कारो का वितरण तथा आभार प्रदर्शनो के आयोजन निरर्थक नहीं है, इन सबके पीछे यही मनोवैज्ञानिक तथ्य काम करता है ।"

इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को ध्यान मे रखकर ही आचार्यश्री ने उस दिन अपने प्रवचन मे विज्ञान के स्वाध्याय की प्रशंसा की थी, जिसे सुनकर वह मन ही मन भारी प्रसन्न था । अब उसका उत्साह द्विगुणित हो गया था । फलस्वरूप उसने अपने स्वाध्याय को तो नियमित और व्यवस्थित

---

१ मानसिक एवं शारीरिक क्षतिपूर्ति करनेवाले बलदायक एवं मनोबलवर्द्धक पोषक तत्त्व।

किया ही, साथ ही तत्त्वप्रचार की नई-नई योजनाएँ बनाने में भी वह सक्रिय हो गया ।

आचार्यश्री द्वारा प्रशसा रूपी जल के सीचने से उसकी मानस वाटिका पल्लवित पुष्पित हो हरी-भरी होने लगी थी ।

× × ×

दूसरे दृष्टिकोण से देखा जाय तो प्रशसा पाने और यश खाने की आदत एक बडी भारी मानवीय दुर्बलता भी है, जिसका चतुर, चालाक व वाक्पटु व्यक्ति दुरुपयोग भी कर लेते है । स्वार्थी लोग इस मानवीय कमजोरी को पहचान कर झूठ-मूठ प्रशसा करके अपने स्वार्थ सिद्ध करने के प्रयास भी करते हैं ।

यह एक ऐसी विश्वव्यापी बीमारी भी है, जो औरो की तो बात ही क्या, क्वचित्-कदाचित् बडे-बडे साधु-सन्तो तक मे भी देखी जा सकती है और इससे बचना असभव नही तो कठिन तो है ही । अत यश की भूख और प्रशसा की प्यास बुझाते समय प्रशसक के हृदय की पवित्रता की पहचान और तदनुसार अपनी योग्यता का आकलन एव आत्म-निरीक्षण तो कर ही लेना चाहिए ।

सज्जन बुद्धिमान व्यक्ति वह है, जो इसका उपयोग व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के लिए एक चतुर वैद्य की तरह इसप्रकार करता है कि किसको/कब/कितनी मात्रा में प्रशसा की खुराक दी जाय ? जो उसके सर्वागीण व्यक्तित्व के विकास में सहायक हो सके ।

इस सबध मे प्राय होता यह है कि व्यक्ति इसके मूल उद्देश्य को दृष्टि से ओझल करके या तो अपने-पराये के संकुचित दृष्टिकोण के कारण 'अन्धा बाँटे रेवडी, चीन-चीन कर देय' वाली कहावत चरितार्थ करने लगता है । अथवा स्वय कुछ सोचे-समझे बिना, देखा-देखी 'भेडचाल' चल देता है ।

रवीन्द्रनाथ टैगोर के विदेशों में हुए सम्मान से प्रभावित हो जब भारतीय विश्वविद्यालय ने उन्हें 'डाक्टरेट' की उपाधि से सम्मानित करने

का आमत्रण दिया तो उन्होने 'टू मच लेट' कहकर उनके सम्मान को अस्वीकार कर दिया था ।

ऐसा करके उन्होने कोई नाराजी प्रगट नही की थी, बल्कि वे उन्हें यह सिखाना चाहते थे कि – 'भरे पेट में अमृत पान कराने के बजाय भूखे पेट को समय पर दो रोटियाँ देना बेहतर है ।'

इन्ही सब बातो को ध्यान मे रखकर आचार्यश्री ने विज्ञान को ठीक समय पर प्रोत्साहित किया था । प्रोत्साहन पाकर विज्ञान ने एक दिन साहस बटोरते हुए शका-समाधान के समय णमोकार मत्र की कथाओ से सबधित चर्चा को पुन उठाते हुए निवेदन किया कि – "महाराज। णमोकार महामत्र सबधी पुराणो मे आयी कथाओ के सदर्भ मे मेरा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि 'दृढसूर्य' चोर ने दुस्सह दुःख भोगते हुए जल की आशा से णमोकार मत्र का उच्चारण किया, फिर भी वह उस मत्र के प्रभाव से देवपर्याय को प्राप्त हुआ, सो ऐसा कैसे सभव है ? क्या सक्लेश भावों के साथ तथा लौकिक कामना से किये गये णमोकार मत्र का उच्चारण का फल स्वर्ग की प्राप्ति हो सकता है ?"

आचार्यश्री विज्ञान के तार्किक चिन्तन और गहन अध्ययन की पुन प्रशसा करते हुए बोले – "स्वाध्याय तो कहते ही उसे हैं जिसमे विचार मथन हो । जिसतरह दही को विधिवत बिलोए बिना मक्खन हाथ नही आता, उसीप्रकार वस्तुस्वरूप का स्याद्वाद शैली से विधिवत मन्थन किए बिना तत्त्व हाथ नही आता ।"

यद्यपि शका-समाधान का समय समाप्त हो चुका था, फिर भी उपर्युक्त शका का समाधान सुनने को सभी श्रोता उत्सुक थे, परन्तु समयाभाव के कारण उस दिन समाधान करना सभव नही था ।

श्रोता भी यही सोच रहे थे कि महाराज समय के पाबन्द है, अत अब कल तक तो प्रतीक्षा करनी ही पडेगी । उधर उस रात आचार्यश्री के चिन्तन का विषय भी केवल विज्ञान की तत्त्वचर्चा ही बनी रही । सके आगम पर आधारित एव युक्तिसगत प्रश्नो ने महाराजश्री को समाधान

करने के लिए विवश तो किया ही, उसकी पैनी पकड ने उन्हें प्रभावित भी किया । इसकारण उनका अगले दिन का प्रवचन भी विज्ञान द्वारा प्रस्तुत की गई शकाओ के इर्द-गिर्द ही घूमता रहा ।

दृढसूर्य चोर की कथा से सबधित विज्ञान की शका का विश्लेषण करते हुए आचार्यश्री ने कहा – "यह कोई नियम तो है नही कि जिन-जिन को बाह्य मे दारुण दु ख होता दिखाई दे, उन सबके परिणाम भी सक्लेश रूप ही हो, विशुद्ध भी तो हो सकते हैं । सम्यग्दृष्टि नारकी जीवो को ही देखो न ? नरको मे बाह्य सयोगो की कैसी प्रतिकूलता है ? निरन्तर अनन्त दु ख, एक क्षण को भी चैन नही, फिर भी सम्यग्दृष्टि जीव समता रस का ही पान किया करते है ।

इस सबध मे कविवर दौलतरामजी की वे पंक्तियाँ स्मरणीय हैं, जिनमे उन्होने सम्यग्दृष्टि की प्रतिकूल परिस्थितियो मे समताभाव से रहने का चित्रण किया है । वे कहते हैं –

चिन्मूरत दृग धारिन की मोहि, रीति लगत कछु अटापटी ।
बाहर नारकिकृत दु:ख भोगें, अन्तर समरस गटागटी ॥

इसप्रकार दारुण दु ख मे भी विशुद्ध परिणाम रह सकते है । इसका दूसरा ज्वलन्त प्रमाण हमारे सामने पाँच पाण्डवो का है । यदि बाहर के दारुण दु ख देखकर उनके अन्तरंग परिणामो को सक्लेशरूप ठहराया जाएगा, तब तो फिर उनमे से तीन को मोक्ष प्राप्त होना और दो का सर्वार्थसिद्धि मे जाने की बात ही विवाद मे पड जायेगी, जो निर्विवाद रूप से सर्वज्ञ देव द्वारा कथित आगम सिद्ध तथ्य है ।

देवपर्याय की प्राप्ति भी बिना विशुद्ध परिणामो के सभव नही है, अत दृढ़सूर्य चोर के परिणाम णमोकार मंत्र का निमित्त पाकर अपनी तत्समय की योग्यता से नियम से विशुद्ध हुए थे, अन्यथा उसे देवगति में जाना कैसे संभव है ?

उक्त कथा मे भी इतना ही तो लिखा है कि दुस्सह दु ख भोगते हुए भी उसने णमोकार मत्र के पढ़ने से देवगति प्राप्त की । यह कहाँ लिखा कि सक्लेश परिणाम करते हुए भी स्वर्ग गया ?"

अपने प्रवचन के विषय को आगे बढाते हुए मुनिश्री ने विज्ञान को ही लक्ष्य करके कहा – "विज्ञान । तुम्हारी दूसरी शका यह है कि पानी पीने की कामना से णमोकार मंत्र का जाप करनेवाले को स्वर्ग की प्राप्ति कैसे हो सकती है ?

यह शंका भी अपनी जगह बिल्कुल सही है, पानी ही क्या ? किसी भी लौकिक कामना से की गई पंचमेरष्ठी की उपासना तीव्रकषाय होने से पापभावरूप ही है । फिर भी दृढसूर्य चोर को जो स्वर्ग की प्राप्ति होने का उल्लेख पुराणों में है उस संदर्भ में यह विचारणीय है कि –'क्या ऐसा नहीं हो सकता कि णमोकार मंत्र के उच्चारण करने से दृढसूर्य चोर का ध्यान प्यास जनित पीडा या दारुण दुःख से हटकर पंचपरमेष्ठी के स्वरूप पर चला गया हो और भली होनहार के कारण उसे अपने चौरकृत्य पर पश्चाताप के साथ णमोकार मंत्र की आराधना के फलस्वरूप विशुद्ध परिणाम हो गये हों, जिनका फल साक्षात् स्वर्ग ही है ।

उसकी अन्तरग परिणति विशुद्ध हो जाने पर भी बाह्य दृष्टि से देखनेवालो ने तो यही देखा होगा अथवा उन्हे तो यही दिखाई दिया होगा कि वह बेचारा प्यास से तडप रहा है, ओठ सूख रहे है, ओठो पर जीभ फेर रहा है, साथ ही णमोकार मत्र पढ़ रहा है ।' यह दृश्य देखकर तो यही कहा जायेगा या अनुमान लगाया जायेगा कि उसने जरूर पानी के लिए ही णमोकार मत्र पढा होगा ।

कविवर बनारसीदास के साथ भी तो ऐसा ही घटित हुआ था । जब मरणतुल्य वेदना के बाद भी उनके प्राण नहीं निकले तो लोगो ने यह कहना प्रारंभ कर दिया कि – 'पता नही बेचारे के प्राण कहाँ मोह-ममता मे अटक रहे हैं ? किन्तु जब लोगो की यह चर्चा उनके कान मे पडी तो उन्हे यह लिखकर बताना पडा कि – अरे भाई । ऐसी बात नहीं है । मैने तो ज्ञानरूपी फरसे से अपने मोह-राग-द्वेष आदि सभी कर्म-शत्रुओ को मार दिया है । अब मै इस ससार से सदा के लिए जा रहा हूँ, मुझे अब यहाँ पुन लौटकर नही आना है ।

देखिए उन्ही के शब्दो मे – अर्द्धकथानक मे वे लिखते हैं –

'ज्ञान कुतक्का हाथ, मारि अरि मोहना ।
प्रगट्यो रूप स्वरूप, अनन्त सु सोहना ॥
जा परजै को अन्त, सत्य कर मानना ।
चले बनारसिदास फेर नहीं आवना ॥'

अत दृढ़सूर्य का बाहरी दारुण दु ख देखकर यह शंका करना उचित नही है कि उसने पानी की कामना से ही णमोकार मत्र जपा था, फिर भी स्वर्ग की प्राप्ति हो गई । यदि पानी की कामना से मत्र का जाप किया होता तो नियम से स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती ।

तुम्हारी मान्यतानुसार अर्थ करने से अनर्थ यह होगा कि लोग लौकिक कामना से ही धर्मकार्य करने लगेगे, तब फिर तो निष्कामभक्ति की भावनाये समाप्त हो ही जावेगी ।

यदि कदाचित् कही ऐसा स्पष्ट लिखा भी मिल जाय तो प्रयोजन एव प्रसग को दृष्टि मे रखकर नयार्थ व मतार्थ से ही उसका समाधान करना होगा ।"

इस प्रकार मुनिश्री ने विज्ञान की शकाओ का जो समाधान किया, उससे विज्ञान तो सतुष्ट हो ही गया, अन्य श्रोता भी गद्-गद् हो गये। सभी मुनिश्री की जय बोलते हुए अपने-अपने घर ले गये । •

मै एक बात पूछता हूँ कि यदि आपको पेट का ऑपरेशन कराना हो तो क्या बिना जाने चाहे जिससे करा लेंगे ? डॉक्टर के बारे मे पूरी-पूरी तपास करते हैं । डॉक्टर भी जिस काम मे माहिर न हो, वह काम करने को सहज तैयार नहीं होता । डॉक्टर और ऑपरेशन की बात तो बहुत दूर, यदि हम कुर्ता भी सिलाना चाहते हैं तो होशियार दर्जी तलाशते हैं, और दर्जी भी यदि कुर्ता सीना नही जानता हो तो सीने से इनकार कर देता है। पर धर्म का क्षेत्र ऐसा खुला है कि चाहे जो बिना जाने-समझे उपदेश देने को तैयार हो जाता है और उसे सुनने वाले भी मिल ही जाते हैं ।

– धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ 113

१९

"क्या दिगम्बर और क्या श्वेताम्बर, सम्पूर्ण जैन समाज एकमत से णमोकार महामत्र को अपना आदर्श मत्र मानती है और सभी मत्रो मे इसको सर्वश्रेष्ठ महामत्र निरूपित करती है, क्योकि इस महामत्र मे उन अरहंत सिद्ध आदि वीतरागी पचपरमेष्ठी को नमन किया गया है, जो सबको समान रूप से मान्य एव सभी को परम-पूज्य और आराध्य है।

क्या गृहस्थ और क्या साधु-मुनि -- सभी इन्हें निर्विवाद रूप से एक जैसा ही मानते-पूजते है ।

इस कारण सभी सम्प्रदायो मे इस महामत्र की महिमावाचक अनेक पौराणिक कथाये, उपकथाये तो थी ही साथ ही समय-समय पर घटित घटानाओ के आधार पर लोक प्रचलित किंवदन्तियाँ एव भट्टारक युगीन कल्पित कथाओ की भी भरमार रही ।

यहाँ तक तो कोई बात नही थी, पर कही-कही या तो साहित्यिक दृष्टि से अतिशयोक्ति, अन्योक्ति आदि अलकारो के प्रयोगो से या फिर अनुयोग पद्धति के प्रयोजन वश अथवा किंवदन्तियो से प्रभावित होकर इन कथाओ मे बढा-चढा कर भी बहुत कथन किए गए है । जिनके सही अभिप्राय और यथार्थ स्थिति को न समझ पाने से उनके सम्बन्ध मे लोगो को भ्रान्तिया भी बहुत हुई है ।"

आचार्यश्री आज भी रात भर इन्ही सब बातो पर विचार मथन करते रहे, क्योंकि दो दिन से प्रवचनो के उपरात पूछे जाने वाले प्रश्नो मे इसी से सम्बन्धित प्रश्न अधिक आ रहे थे । आचार्यश्री ने आगम के आलोक मे काफी मथन किया था । अत उन्होने सोचा -- "क्यो न आज अनुयोग पद्धति को ही समझा दिया जाय ?"

यह सोचकर प्रवचन प्रारम्भ करते हुए उन्होने कहा – "देखो सम्पूर्ण जिनागम को चार शैलियों मे प्रतिपादित किया गया है, जिन्हें चार अनुयोग कहा जाता है । वे है द्रव्यानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और प्रथमानुयोग । सम्पूर्ण पौराणिक कथानक प्रथमानुयोग की शैली मे लिखे गये हैं । प्रथमानुयोग मे कभी-कभी प्रयोजनवश चाँटे का काम काँटे से भी निकाला जाता है ।"

मुनिराजश्री अपनी बात स्पष्ट कर ही रहे थे कि विज्ञान बीच मे ही बोल पडा – "महाराज । चाँटे का काम काँटे से कैसे निकल सकता है ? चाँटा चाँटा है और काँटा-काँटा है ।"

"देखो विज्ञान । प्रवचन के बीच मे बोलना ठीक नहीं है । क्या तुम पहली बार ही प्रवचन मे आये हो ? प्रवचन के बीच मे बोलने से प्रवचन की धारा टूट जाती है । अस्तु हाँ तो सुनो । – मै चाँटे-काँटे की कहानी कह रहा था –

"एक बालक था, वह चचल तो था ही, नासमझ भी था । वह जब देखो तभी अपनी बडी बहिन सरला से लडता-झगडता रहता था। कभी-कभी तो उसे मार-पीट भी देता था । इसकारण उसकी माँ बहुत परेशान रहती थी । कभी-कभी माँ को उस पर गुस्सा तो इतना आता कि यदि उसका वश चले तो वह चाँटो से उसकी अच्छी मरम्मत कर दे, पर माँ तो आखिर माँ ही होती है । कुछ ही देर मे उसका गुस्सा ठडा हो जाता और बात आई-गई हो जाती ।

एक दिन माँ-बेटे दोनो बाजार जा रहे थे, बेटा नगे पैर था, क्योंकि वह अपने जूते-चप्पल खो देता था । माँ करे तो करे भी क्या ? उस भुल्लकड व लापरवाह लडके को रोज-रोज कितने जूते-चप्पल पहिनाये। रास्ते मे अनायास लग गया एक काँटा । बेटा वही बैठकर रोने लगा ।

उसे रोते देख माँ को विचार आया – "आज अच्छा मौका है। जब काँटा लग ही गया तो चाँटो का काम काँटे से ही क्यो न ले लिया जाए ?"

बेटे ने रोतो-रोते माँ से पूछा – "माँ मुझे काँटा क्यो लगा ?"

माँ बोली – "बेटा तू अपनी बडी बहिन को गाली देता है न ? मारता-पीटता भी है । बस, इसी कारण तुझको काँटा लगा है ।"

बेटा बोला – "अच्छा माँ मै आज से कभी गाली नही दूँगा, फिर तो काँटा नही लगेगा ?"

माँ बोली – "बेटा । काँटा तुम जैसा पागल थोडे ही है, जो बिना बात किसी को परेशान करे ।"

उस दिन से बालक ने अपनी बडी बहिन को ही क्या सभी को मारना-पीटना और गाली-गलौज करना छोड दिया ।

यद्यपि काँटे से गाली-गलौच और मारपीट का कोई सबध नही था, तथापि माँ ने अपनी बुद्धिमानी से यदि काँटे के लग जाने मात्र से बेटे की बुरी आदत छुडा दी तो सद् अभिप्राय होने से माँ का यह कथन असत्य नहीं है । बुरी आदत छुडाने को चाँटे नही मारना पडे, चाँटो का काम उस काँटे ने ही निबटा दिया, जो कि अचानक उसे लग गया था । सही अभिप्राय होने से ऐसा करना जिस तरह लोक मे अनुचित नही माना जाता, उसीतरह मोक्षमार्ग मे भी ऐसा कथन करने की एक शैली है, जिसका नाम प्रथमानुयोग है। इस अनुयोग का मूल प्रयोजन पापी व अज्ञानी जीवो को पापाचरण से हटाने और मोक्षमार्ग मे लगाने का है । एतदर्थ कभी-कभी किसी एक के फल को किसी अन्य का भी कह दिया जाता है ।

प्रथमानुयोग मे केवल प्रयोजन की मुख्यता से कथन होता है । इस प्रकरण मे केवल इतना प्रयोजन है कि जो लौकिक कामनाओ की पूर्ति के लिए अन्य मत-मतान्तरो द्वारा पीर-पैगम्बर या रागी-द्वेषी व

अल्पज्ञ देवी-देवताओ की शरण मे चले जाते हैं । वे वहाँ जाकर गृहीत मिथ्यात्व मे न पडें, णमोकार मंत्र द्वारा पचपरमेष्ठी का स्वरूप पहचान कर वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा व उन्हीं के पथानुगामी साधुओ की शरण मे आएँ, ताकि वे गृहीत मिथ्यात्व के महापाप से बच सकें और सच्ची बात समझने के निमित्तो से दूर न हो जावे ।"

आज विज्ञान फूला नही समा रहा था, यह प्रश्न उसके मन को बहुत समय से कचोट रहा था, उसका तर्क, युक्ति व आगम के आधार पर जो समाधान मिला, उससे वह पूर्ण प्रसन्न और संतुष्ट था ।

दूसरे दिन प्रवचन से पूर्व ही अनुमति लेकर विज्ञान ने प्रसन्नता प्रगट करते हुए एक प्रश्न और किया – "महाराज । आगम मे आये परस्पर विरोधी कथनो का सामजस्य किस प्रकार सभव है ?"

इस तथ्य को समझाते हुए आचार्यश्री ने कहा – "भाई । ऊपर से परस्पर विरोधी प्रतीत होनेवाले कथन भी वस्तुत परस्पर विरोधी नही होते, क्योंकि दोनो कथनो के प्रयोजन बिल्कुल पृथक-पृथक होते हैं ।

कथाओ के माध्यम से कथाकार अज्ञानी जीवो को सन्मार्ग या मोक्षमार्ग मे लगाना चाहता है, अत स्वर्गादिक की प्राप्ति मे अनेक कारणो के होते हुए भी मोक्षमार्ग के नेता पचपरमेष्ठी मे श्रद्धा उत्पन्न कराने के लिए पचपरमेष्ठी के वाचक णमोकार मत्र को सुनने रूप निमित्त पर ही जोर देता है । अन्य कारणो को गौण कर देता है ।

कथाकार सोचता है कि यदि इस कथा को पढकर पाठक को अरहंतदेव एव आचार्य उपाध्याय व साधु परमेष्ठी पर श्रद्धा हो गई तो फिर वह उनकी आराधना भी करने लगेगा और उनकी वाणी भी सुनने लगेगा। ऐसा करने से उसे स्वत सन्मार्ग मिल जायेगा ।

इसी प्रयोजन से कथा-पुराणो मे कहा गया है कि णमोकार मत्र के श्रवणमात्र से ही उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति हुई है, अन्य कोई प्रयोजन नही है । कथाकार का अभिप्राय सही होने से कथा मे आए सभी कथन सत्य ही कहे जाते हैं, यथार्थ ही माने जाते हैं ।

पचपरमेष्ठी रूप सद्निमित्तों से दूर रहने वाले संसारी जीव ऐसा कहे बिना उन सद्निमित्तों से पास ही नहीं आते । इसी कारण णमोकार मंत्र से सम्बन्धित कथाओ मे णमोकार मत्र के स्मरणादि को ही सारा श्रेय दिया गया है और अन्य सभी अतरंग कारणो को गौण रखा गया है ।

इसके अतिरिक्त एक कारण यह भी है कि अन्य अतरंग कारण बाहर से प्रगट दिखाई ही नही देते, अत उन्हें श्रेय देना सभव भी नहीं है ।

पाडवपुराण, पद्मपुराण एव पार्श्वपुराण आदि मे भी जो यह कहा गया है कि परमेष्ठी पद मे विराजमान आत्माओं को भी सकट का सामना करना पडा, उसका भी यही प्रयोजन है कि यदि कोई निकट भव्य जीव अपनी अज्ञानमय पूर्वपर्याय मे पापाचरण या पापभाव करता है तो उसे उसका फल भोगना ही पडता है । चाहे बाद मे वह कितना ही बडा धर्मात्मा क्यो न हो जावे ? अत जिसे सकटो मे पडना स्वीकार न हो, जो दारुण दु खो से बचा रहना चाहता हो, उसे पापाचरण से तो बचना ही चाहिए न ।

दोनो ही तरह के कथानको का उद्देश्य और अभिप्राय सत् व सत्य होने से कोई भी कथन आगमविरुद्ध व परस्पर विरोधी नही है ।

यदि वस्तुत कारण-कार्य की मीमासा की जाय तब तो प्रत्येक कार्य के सम्पन्न होने मे अनेक कारण विद्यमान रहते हैं, किन्तु श्रेय केवल बाह्य निमित्त कारण को ही दिया जाता है, क्योंकि निमित्त रूप से भी किसी के द्वारा किये गये उपकार को सज्जन भूलते नही है । कहा भी है – "नहि कृतमुपकार साधवो विस्मरन्ति" ।

देखो, उन बदर, बकरा, हथिनी आदि जीवो को जो स्वर्गादि की प्राप्ति हुई, उसमे णमोकार मत्र का सुनना तो मात्र निमित्त कारण था। साथ में उन जीवों की होनहार भी वैसी ही थी तथा उनके परिणामो की विशुद्धि (कषाय की मदता) भी ऐसी हो गई थी कि उन परिणामों

से देवगति का बध हो, अन्य नरकादि गति का नहीं एव काललब्धि भी वैसी ही आ गई थी । इस कारण उसके परिणाम भी उसी जाति के हुए, जिनसे सद्गति होती है । साथ में निमित्तरूप मे णमोकार मत्र भी कान मे पड गया था और उस पर विचार करके अरहंतादि के प्रति भक्ति श्रद्धा भी हो गई थी ।

इसप्रकार जब सभी कारण मिलते हैं काम तो तब होता है, परन्तु कथन करने मे अधिकतर निमित्त की ही मुख्यता रहती है । अपेक्षाएँ भिन्न-भिन्न होती हैं । अत स्वाध्याय के समय इस बात का ध्यान रखना बहुत आवश्यक होता है कि कहाँ/किस अपेक्षा से कथन किया गया है, किसको मुख्य व किसको गौण किया गया है । ध्यान रहे, जिसे गौण किया हो, उसका निषेध नही मान लेना चाहिए ।"

आचार्यश्री के इस प्रवचन से सभी श्रोतागण प्रथमानुयोग का स्वरूप, उसके कथन करने की पद्धति और प्रयोजन जानकर मन ही मन भारी प्रसन्न हुए और प्रवचन की प्रशसा करते हुए अपने-अपने घर चले गये । • •

रुचि का माप

विषय-कषाय के पोषक उपन्यासादि को हमने कभी अधूरा नहीं छोडा होगा, उसे पूरा करके ही दम लेते हैं, उसके पीछे भोजन को भी भूल जाते हैं । क्या आध्यात्मिक साहित्य के अध्ययन में भी कभी भोजन को भूले हैं ? यदि नहीं, तो निश्चित समझिये हमारी रुचि अध्यात्म में उतनी नहीं, जितनी विषय-कषाय में है ।

— धर्म के दशलक्षण, पृष्ठ 111

२०

आचार्यश्री के सरल सुबोध शैली मे हुए आध्यात्मिक प्रवचनो ने नगर में धूम मचा दी थी । उनके प्रवचनो मे क्या अनपढ-क्या पढे लिखे, क्या बालक-क्या वृद्ध, क्या स्त्रियाँ-क्या पुरुष, क्या जैन-क्या अजैन, क्या नेता-क्या अभिनेता, – सभी समय पर पहुँच जाते थे, क्योंकि उनके प्रवचनो मे सभी को अपनी-अपनी रुचि के अनुसार तत्त्वज्ञान का लाभ मिल रहा था ।

कठिन से कठिन विषय को सरल से सरल एव रोचक ढग से प्रस्तुत करना उनके प्रवचनो की विशेषता थी ।

आज आचार्यश्री के प्रवचन का विषय णमोकार महामत्र की कथाओ के पढ़ने से उत्पन्न हुई विज्ञान की शकाओ का समाधान करना था । उन्होने सोचा – "विज्ञान जैसे और भी अनेक परीक्षा प्रधानी पाठको को ये शकाये होना स्वाभाविक है, अत क्यो न प्रवचन मे ही इस विषय को स्पष्ट कर दिया जाये, ताकि सभी का एक साथ समाधान हो जाये ।"

आचार्यश्री ने प्रवचन की पृष्ठभूमि बनाते हुए कहा – "कल विज्ञान ने प्रवचन के बाद णमोकार महामत्र के सदर्भ मे कुछ महत्त्वपूर्ण शकाओ का समाधान चाहा था, पर समयाभाव से कल वह चर्चा नही हो सकी तथा यह भी सोचा कि आप लोगो को भी सभवत ये शकाये हो सकती हैं । वैसे भी णमोकार महामत्र जैसे विषय की यथार्थ जानकारी अति आवश्यक है । अत आज के प्रवचनो मे इसी विषय पर चर्चा होगी।"

प्रवचन प्रारंभ करते हुए आचार्यश्री ने कहा – "इस णमोकार मत्र मे उन पचपरमेष्ठियों को नमस्कार किया गया है, जिनमे कुछ तो पूर्ण वीतरागी है और कुछ वीतरागता के मार्ग पर निरंतर अग्रसर हैं तथा

जिन्हे यह देखने-सुनने की फुरसत ही नहीं है कि उन्हें कौन नमस्कार कर रहा है और कौन नहीं कर रहा है ?

अरहत व सिद्ध भगवान पूर्ण वीतरागी हैं, उन्हें तो तुम्हारे नमस्कार से कोई प्रयोजन ही नही है तथा जो एकदेश वीतरागी हैं, उन आचार्य, उपाध्याय व साधु परमेष्ठी को भी किसी के नमस्कार करने न करने से कोई मतलब नहीं है ।

इस महामंत्र मे पचपरमेष्ठी को नमस्कार करने के सिवाय न तो किसी लौकिक कार्य विशेष के करने-कराने या होने की गारंटी दी गई है और न कही कोई आश्वासन ही दिया गया है । हाँ, एक यह गारंटी अवश्य दी है कि जो व्यक्ति इस महामत्र का स्मरण करेगा, उसमे कहे गये पचपरमेष्ठी के स्वरूप का बारम्बार विचार करेगा, उसके मन में उस समय कोई पापभाव उत्पन्न ही नहीं होगा । अर्थात् उसके उस समय होने वाले सब पापो का नाश (अभाव) हो जायेगा । वह परमात्मा की तरह ही बाहर और भीतर से पवित्र हो जायेगा ।

इस गारटी की सीमा भी ध्यान मे रखो, नही तो धोखा हो जायेगा। केवल इतनी गारटी है कि जब तक मन मे पचपरमेष्ठी का स्मरण रहेगा तब तक पापभाव पैदा नही होगे, आगे-पीछे की उसकी कोई गारंटी नही है, भूतकाल मे किये गये पापों का फल भी भोगना पड सकता है ?

इस महामत्र की महानता के सबध मे समय-समय पर प्रचारित कथा कहानियो से जहाँ एक ओर जैनजगत मे इसके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हुई है और जिज्ञासा जगी है, वही दूसरी ओर भ्रात धारणाये भी कम प्रचलित नहीं हुई हैं । भ्रात धारणाओं के लिए इस महामंत्र के सही स्वरूप का जितना भी अनुशीलन/परिशीलन किया जाये, कम ही है ।

देखो, अविवेक की महिमा । अविवेकियों की वणिक वृत्ति ने परमपूज्य पंचपरमेष्ठियों के साथ भी सौदेबाजी शुरू कर दी और वह भी अविश्वास की भाषा में । पहले पंचपरमेष्ठी परमात्मा इसका काम

करें, तब बाद में यह उन्हें छत्र चढायेगा, विधान करायेगा, मंदिर बनवा देगा, उनके तीर्थ की यात्रा पर जायेगा और न जाने क्या-क्या करेगा उनके लिए ? पर करेगा तब, जब पहले इसका काम हो जाएगा। क्या भरोसा भगवान का ? बाद में काम किया न किया ?"

आचार्यश्री ने भक्तो की सौदेबाजी के कुछ नमूने प्रस्तुत करते हुए आगे कहा –

श्री महावीरजी मे उल्टे हाथे लगाती हुई एक बहिन कहती है – 'हे चादनपुर के बाबा। यदि मेरे बच्चा हो गया तो मै आपको छत्र चढ़ाऊँगी और दुबारा आकर सीधे हाथे लगाऊँगी ।'

दूसरा भाई कहता है – 'यदि मै मुकदमा जीत गया तो तीर्थयात्रा पर जाऊँगा और सब तीर्थों पर पूजा-पाठ रचाऊँगा ।'

तीसरा भगत कहता है – 'यदि मेरी बीमारी ठीक हो गई तो ऐसे ठाठ-बाट से सिद्धचक्र पाठ करूँगा की लोग देखते रह जायेगे ।'

ये सब भगवान पचपरमेष्ठी के साथ सौदेबाजी नही है तो और क्या है?"

आचार्यश्री भक्तो को उनकी भूलो का अहसास कराते हुए अत्यन्त गभीरता से बोले जा रहे थे और सभी श्रोता मत्रमुग्ध से होकर अति जिज्ञासा से एकटक लगाये उनकी बात को सुन रहे थे ।

आचार्यश्री ने कहा – "ज्ञान की महिमा तो अपरम्पार है ही, पर अज्ञान की महिमा भी कम नहीं है । जिनवाणी के कथनो का सही अभिप्राय न समझ पाने से कैसी-कैसी भूले होती हैं ? स्वाध्याय करने वालो को भी इसका पूरा पता नही रहता ।

णमोकार महामत्र जैसे अनादिनिधन शाश्वत अचिन्त्य महिमावत महामत्र के साथ पता नही कैसी-कैसी घटनाये जोड़कर लोग उसकी महिमा को बढ़ाने के बजाय घटाने का काम करते हैं, लौकिक कार्यों की सिद्धि हो जाने से अलौकिक महामत्र की महिमा कैसे बढ़ सकती है ? और लौकिक कार्यों की सिद्ध तो पुण्य के प्रताप से होती है,

सीधे मत्रो के जाप जपने से नहीं । हाँ, यदि मत्र जपते हुए कषाये अत्यन्त मद रहे तो पुण्यबंध होता है।"

विज्ञान ने अब तक के अल्पकालीन स्वाध्याय मे कथा-कहानियों के माध्यम से जो पढ़ा था और विद्वानो के प्रवचनो मे जो सुना था, उसके आधार पर ही उसने कल प्रश्न पूछा था, उसका कहना था –

"पुराणो की बाते मेरी समझ मे बिलकुल नहीं आतीं । मै बहुत प्रयास करता हूँ, परन्तु समाधान मिलने के बजाये आशकाएँ ही अधिक बढती जाती है ।"

विज्ञान का मूल प्रश्न यह था कि – "क्या पुराणो की कथाओ के अनुसार णमोकार महामत्र के स्मरण मात्र से वस्तुत सब संकट दूर हो जाते है और सब पाप नष्ट हो जाते हैं ? जैसा कि पुण्यास्रव कथाकोष मे उल्लिखित इन कथाओ से स्पष्ट है –

पहली कथा मे स्पष्ट उल्लेख है कि – सुग्रीव के जीव ने बैल की योनि मे मरणासन्न दशा मे सेठ के द्वारा णमोकारमत्र सुनकर स्वर्ग प्राप्त किया था ।

दूसरी कथा मे साफ-साफ कहा गया है कि – चारणऋद्धिधारी ऋषियो के द्वारा प्रबोध को प्राप्त हुआ बदर महामंत्र णमोकार के प्रभाव से दोनो लोको मे सुख भोगकर केवली पद को प्राप्त हुआ ।

तीसरी कथा मे चर्चा आई है कि – राजा विध्यकीर्ति की पुत्री विजयश्री सुलोचना के द्वारा सुनाये गये मत्र के प्रभाव से इंद्राणी हुई।

चौथी कथा मे यह कहा गया है कि – वह बकरा, जिसे मरते समय चारुदत्त ने णमोकार मत्र सुनाया, उससे वह दिव्य शरीर वाला देव हुआ ।

पाचवी कथा में आया है कि – वे नाग-नागिनी, जिन्हें पार्श्वकुमार ने मरणासन्न दशा मे णमोकार मत्र दिया, उससे वे धरणेंद्र-पद्मावती हुए।

छठवीं कथा मे कहा है कि – कीचड मे फंसी हुई हथिनी विद्याधर द्वारा दिये गये महामत्र के प्रभाव से भवान्तर में राजा जनक की पुत्री सीता हुई ।

सातवी कथा मे यह कहा है कि – दृढसूर्य चोर शूली पर दुस्सह दुख से व्याकुल होकर यद्यपि जल पीने की आशा से णमोकार मत्र का उच्चारण कर रहा था, तब भी उसके प्रभाव से वह देवपर्याय को प्राप्त हुआ ।

अतिम आठवी कथा मे तो यहाँ तक कह दिया है कि – विवेकहीन सुभग ग्वाला उस मत्र के केवल प्रथम पद के उच्चारण मात्र से तद्भव मोक्षगामी सुदर्शन सेठ हुआ और उसने उसी भव से मुक्ति की प्राप्ति की ।

यदि वस्तुत ऐसा है तो जो प्रतिदिन नियमित रूप से त्रिकाल णमोकार मत्र का जाप करते है, पचपरमेष्ठी का ध्यान करते है, उनके जीवन मे अनेक दुख या सकट क्यो देखे जाते हैं ? अथवा जो स्वय पचपरमेष्ठी मे शामिल है, ऐसे पाच पाडवो पर ऐसा भयकर उपसर्ग क्यो हुआ ? उन्हे अगार सदृश जलते हुए लोहे के कडे क्यो पहनाये गये और पहना भी दिये तो ठडे क्यो नही हुए ?

एक नही ऐसे अनेक पौराणिक उदाहरण दिये जा सकते है, जिन्होने हृदय से पचपरमेष्ठी की आराधना की, प्रतिदिन णमोकार मत्र का जाप किया और स्वय भी पचपरमेष्ठी के पदो पर विराजमान रहे, फिर भी अनेक प्रतिकूल प्रसगो का सामना करना पडा – ऐसा क्यो हुआ ?

भावलिगी सत तद्भव मोक्षगामी सुकुमल मुनि को स्यालिनी ने खाया, सुकौशल मुनिराज को शेरनी ने खाया, गजकुमार मुनिराज के सिर पर जलती हुई सिगडी रख दी गई, राजा श्रेणिक के द्वारा मुनिराज के गले मे मरा साप डालने से मुनिराज को लाखो लाख चीटियो ने काटा, श्रीपाल को कुष्ट रोग ने घेरा, तीर्थकर पार्श्वनाथ पर कमठ ने उपसर्ग किया और मुनिराज आदिनाथ को छह माह तक प्रतिदिन लगातार आहार की चर्या पर निकलने पर भी आहार नही मिला, महासती सीता को दो-दो बार बनवास के दुख उठाने पडे, राम भी चौदह वर्ष तक वन-वन भटकते फिरे, प्रद्युम्न कुमार को अनेक सकटो का सामना करना पडा,

जीवन्धर और उनके माता-पिता रानी विजया व सत्यन्धर को मरणतुल्य कष्ट झेलने पडे, महासती मनोरमा को मजदूरी करनी पडी, सुदर्शन सेठ को सूली पर चढना पडा, सैकडो मुनियो को घानी मे पिलना पडा, अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनियो को बलि आदि मंत्रियो कृत उपसर्ग झेलने पडे । आखिर ऐसा क्यो हुआ ?

जबकि ये सब पच नमस्कार मत्र के आराधक तो थे ही, इनमे अधिकाश तद्भव मोक्षगामी और भावलिगी सत भी थे और आदिनाथ व पार्श्वनाथ तो साक्षात् तीर्थंकर भगवान की पूर्व भूमिका मे स्थित थे, फिर भी उन पर उपसर्ग क्यो हुए ?

इससे स्पष्ट है कि अकेले स्मरण से ही कार्य की सिद्धि नही होती। कार्य की सिद्धि तो अनेक कारणो से ही होती है, पर जिस कारण की महिमा बतानी होती है, उसे मुख्य करके शेष कारणो को गौण किया जाता है । वही जिनवाणी मे प्रथमानुयोग के कथन की शैली है ।

× × ×

'सब पापो के नाश' का तात्पर्य यह है कि — जबतक उसका ध्यान णमोकार मत्र पर रहेगा, तबतक उसका उपयोग अन्य इद्रिय विषयो मे या पापभावो मे जाएगा ही नही । अत पापभावो की उत्पत्ति ही नही होगी । यह सब पापो के नाश का स्वरूप है ।

दूसरी बात यह है कि — जो व्यक्ति णमोकार मत्र के माध्यम से पचपरमेष्ठी का स्वरूप भली-भाति जानकर उनका स्मरण करता है, भक्ति करता है, बहुमान करता है, वह अवश्य ही उनके द्वारा बताये गये मुक्ति के मार्ग पर चलेगा । जब वह स्वय उनके बताए गये मुक्ति के मार्ग पर चलेगा तो वह एक न एक दिन पचपरमेष्ठी पद मे शामिल भी हो जायेगा ।

ऐसी स्थिति मे वह पूर्वकृत पापो से बंधे कर्मों की निर्जरा भी करेगा। इस अपेक्षा को ध्यान मे रखकर ही णमोकार मत्र के जाप को सर्व पापों का नाश करने वाला कहा गया है ।

यहाँ कोई कह सकता है कि यदि णमोकार मंत्र का लाभ मात्र वर्तमान पापभावो एवं पापो से बचना ही है, तो वर्तमान पापो से एव पापभावो से तो हम किसी अन्य महापुरुषो के स्मरण से भी बच सकते हैं, इसमे णमोकार मत्र की ही क्या विशेषता रही ?

इसका समाधान यह है कि रागियो के चितन/स्मरण से रागभावो की महिमा ही दृष्टि मे रहेगी, वीतरागता की नही । वीतराग की महिमा आये बिना लौकिक कामनाओ का अभाव नहीं होता, अपितु कामनाओ की पूर्ति करने की कामना ही जागृत होती है, जो स्वय पापभाव है, पाप का कारण है ।

अत उन्होने कहा – "देखो एक कार्य के होने मे अनेक कारण मिलते है, तब कही कार्य सपन्न होता है । तथा अपने-अपने दृष्टिकोण से सभी कारण महत्त्वपूर्ण होते हैं । जिसप्रकार लाखो रुपयो की मशीन मे दो रुपये के स्क्रू का भी महत्त्वपूर्ण योगदान होता है । उसीप्रकार प्रत्येक कार्य मे सभी कारणो का अपना-अपना स्थान है, पर कथन मे कभी कोई कारण मुख्य होता और कभी कोई अन्य ।

उदाहरण के तौर पर हम एक ऐसे बीमार व्यक्ति को ले, जिसे अचानक हार्ट अटेक हुआ है और डॉक्टर के कहे अनुसार यदि समय पर मेडिकल हेल्प न मिलती, चिकित्सा सहायता उपलब्ध न होती, तो वह दो घटे मे ही दम तोडने वाला था, परन्तु पडौसी ने यथासमय उसे इमरजेसी वार्ड मे पहुँचाकर और होशियार डॉक्टर को बुलाकर रात मे २ बजे मेडिकल स्टोर्स खुलवाकर जान बचाने वाले के लिए अत्यन्त आवश्यक दवा की व्यवस्था कर दी, जिससे वह मरीज बच गया । इसप्रकार उस मरीज की जान बचाने मे चार कारण मिले –

एक – पडौसी, दूसरा – डॉक्टर, तीसरा – मेडीकल स्टोर वाला और चौथी – दवा ।

अब देखिये इस घटना के प्रत्यक्षदर्शियो मे से एक व्यक्ति तो पडौसी के गीत गाते हुए कहता है – पडौसी हो तो ऐसा हो । यदि वह समय पर व्यवस्था नही करता तो बेचारा मर ही जाता ।

दूसरा डॉक्टर के गीत गाता हुआ । कहता है – "काश । ऐसा होशियार डॉक्टर समय पर न मिलता तो वह बेचारा अपने जीवन से ही हाथ धो बैठता ।"

तीसरा कहता है – "अरे । यह सब तो ठीक है, परन्तु यदि वह दवाई समय पर उपलब्ध न होती तो बेचारा डॉक्टर भी क्या कर सकता था ? उस बेचारे दुकानदार की कहो, जिसने रात के दो बजे दुकान खोलकर दवा दे दी ।"

चौथा कहता है – "इन बातो मे क्या धरा है ? आयुकर्म ही सर्वत्र बलवान है । यदि आयु ही समाप्त हो गई होती तो धनवतरी जैसा वैद्य भी नहीं बचा सकता था । ये सब तो निमित्त की बाते है । जब जीवनशक्ति ही समाप्त हो जाती है तो सारे के सारे प्रयत्न धरे रह जाते है। मौत के आगे किसी का वश नही चलता । यदि पडौसी, डॉक्टर, मेडिकलस्टोर वाला और दवाये ही बचातीं होतीं तो डॉक्टर आदि ने अपने सगे माँ-बाप एव प्रिय कुटुम्ब-परिवार को क्यो नही बचा लिया ? बचा लेते न वे उन्हें ।

पाँचवे ने कहा – "अरे भाई । चारो व्यक्तियो ने तो केवल अपने-अपने विकल्पो की ही पूर्ति की है, उन्होने तो उसके बचाने मे कुछ किया ही नही, पर आयुकर्म भी अचेतन है, जड है, वह भी जीव को जीवनदान देने मे समर्थ नही है । वह भी उन चार निमित्तों की तरह ही है ।

वास्तविक बात यह है कि उस मरीज की उपादान की योग्यता ही ऐसी है, जिसे जहाँ जबतक जिन सयोगो मे अपनी स्वय की योग्यता से रहना होता है, तबतक उन्हीं सयोगों के अनुरूप उसे वहाँ उसी रूप मे सब बाह्य कारण कलाप सहज ही मिलते जाते है । एक द्रव्य दूसरे द्रव्य मे तो कुछ करता ही नहीं, द्रव्यों का समय-समय होने वाला परिणमन भी स्वतत्र है । ऐसा ही प्रत्येक वस्तु का स्वभाव है ।

आयुकर्म का उदय भी एक निमित्त कारण ही है । निमित्त होते तो अवश्य हैं, पर वे कर्ता नही हैं । कार्य के समय उनकी उपस्थिति होती है, अत· कभी किसी को महत्त्व मिल जाता है और कभी किसी को । वक्ता के द्वारा जब जिसको जैसा मुख्य गौण करना होता है, कर देता है । वास्तविक कारण तो जीव की तत्समय की योग्यता ही है ।

कहा भी है –

तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायश्चतादृशाः ।
सहायास्तादृशाः सन्ति यादृशी भवितव्यता ।।

अथार्त् जीव का जिस समय जैसा जो होना होता है, तदनुसार ही बुद्धि या विचार उत्पन्न हो जाते है । प्रयत्न भी वैसे ही सहज होने लगते हैं, सहयोगियो मे वैसा ही सहयोग करने एव दौड-धूप करने की भावना बन जाती है और कार्य हो जाता है, अत कारणो के मिलाने की आकुलता मत करो ।

देखो । कारण मिलाने को मना नही किया है, बल्कि उसको मिलाने की आकुलता न करने को कहा है ।

जिसे वस्तु के स्वतत्र परिणमन मे श्रद्धा-विश्वास हो जाता है, उसे आकुलता नही होती । भूमिकानुसार जैसा राग होता है, वैसी व्यवस्थाओ का विकल्प तो आता है, पर कार्य होने पर अभिमान न हो तथा कार्य न होने पर आकुलता न हो, तभी कारण-कार्य व्यवस्था का सही ज्ञान है – ऐसा माना जायेगा ।

यहाँ कोई कह सकता है कि यदि दवाये और डॉक्टर कुछ नही करते तो लाखो डॉक्टर्स, करोडो रुपयो के मेडिकल साधन सब बेकार हैं क्या ? और क्या शासन का करोडो रुपयो का मेडिकल बजट व्यर्थ ही बरबाद हो रहा है, पानी मे जा रहा है ?

यह किसने कहा कि सब बेकार है ? मै तो यह कह रहा हूँ कि जब जो कार्य होना होता है, तब उसके अनुरूप सभी कारण

कलाप मिलते ही हैं । कहने का अर्थ यह है कि एक कार्य होने में अनेक कारण होते हैं, किंतु कथन किसी एक कारण की मुख्यता से किया जाता है, अन्य कारण गौण रहते हैं ।

मुख्य-गौण करके कथन करने की ये ही तो विभिन्न अपेक्षायें है। पहले व्यक्ति ने पडौसी को मुख्य किया, दूसरे ने डॉक्टर को, तीसरे ने दवा को और चौथे ने आयुकर्म को मुख्य कर दिया । इसी कथन शैली को तो स्याद्वाद्व कहते हैं ।

अरे भाई । विज्ञान के जीवन को ही देखो न ? उसकी होनहार भली थी तो उसे एक के बाद एक अनुकूल निमित्त भी मिलते गये और उसके परिणामो मे विशुद्धि आती गई, रुचि बढ़ती गई । निमित्त तो पहले भी कम नही मिले थे । मैने ही उन्हें कितना समझाने की कोशिश की थी, पर वे कहाँ समझे थे ? अब वे कभी उस सत्साहित्य को श्रेय देते है तो कभी अपने मित्र ज्ञान को धन्यवाद देते हैं, कभी अपने भाग्य को सराहते हैं, तो कभी अपने दादाजी की प्रशसा करते हैं, जिन्होने अपने घर मे ऐसे सत्साहित्य का सकलन किया था । इसप्रकार कभी किसी को मुख्य करते है और कभी किसी को । जब किसी एक को मुख्य करते हैं तो शेष कारण अपने आप गौण हो जाते हैं ।

यही बात णमोकार महामत्र सबधी पौराणिक कथाओ के सबध मे भी जानना चाहिए । वहाँ स्वर्गादिक की प्राप्ति मे परिणामो की विशुद्धि आदि कारण तो अनेक है, पर परमेष्ठी की शरण मे पहुँचाने के प्रयोजन से णमोकार मत्र के सुनने-सुनाने को मुख्य किया गया है और शेष कारणो को गौण कर दिया है ।

× × ×

विज्ञान ने जाते-जाते एक प्रश्न और पूछा था । उसका कहना था कि — "पुराणो मे तथा मुनिराजो की वाणी मे शका प्रगट करने से महापाप होता है, फिर भी मै आपके एव पुराणों के कथनों में शका प्रगट कर रहा हूँ, इससे मेरा कोई अनर्थ तो नहीं हो जायेगा ?"

उसके इस प्रश्न का उत्तर देते हुए आचार्यश्री ने कहा – "अरे भाई । अनर्थ तो शकाओ को मन मे रखने से होता है । गुरु के समक्ष शका प्रगट करने से तो शकाओ का समाधान होता है ।"

आचार्यश्री ने विज्ञान की शकाओं को स्वभाविक बताते हुए आगे कहा – "विज्ञान ! तुम नि:संदेह निकट भव्य हो, धर्म के क्षेत्र में परीक्षा प्रधानी होना धर्म के प्रति अश्रद्धा नहीं है । परीक्षा करके जो बात स्वीकार की जाती है, वही श्रद्धा अटूट एव अचल होती है ।

स्वाध्याय में शकाये उत्पन्न होना तो स्वाध्याय का शुभलक्षण है । शकाएँ या तो सर्वज्ञ को नहीं होती या उन अल्पज्ञो को जो केवल स्वाध्याय का नियम निभाने मे ही धर्म समझ बैठे हैं । जिसे जरा भी जिज्ञास होती है, उसे तो शकाये उत्पन्न होती ही हैं ।

शकाये उत्पन्न होना कोई बडी समस्या नही है, क्योंकि ज्ञान स्वय सर्व समाधानकारक है और फिर आवश्यकता ही अविष्कार की जननी है । जिसतरह पानी स्वय अपना रास्ता बना लेता है, खोज लेता है, ठीक उसी तरह जिज्ञासु भी अपनी शकाओ के अधिकाश समाधान तो स्वय ही खोज लेते हैं । फिर भी नियमित स्वाध्याय और समय-समय पर सत्सग और तत्त्वचर्चा भी उपयोगी है । जिसप्रकार दही मथने से मक्खन निकलता है, उसीतरह तत्त्व का मंथन करने से सुख-शाति और समताभाव प्रगट होता है, धर्म प्रगट होता है, अत निर्भय व नि:शक होकर शका-समाधान करना चाहिए ।

सभी जीव जिनवाणी के रहस्य को समझें और सच्चा सुख प्राप्त करें – इस मगलभावना के साथ आज के वक्तव्य से यही विराम लेता हूँ ।"

इस प्रकार कहते-कहते मुनिश्री ने अपने वक्तव्य को विराम दिया और सभी जिज्ञासु उन्हें सविनय नमस्कार कर अपने-अपने घर को चले गये । महाराजश्री भी अपने स्वाध्याय मे निमग्न हो गये । •

२१

यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि – "बालक का मस्तिष्क एक ऐसा कोरा कागज है, जिस पर जो भी सही या गलत प्रारम्भ मे लिख दिया जाता है, वह अपनी ऐसी अमिट छाप छोडता है कि फिर उसे न तो आसानी से मिटाया जा सकता है, न बदला जा सकता है । बालक को जो प्रारम्भिक जीवन मे सिखा दिया जाता है, उसका सरल हृदय उसे ही सच मान लेता है ।"

सभवत इसी तथ्य को ध्यान मे रखकर हमारे बुजुर्गो ने बालको की शिक्षा का प्रारम्भ 'ओम् नम सिद्ध' से करने का निर्णय लिया होगा। सिद्ध परमात्मा को स्मरण करके बालको को आध्यात्मिक विद्या सिखाते होगे । पैतालीस दिन के बालक को मदिर मे ले जाकर णमोकार महामत्र सुनाने की परम्परा तो आज भी प्रचलित है ।

प्रो ज्ञान के दादाश्री इस बाल मनोविज्ञान से सुपरिचित थे .। अत उन्होने अपने पोते ज्ञान को अन्य लौकिक विषय सिखाने-पढ़ाने के पूर्व तत्त्वज्ञान ही सिखाया था । इस कारण दोनो के सोचने के तरीके मे जमीन-आसमान का अन्तर आ गया था । एक ही प्रश्न के दोनों के भिन्न-भिन्न उत्तर होते थे । ज्ञान हर बात को तात्विक दृष्टि से सोचता था, उसके सोच मे तत्त्वज्ञान झलकता था और विज्ञान सदैव भौतिक दृष्टि से सोचता था ।

× × ×

गत तीन माह से ये ज्ञान और विज्ञान दोनों ही नियमित रूप से उपवन मे आचार्यश्री का प्रवचन सुनने पहुँच रहे थे । इस कारण आचार्यश्री इनके आचार-विचार और व्यवहार से तो भली-भाँति परिचित हो चुके थे, पर वे चाहते थे कि अन्य लोग भी धार्मिक संस्कारों से होने वाले

लाभ तथा सस्कारहीन बालको की दुर्दशा को जाने और तत्त्वज्ञान के महत्व को पहचाने । एतदर्थ उन्होने ज्ञान और विज्ञान के सस्कारों के अन्तर को स्पष्ट करने के उद्देश्य से उनसे कुछ प्रश्नोत्तर करने का विचार किया ।

एक दिन जब आचार्यश्री ने ज्ञान व विज्ञान को प्रवचन मडप के सामने बैठा देखा तो उनके माध्यम से सम्पूर्ण धर्मसभा को तत्त्वज्ञान और सस्कारो की उपयोगिता समझाने के उद्देश्य से विज्ञान की ओर हाथ का इशारा करते हुए पूछा – "बताओ तुम कौन हो और तुम्हारा क्या नाम है ? तुम कहाँ रहते हो और तुम्हारा क्या काम है ?"

विज्ञान ने अपने भौतिक चितन के अनुसार उत्तर दिया – "मै जैन हूँ, विज्ञान मेरा नाम है, दिल्ली रहता हूँ और पढना-लिखना तथा वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा नये-नये आविष्कार करना मेरा काम है ।"

आचार्यश्री ने यही प्रश्न पुन ज्ञान की ओर हाथ का इशारा करते हुए पूछा – "तुम बताओ भाई । तुम कौन हो और तुम्हारा क्या नाम है ? तुम कहाँ रहते हो और तुम्हारा क्या काम है ?

ज्ञान ने अपने तात्विक चितन के आधार पर उत्तर दिया – "वस्तुत मै जीवतत्त्व हूँ और शुद्धात्म मेरा नाम है तथा मै अपने स्वरूप चतुष्टय मे रहता हूँ और मात्र जानना मेरा काम है ।"

आचार्यश्री ने ज्ञान से ही पुन प्रश्न किया – "तुमने अपना यह वस्तुगत अलौकिक परिचय क्यो दिया ? व्यक्तिगत लौकिक परिचय क्यो नही दिया ? क्या ऐसा परिचय देने से लोग तुम पर हंसेगे नही ?"

ज्ञान ने गभीर होकर विनम्रता से उत्तर दिया – "महाराज । मुझमे आपकी कृपा से इतना विवेक हो गया है कि कहाँ/किसको/क्या उत्तर देना चाहिए, इस कारण मे हसी का पात्र नहीं बन सकता ।

चूकि यह प्रश्न एक धर्म गुरु ने प्रवचन के बीच पूछा है । अत मैने सोचा – 'आपको मुझसे इसी प्रकार के उत्तर की अपेक्षा थी ।'

यदि यही प्रश्न मुझसे कॉलेज के प्रोफेसर ने किया होता या इन्कमटैक्स ऑफीसर ने किया होता, तो उसे मै अपना व्यक्तिगत लौकिक परिचय देता। उनसे कहता – 'ज्ञान मेरा नाम है, दिल्ली मे मेरा धाम है, मै प्रोफेसर हूँ और पढाना-लिखाना मेरा काम है ।'

पर यह परिचय तो केवल लोक मे कामचलाऊ परिचय है, कदम-कदम पर झूठा पडने वाला परिचय है, क्योकि लोकव्यवहार मे केवल एक नाम से काम नही चलता, यहाँ तो क्षण-क्षण मे और कदम-कदम पर नाम, काम, धाम और व्यक्तित्व बदलते रहते हैं ।

देखिये न । मै कौन हूँ । इस प्रश्न के कितने उत्तर हो सकते है । मै भारतीय हूँ, हिन्दी भाषी हूँ, मैं मनुष्य हूँ, मै जैन हूँ, मैं प्रोफेसर हूँ, मै विद्यार्थी हूँ, मै आत्मार्थी हूँ, मै बाप भी हूँ, बेटा भी हूँ, शिष्य भी हूँ, गुरु भी हूँ, भाई भी हूँ, भतीजा भी हूँ, भानजा भी हूँ, मामा भी हूँ आदि-आदि। जितने रिश्ते है, लोक व्यवहार में मै वह सब हूँ ।

हॉस्पिटल में मै मरीज हूँ, बस मे रेलगाडी मे यात्री हूँ, दूकान पर ग्राहक हूँ, सभा मे श्रोता हूँ । क्या-क्या गिनाऊँ । लोक मे हर कदम पर और हर पल मेरा एक नया नाम रख दिया जाता है । जो हर पल बदले, वह मै कैसे हो सकता हूँ । मै तो कभी न बदलने वाला ध्रुव आत्मतत्त्व हूँ ।

जबतक पर सापेक्ष परिचय दिया जायेगा, तबतक तो यही स्थिति रहेगी। यद्यपि लोक मे काम चलाने की अपेक्षा यह परिचय भी ठीक है, पर यह परिचय वास्तविक – वस्तुगत परिचय नही है । यह सब तो सयोगी कथन है ।

और आपको मेरे इस परिचय से क्या प्रयोजन हो सकता है ? अत मैने आपको अपना वस्तुगत अलौकिक परिचय दिया है ।

यही स्थिति मेरे नाम, काम और धाम की है, माता-पिता को मै 'ज्ञानू' हूँ और मित्रो को 'ज्ञान' । समाज के लिए 'ज्ञानप्रकाशजी हूँ' और कॉलेज मे "प्रोफेसर ज्ञान जैन" ।

इसीतरह मै क्या बताऊँ कि मै कहाँ रहता हूँ ? लोक मे मेरा कोई एक ठिकाना तो है नहीं, कभी कहीं तो कभी कही । इसीतरह कोई एक निश्चित काम भी नहीं है, कभी कुछ करता हूँ, तो कभी कुछ । कभी पढ़ता हूँ तो कभी पढ़ाता हूँ ।"

ज्ञान के अटपटे किन्तु युक्तिसगत उत्तर सुनकर श्रोताओ को एक विचित्र-सी अनुभूति हुई थी । आचार्यश्री भी मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे, क्योंकि वे जो स्पष्टीकरण करना चाहते थे, वह ज्ञान के उत्तरो से बहुत कुछ स्पष्ट तो हो ही चुका था । अत उसी पर अपनी छाप लगाते हुए आचार्यश्री ने कहा – "देखो विज्ञान । तुम भी वस्तुत जैन नहीं, जीव हो, जैन तो इसलिए कहलाते हो कि तुमने जैन कुल मे जन्म लिया है, यदि तुमने क्षत्रिय कुल मे जन्म लिया होता तो तुम्हे जैन कौन कहता ? फिर तो तुम क्षत्रिय कहलाते न ? तुम भी अपने को क्षत्रिय मानने मे ही अपना गौरव समझते । तुम्हे स्वय भी जैनपना स्वीकृत नहीं होता ।

इसीतरह तुम्हारा नाम भी वस्तुत विज्ञान नही है, तुम्हारा वास्तविक नाम तो शुद्धात्म है, ज्ञायक है । विज्ञान तो तुम्हारे माता-पिता का रखा हुआ नाम है । काश चुन्नू, मुन्नू, कल्लू, मल्लू, पप्पू, सप्पू या बबलू, डबलू आदि नामो मे से कोई एक नाम रख देते तो क्या तुम उसी नाम से नहीं पुकारे जाते ?

इसीप्रकार तुम वस्तुत जयपुर मे नही अपने स्वरूप मे रहते हो और केवल जानने-देखने का काम करते हो, पठन-पाठन, धधा-व्यापार और साइंस के प्रयोग करना तुम्हारा यथार्थ काम नही है ।

यदि तुम वस्तुत विज्ञान ही हो तो बताओ जब तुम्हारे माता-पिता ने यह नाम नहीं रखा था, तब भी तुम थे या नही ? और अगले जन्म मे जब यह नाम नही रहेगा तब भी तुम रहोगे या नही ? यदि रहोगे तो तुम वस्तुत विज्ञान कैसे हो सकते हो ? तुम तो भगवान आत्मा हो, जो सदा सभी अवस्थाओ मे रहता है तथा तुम्हारे ये काम-धाम

जातियाँ व उपजातियाँ भी तो बदलती रहती है । अत इन जातियों से भी आत्मा की पहचान नहीं होती ।"

आचार्यश्री समझा रहे थे और सभी श्रोता मन्त्रमुग्ध होकर सुन रहे थे, क्योंकि उन्हें कभी ऐसी बाते सुनने को मिली ही नही थीं ।

आचार्यश्री बोले – **"हाँ तो मैं यह कह रहा था कि जो बातें बालक प्रारम्भ में सीख लेता है, उसे ही सब मान लेता है, तभी तो विज्ञान को केवल क्षणिक वर्तमान पर्याय का सत्य जो क्षण-क्षण में असत्य में बदलता रहता है, वह तो सत्य-सा लग रहा था और जो कभी न बदलने वाला ध्रुव स्वभावी त्रैकालिक सत्य है, वह सत्य नहीं लगता था ।**

यही तो वर्तमान शिक्षा का दोष है । अत· बालको को लौकिक भौतिक विज्ञान की शिक्षा दिलाने के पूर्व या साथ-साथ तत्त्वज्ञान की शिक्षा एव सदाचार के सस्कार भी देना चाहिए । हम लौकिक शिक्षा पढ़ाने को मना नही करते, पर वह तो केवल जन्म की ही समस्या का समाधान देगी, वह भी भाग्योदय के साथ, पर तत्त्वज्ञान की शिक्षा तो जन्म-जन्मान्तर के दु खो को दूर करने वाली शिक्षा है, अत· उस शिक्षा व सस्कारो की उपेक्षा कभी नहीं करनी चाहिए ।

इसी तथ्य को ध्यान मे रखकर प्राचीनकाल मे शिक्षा के संबध मे यह रीति-नीति निर्धारित की गई होगी कि बालको को सर्वप्रथम धार्मिक और आध्यात्मिक विद्या पढ़ाई जावे, तदन्तर ही उसे अर्थकरी साहित्य, सगीत कला और विज्ञान तथा शस्त्रादि विद्याये सिखाई-पढ़ाई जावे, इसी वजह से पहले "ओम् नम सिद्ध" से ही पढ़ाई का प्रारम्भ होता था, जो बाद मे बिगडते-बिगडते "ओ ना मा सी धम" हो गया । इसप्रकार शिक्षा के क्षेत्र मे अध्यात्म विद्या नगण्य हो गई और उसका स्थान ईसाई सस्कृति ने ले लिया है । इस कारण लोग "ओम नम सिद्धम्" का सही अर्थ ही भूलते जा रहे हैं ।

भारतीय सस्कृति से घृणा करने वालो ने तो इसका मजाक बनाते हुए यहाँ तक कहना प्रारंभ कर दिया था कि – "ओ ना मा सी धम, बाप पढ़े ना हम" अर्थात् 'ओम् नम. सिद्ध' जैसी भारतीय अध्यात्म विद्या न हमारे बाप-दादो ने पढ़ी थी और न हमे पढना है ।

आज का युग आर्थिक और वैज्ञानिक युग है, अत प्रत्येक व्यक्ति अपनी सतान को अर्थकरी तकनीकी शिक्षा ही दिलाना चाहता है, यहाँ तक तो कोई बात नही है, उचित भी है, पर दु ख की बात तो यह है कि उसके लिए हमे ईसाई सस्कृति की गोद मे जाना पड रहा है, जहाँ ईसाई धर्म के सस्कार तो दिये ही जाते है, साथ मे अडा, मास मछली आदि मासाहार को भी प्रोत्साहन दिया जाता है एव उसे श्रेष्ठ आहार बताया जाता है । इस कारण विद्यार्थी धीरे-धीरे भारतीय एव जैन सस्कृति से दूर होता जा रहा है ।

ऐसी स्थिति मे आज यह अति आवश्यक हो गया है कि हम अपने बालक-बालिकाओ को उस वातावरण मे भेजने के पहले बाल मनोविज्ञान के सिद्धान्त को ध्यान मे रखकर सर्वप्रथम अहिसा का पाठ पढाएँ, भगवान महावीर के मूलभूत सिद्धान्तो से अवगत कराएँ तथा लौकिक शिक्षा के साथ-साथ तात्विक ज्ञान व सदाचार के सस्कार भी देते रहे।

अरे भाई । जरा सोचो तो सही, हम मात्र वर्तमान मानव जीवन के सत्तर-पिचत्तर वर्ष सुखपूर्वक जीने के लिए जीवन का एक तिहाई भाग लगभग पच्चीस वर्ष की किशोर अवस्था तो हम विशुद्ध अर्थकरी लौकिक शिक्षा के अर्जन में ही बिता देते है, जिसमे केवल गुलाम बनने की गारटी मिलती है तथा शेष जीवन का सारभूत सपूर्ण यौवन धनोपार्जन और कुटुम्ब परिवार के भरण-पोषण मे बिता देते है, जो केवल भाग्याधीन है । यदि भाग्योदय न हो तो पूरी पढ़ाई का सारा परिश्रम व्यर्थ ही जाता है । वह अर्थकरी विद्या भी कुछ काम नहीं आती । इसके प्रमाण मे यह लोक प्रसिद्ध कहावत कहीं भी सुनी जा सकती है कि – 'पढी पारसी बेचे तेल, यह देखो कर्मों का खेल' ।

साठ वर्ष के बाद बुढापे का जीवन भी कोई जीवन है । उसे तो ज्ञानियो ने अर्धमृतक की सज्ञा देकर पहले ही अधमरा घोषित कर दिया है ।

ऐसी स्थिति मे विचारणीय यह है कि जब अपने और अपने कुटुम्ब परिवार के लौकिक जीवन को सुखी-दुखी बनाना हमारे हाथ में है ही नहीं, जब पूर्वोपार्जित पुण्य-पाप के अनुसार ही अनुकूल/प्रतिकूल सयोग मिलता है, तो उसके लिए इतना श्रम, शक्ति व समय का अपव्यय क्यो ? और जिस आगामी अनन्तकाल के भविष्य को उज्ज्वल बनाना हमारे हाथ मे है, हमारे पुरुषार्थ के आधीन है – स्वाधीन है, उस दिशा मे सोचने-समझने तक का समय नही, यह कैसी विडम्बना है ? अत हमे सर्वप्रथम अपने बालको मे तत्त्वज्ञान के ही सस्कार देना चाहिए ।

यदि नगर मे या मोहल्ले मे वीतराग-विज्ञान पाठशाला न हो तो माता-पिता स्वय ही बालक के प्रथम गुरु है, अत माता-पिता आत्मा व परमात्मा के स्वरूप को जाने-पहचाने और बालकों मे भी यही सस्कार डाले।

माँ से प्राप्त सस्कारो का ही सुफल था कि आचार्य कुदकुद ग्यारह वर्ष की छोटी-सी उम्र मे नग्न दिगम्बर साधु बन गये थे और समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, अष्टपाहुड व पचास्तिकाय जैसे महान पचपरमागम के रूप मे आध्यात्म शास्त्र हमे दे गए है ।

धन्य है वे माता-पिता और धन्य हैं वे कुदकुद से बालक, जिन्होने पालना मे ही अपने पूर्वजो से तत्त्वज्ञान के सस्कार प्राप्त कर लिए थे। सभी को ऐसा सुअवसर प्राप्त हो – इसी भावना के साथ आज का प्रवचन यहीं समाप्त करते हैं ।" – ऐसा कहकर आचार्यश्री ने अपना प्रेरणास्पद प्रवचन समाप्त कर दिया ।

जिनवाणी स्तुति के बाद सभी श्रोता प्रसन्न मुद्रा मे आज के व्याख्यान की सराहना करते हुए अपने-अपने घर चले गये । विज्ञान को भी अपने अज्ञान का अहसास हो गया । अत वह तत्त्वज्ञान प्राप्त करने मे और अधिक सक्रिय हो गया । •

२२

"कहने को तो मेडीकल साइन्स ने भी कम उन्नति नहीं की है, उसने भी अपने क्षेत्र मे आसमान की ऊँचाईयो को छू लिया है ।

देखो न । हृदय, किडनी, लीवर और फेफडो जैसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अगो का भी सफल प्रत्यारोपण कर डाला है ।

पर, यह जानकर आम आदमियो को खुश होने की जरूरत नही है, क्योंकि ये साधन सबको सहज सुलभ नहीं हो सकते । एक-एक अंग के प्रत्यारोपण मे लाखो रुपये लगते हैं । कहाँ से लायेगा हर कोई व्यक्ति इतने सारे रुपये ?

मानलो, पुण्य के योग से रुपयो का साधन बन भी जाये और अग-अग बदलने की भी व्यवस्था हो जाये तो भी इन अगो का बदलना इतना आसान नहीं है, जितना कहने-सुनने मे आसान लग रहा है ।

यह कोई बच्चों का खेल तो है नही । उसमे भी तो रिस्क है । जीवन को दाव पर लगाना पडता है, क्योंकि अगो के बदलने मे जीवन का खतरा अत तक बना ही रहता है ।

ऑपरेशन सफल होजाने के बाद भी वह कृत्रिम अग कितना/कब तक काम करेगा ? करेगा भी या नही ? ये सारी चिन्ताओ के बादल तो छाये ही रहते हैं न ? उससे जो मानसिक क्लेश और शारीरिक कष्ट होता है, उसे कोई कैसे कम कर सकेगा ?

अरे । जो किस्मत मे होगा, उसे कौन बदल सकेगा ? होनी को कौन टाल सकता है ? मौत पर किसा वश चला है ? उसके सामने तो सबको हथियार डालने ही पडते हैं, एक न एक दिन हार माननी ही पडती है ।"

इसी उधेडबुन मे उलझे अन्नू और अज्जू को अस्पताल मे पडे-पडे महीनों हो गये थे, उपचार बराबर चल रहा था, पर अभी तक आराम होने से कोई आसार नजर नहीं आ रहे थे । वे जीवन और मौत से सघर्ष कर रहे थे । उनके अन्तर्मन का क्लेश और देह का दर्द तो वो ही जाने, पर उनकी दु:ख भरी आहें और समय-समय पर निकली चीखे, आँखो से बहते आँसू और पल-पल मे बदलती करवटें बता रहीं थीं कि उन्हें असह्य वेदना है । उनके एक-एक हाव-भाव से उनके कष्ट का आभास हो रहा था । उनके अत्यन्त उदास और हताश चेहरे पर उनकी जीवन के प्रति हुई निराशा स्पष्ट झलक रही थी ।

× × ×

एक तो विज्ञान और उनकी पत्नी विद्या को अन्नू और अज्जू के भोलेपन और निर्धनता के कारण उन पर पहले से ही सहानुभूति थी, दूसरे, सजू और राजू के चक्कर मे आ जाने से उनकी जो दुर्दशा हो रही थी, उससे वे दोनो उनकी करुणा के पात्र भी बन गये थे ।

अतएव विज्ञान और विद्या उनका हर तरह से सहयोग कर उन्हें सन्मार्ग पर लाना चाहते थे और दुर्व्यसनो से दूर कर उन्हें बीमारी के कष्टो से भी छुडाना चाहते थे ।

इस कारण विज्ञान ने पूर्व मे दिए गये आश्वासन के अनुसार उन दोनो के उपचार कराने के लिए और परिवार के भरण-पोषण के लिए आर्थिक सहयोग तो दे ही रखा था, उनके सेवा-सुश्रुषा मे भी अपना तन, मन, धन और जीवन अर्पण कर रखा था ।

विज्ञान की इस निःस्वार्थ सेवा और समर्पण की भावना देखकर अस्पताल के अन्य डॉक्टर भी अन्नू और अज्जू का पूरा-पूरा ध्यान रखते थे । क्षयरोग विशेषज्ञ डॉ धर्मचन्द और उदररोग विशेषज्ञ डॉ कनकलता जैसे निःस्वार्थ समाजसेवी डॉक्टरों की अमूल्य सेवा भी उन्हें विज्ञान के प्रयास से उपलब्ध हो गई थीं । इस कारण उनके इलाज मे किसी प्रकार से कोई कमी नहीं रही थी ।

पर अपने-अपने पुण्य-पाप का फल तो जीव को स्वयं ही भोगना पड़ता है । उसमें कोई किसी का हाथ नही बटा सकता ।

स्थिति यह बनी कि 'मर्ज बढ़ता ही गया ज्यो-ज्यो दवा की ।' अत डॉक्टर धर्मचन्द ने विज्ञान को निजी परामर्श देते हुए कहा कि — "यद्यपि एक डॉक्टर के नाते हम लोग इनके इलाज मे अन्तिम दम तक कोई कसर नही रखेगे, परन्तु अब इनके लक्षणो से ऐसा नही लगता कि ये बहुत लम्बा जीवन जी सकेंगे । अत मेरी निजी राय तो यही है कि अब इन्हें घर ले जाया जाये और वहाँ पर उनका इलाज चलने के साथ-साथ इन्हे अधिक से अधिक समय तक धर्म की बाते सुनाई-समझाई जावे, वैराग्यप्रेरक प्रसग सुनाये जावे, पौराणिक कथाएँ सुनाई जावे । इन सबसे ही इन्हें शान्ति मिलेगी । यहाँ ये सब सभव नही हो सकेगा। इनके उपचार की व्यवस्था हम दोनो इनके घर पर ही कर लेगे और समय-समय पर हम स्वय भी देख-भाल करते रहेगे ।

× × ×

अन्नू और अज्जू भी अब तक अस्पताल के वातावरण से ऊब चुके थे, घबरा चुके थे । उनका स्वय का दर्द तो एक ओर रहा, उनसे वहाँ रहने वाले दूसरे रोगियो का दर्द भी देखा नहीं जाता था । आये दिन हो रही मौते, मरीजो का चीखना-चिल्लाना, उनके चित्त को आकुल-व्याकुल कर देता था । पर बेचारे मरीज भी क्या करे ? उनसे दर्द सहा नही जाता तो न चाहते हुए भी चीखे निकल ही पडती थी।

किसी को सिर का शूल तो किसी को कानो का कष्ट, किसी को दमा से बैचेनी तो किसी को पेट की भयकर पीडा, किसी को दिन-रात खांसी से चैन नही तो कोई हृदय की घबडाहट से बैचेन । जहाँ देखो वहीं दर्द ही दर्द । यदि कोई बेदर्द थे तो केवल डॉक्टर, नर्सें और कम्पाउडर, जिन्हे न किसी के दर्द की परवाह और न किसी के चिल्लाने की चिन्ता । वे भी बेचारे क्या करें ? कराहें सुनते-सुनते उनके भी

कान बठर हो गये थे । बडी से बडी चीख अब उन्हें प्रभावित नही करती थी ।

वे दर्द दबाने की भी आखिर कितनी दवाएँ दे ? दवाओ की भी तो अपनी सीमाएँ होती हैं ? अत दवाओ से तो केवल असहनीय दर्द को ही दबाया जा सकता है । थोडा-बहुत दर्द तो मरीज को सहना ही पडता है ।

उन्होने जो यह मान रखा था कि 'मरीजो की तो आदत ही चीखने-चिल्लाने की होती है' । कुछ अश तक तो उनके इस सोच को सच कहा भी जा सकता है, पर इससे बेचारे वे मरीज तो बै-मोत मारे ही जाते है, जिनको वस्तुत असह्य दर्द होता है । परन्तु यह पहचान भी कोई कैसे करे कि किसको कितना कष्ट है ? कष्ट मापने का थर्मामीटर तो किसी के पास है नहीं ।

बस, इन्ही सब बातो से घबडाकर अज्जू ने अन्नू से परामर्श करके यह निश्चय किया कि अस्पताल से छुट्टी पाने के लिए विज्ञान से निवेदन किया जाय । वे इस सबध मे भी हमारी सहायता कर सकते है ।

एक दिन डरते-डरते अज्जू ने विज्ञान से बडे ही विनम्र शब्दो मे कहा – "हम आपका जितना भी उपकार माने थोडा है । आप हम जैसे तुच्छ लोगो के साथ भी कितना कष्ट उठा रहे हैं और कितना रुपया हम लोगो पर खर्च कर रहे है । हम अनेक जन्मो मे भी आपके इस ऋण से उऋण नही हो पायेगे । यदि हम प्रथम परिचय में ही आपकी सलाह मान लेते और सजू की बातो मे नहीं आते तो हमें ये दुर्दिन देखने ही नही पडते । **'पर होनहार बलवान होती है।'** उसी के अनुसार सब कारण कलाप मिलते हैं । इसी कारण आपकी बात उस समय हमारी समझ मे नही आयी ।

जाति से जैन होकर भी हमने कोई भी काम जैनधर्म के अनुकूल नही किया । हम कितने पापी हैं, पर हम करते भी क्या ? दुर्भाग्य से हमे जन्म से ऐसा वातावरण ही नहीं मिला, जिससे हमे धर्म-कर्म

से परिचय प्राप्त करने का सौभाग्य मिलता, हम तो ऐसे वातावरण मे रहे कि जहाँ हमे केवल भौतिक वातावरण ही मिला । अब आपकी सद्प्रेरणा से हमे कुछ धर्म को सुनने, समझने एव तदनुसार उसे आचरण मे लाने की रुचि हुई है ।

अत हम धर्म के विषय मे कुछ विशेष जानना चाहते हैं । और जितना हम से बनेगा, हम आचरण भी करना चाहते है । अत हमे आप यहाँ से घर ले चलो । अब हमारा यहाँ जी नही लगता और यहाँ रहने की अब जरूरत भी नहीं है, क्योंकि केवल तीनो समय दवा की गोलियाँ ही तो चलती हैं, यहाँ का कोई ऐसा इलाज नही हैं, जो घर न हो सकता हो । आपको भी बार-बार आने-जाने की परेशानी होती है । घर पर आप लोगो से धर्म की दो बाते सीख लेगे तो जन्म-जन्मान्तर मे काम आयेगी ।

× × ×

विज्ञान अज्जू और अन्नू के विचारो को सुनकर मन ही मन प्रसन्न हुआ, क्योंकि डॉक्टर धर्मचन्द की भी यही सलाह थी और विज्ञान स्वय भी यही चाहता था । फिर भी विज्ञान ने उनके मन मे हुए परिवर्तन की प्रतिक्रिया जानने के लिए कहा – "तुम्हे शेष रही-सही बुरी आदतो को भी जीवन भर के लिए छोडना होगा । तभी इस विषय पर विचार हो सकता है ।"

दोनो ने उत्साह से कहा "हम आपकी सब बाते मानेगे और जैसा कहेंगे, वैसा ही करेगे ।"

उस दिन से उन्होने जो यदा-कदा चोरी छिपे शराब, सिगरेट पीते थे, उसको भी सदा के लिए तिलाजलि दे दी ।

परन्तु जब खेतो मे खडी फसले पानी की प्रतीक्षा करते-करते सूख चुकी हो तो बाद मे मूसलाधार बरसात की भी क्या कीमत ? उससे उस फसल को क्या लाभ ? यही स्थिति अन्नू और अज्जू की हो चुकी थी । काश । वे कुछ पहिले चेत जाते । पर चेत कैसे जाते, मौत का बुलावा जो आ गया था ।

अज्जू के फेफडे सिगरेट के धुएँ से अत्यन्त क्षीण हो चुके थे और अब कोई भी दवा काम नहीं कर रही थी । यही स्थिति अन्नू के लीवर की थी। यद्यपि अब कोई भी दवा काम नहीं कर सकती थी, पर 'जब तक श्वांसा तब तक आशा' के अनुसार उपचार तो चल ही रहा था।

यद्यपि अज्जू और अन्नू अपनी-अपनी करनी पर पछता रहे थे । पर 'फिर पछताये होत क्या जब चिडिया चुग गई खेत' वाली कहावत उनके मानस पटल पर बार-बार आ-जा रही थी । उनकी अन्तरात्मा से ऐसी आवाज आ रही थी कि लोगों से चिल्ला-चिल्ला कर कहें कि — 'हम जैसी भूल भविष्य मे कोई न करे ।'

एक बार तो उन्होने अपनी हार्दिक इच्छा जाहिर करते हुए यह कहा था कि आप हमारा उदाहरण प्रस्तुत करते हुए दुनिया को शराब और सिगरेट के दुष्परिणामो की घोषणा करते हुए ढिंढोरा पिटवा दें, ताकि भविष्य मे कोई सिगरेट व शराब पीना तो दूर, उन्हें छूना भी पाप समझे ।

× × ×

अन्नू और अज्जू को जब अस्पताल से छुट्टी मिली तो उन्हें बडी राहत-सी महसूस हुई । अब तो उनकी दिनचर्या ही बदल चुकी थी। उनके आचरण से ऐसा लगता ही नही था कि ये लोग कभी दुर्व्यसनो के शिकार भी थे ।

सुनीता और सरला भी अब विज्ञान और विद्या के सम्पर्क मे आने से अपने को पूर्ण सुरक्षित और सुखी अनुभव कर रही थी । अब वे बराबर मंदिर आते, दर्शन-पूजन करते, प्रवचन मे भी अपनी शक्ति के अनुसार बैठ जाते और प्रवचन मे आये तत्त्वज्ञान की बातो को अपने मे बिठाने का प्रयत्न करते ।

उनके देह का उपचार तो यथाशक्य चल ही रहा था, साथ ही अपने साधर्मी भाइयों के साथ बैठकर विज्ञान ने उन चारों ही प्राणियो को अधिकतम धर्मलाभ पहुँचाने की भी एक व्यवस्थित योजना बना ली

थी । उसमे यह तय किया गया था कि कौन/कब/कितने समय तक उनके पास बैठकर उन्हें तत्त्वज्ञान का लाभ देगा । वैराग्यमय वातावरण बनाने के लिए शान्तरस से भरपूर सगीतमय आध्यात्मिक भजन, वैराग्य भावना, समाधिमरण, शुद्धात्म शतक, छहढाला आदि सुनाने की व्यवस्था करेगा । ताकि उनके परिणाम निर्मल हो, दुर्व्यसनो के कारण उत्पन्न हुई आत्मग्लानि दूर हो और आत्मानुभूति प्राप्त करने का सुअवसर मिल सके ।

साधर्मी वात्सल्य कहते ही उसे है, जिसमें निःस्वार्थ भाव से अपने साधर्मी भाइयों को, मित्रों को और कुटुम्ब-परिवारों को सन्मार्ग में लगाने के लिए अपना सम्पूर्ण समर्पण कर दे । इससे बढकर अन्य कोई पुण्य का कार्य नहीं हो सकता ।

यह अन्नू और अज्जू के महान पुण्य का उदय ही समझना चाहिए कि उन्हे विज्ञान जैसा हितैषी मित्र मिल गया । विज्ञान के सम्पर्क मे आते ही विज्ञान ने उनके रोग का उपचार तो कराया ही, साथ ही प्रतिदिन सुबह-शाम उनके घर जाकर उन्हे और उनकी पत्नी सरला और सुनीता को भी णमोकार मत्र से प्रारभ करके चौबीस तीर्थकरो के नाम, पचपरमेष्ठी एव देव-शास्त्र-गुरु का स्वरूप, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, सात-तत्त्व, भेदविज्ञान, निमित्त-उपादान कर्मसिद्धान्त क्रमबद्धपर्याय और सर्वज्ञता आदि का सामान्य ज्ञान भी कराया और सदाचारी जीवन जीने की प्रेरणा दी ।

इस तरह विज्ञान ने अपने साथियो के सहयोग से उनके जीवन को धार्मिक वातावरण के रंग मे रंग दिया ।

वातावरण बदलने से उन चारो ही प्राणियो के परिणामो मे काफी परिवर्तन हो रहा था, अब अज्जू और अन्नू का मन आत्म-ग्लानि से भर आया था, वे अपनी भूल पर पश्चाताप तो कर ही रहे थे, साथ ही धर्मलाभ का उन्हे बहुत हर्ष था ।

विज्ञान ने उन्हें समझाया – "क्या जीवन भर पश्चाताप ही करते रहोगे ? यदि गल्तियो पर पछताते ही रहोगे तो आत्मा का अनुभव कब करोगे ? पछतावे का महत्व उस सीमा तक ही होता है, जब-तक हम उन दोषो की दल-दल से बाहर न निकल जाये, अब तो तुम बहुत आगे बढ गये हो ।

अतः अब तुम भूत को भूल जाओ, भविष्य की भी चिन्ता छोड दो, अब तो तुम केवल वर्तमान को संभालो, भविष्य तो अपने आप संभल जायेगा । अपने आत्मा को जानो, उसे ही अच्छी तरह पहचानो, उसी में जम जाओ, उसी में समा जाओ, तुम्हे सब पापों से छुटकारा मिल जायेगा और तुम सदा के लिए सुखी हो जाओगे।"

× × ×

विज्ञान के इस धर्मवात्सल्य और निःस्वार्थ सेवा से वे चारो ही प्राणी बहुत ही गद्गद् थे और पश्चाताप के आँसुओ से अपने पूर्वकृत पापो को धो-धोकर पवित्र हो रहे थे । अब अधिकाश समय उनका आत्म-चिन्तन और पचपरमेष्ठी के स्मरण मे ही बीतने लगा था । अत अब उन्हे न जीवन का अनुराग था और न मरण का भय । वे दोनो अपने साथ अपनी पत्नियो को भी सन्मार्ग मे लगा देखकर भारी प्रसन्न थे ।

समाधिमरण की भावना मन मे सजोये जीवन-मरण से सघर्ष कर मृत्युजयी बनकर अत्यन्त साम्य भाव से आठ दिन के अन्तराल ही से अन्नू और अज्जू दोनो अपनी पत्नियो को अकेला छोडकर दिवगत हो गये ।

× × ×

वहाँ उपस्थित जन-समूह मे से एक वृद्ध ने कहा – "अन्त भला सो सब भला । विज्ञान, विद्या और डॉक्टर दम्पति के प्रयासो से उनका अन्तिम जीवन भी सुधर गया, मरण बहुत अच्छा हो गया और इलाज मे भी कोई कसर नही रही, पर जो भूल जीवन मे हो गई थी सो

तो हो गई थी । उसका दुष्परिणाम भी उन्हें भोगना ही पड़ा, वरना अभी उनकी उम्र ही क्या थी, यदि सिगरेट और शराब की आदत न पडी होती तो वे असमय मे बेमौत नही मरते । भगवान । ऐसी भूल कभी कोई न करे ।"

ऐसा कहते-कहते वह वृद्ध पुरुष अचेत हो जमीन पर गिर पडा। वह उसके वियोग को बर्दाश्त नही कर पाया, क्योंकि वह और कोई नही अज्जू का दादा ही था, जिसने उसे बडे ही लाड-प्यार से पाला-पोसा और पढ़ाया-लिखाया था और उसके सहारे ही वह अपने पुत्र-वियोग से हुए गहरे घाव को भर रहा था, जो पोते के वियोग से पुन हरा-भरा हो गया और वही घाव उसकी मृत्यु का कारण बन गया । •

मै कौन हूँ

"मैं" शरीर, मन, वाणी और मोह-राग-द्वेष, यहाँ तक कि क्षणस्थायी परलक्षी बुद्धि से भिन्न एक त्रैकालिक, शुद्ध, अनादि-अनन्त, चैतन्य, ज्ञानानन्द स्वभावी ध्रुवतत्त्व हूँ, जिसे आत्मा कहते हैं ।

जैसे मैं बगाली हूँ, मैं मद्रासी हूँ और मै पजाबी हूँ', इस प्रान्तीयता के घटाटोप मे आदमी यह भूल जाता है कि 'मै भारतीय हूँ' और प्रान्तीयता की सघन अनुभूति से भारतीय राष्ट्रीयता खण्डित होने लगती है, उसी प्रकार 'मैं मनुष्य हूँ, देव हूँ, पुरुष हूँ, स्त्री हूँ, बालक हूँ, जवान हूँ' आदि मे आत्मबुद्धि के बादलों के बीच आत्मा तिरोहित-सा हो जाता है । तथा जैसे आज के राष्ट्रीय नेताओं की पुकार है कि देशप्रेमी बन्धुओं । आप लोग मद्रासी और बंगाली होने के पहिले भारतीय हैं, यह क्यों भूल जाते हैं ? उसी प्रकार मेरा कहना है कि 'मैं सेठ हूँ, मैं पण्डित हूँ, मैं बालक हूँ, मैं वृद्ध हूँ' के कोलाहल में 'मैं आत्मा हूँ' को हम क्यों भूल जाते हैं ?

— मैं कौन हूँ ? पृष्ठ 13-14

२३

सजू के हृदय मे पिता के प्रति विद्रोही भावना पनपने के दो प्रमुख कारण थे । एक तो उसके पिता द्वारा उसको योग्य बनाने के लिए आवश्यकता से अधिक सावधानी और कठोर अनुशासन तथा दूसरा प्रबल कारण था उनका स्वय का अत्यधिक महत्त्वाकाक्षी होना ।

जहाँ एक ओर वे सजू के बिगडने के भय से उसे जेब खर्च भी बहुत ही कस-कस कर देते, वहीं दूसरी ओर अपनी महत्त्वाकाक्षाओ की पूर्ति के लिए वे पैसे को पानी की तरह बहाया करते ।

कम जेब खर्च मिलने के कारण सजू को अपनी मित्र-मडली मे हीन भावना का अनुभव होता था, क्योंकि उसकी तुलना मे कम पैसे वाले राजू आदि मित्र भी उससे कही अधिक जेब खर्च पाते थे और दिल खोलकर खर्च किया करते थे ।

वैसे देखा जाये तो सजू स्वभाव से इतना बुरा नही था, जितना वह परिस्थितियो वश बदनाम हो गया था ।

वह अपने पिता की स्वय के प्रति पवित्र भावनाओं को भी पहचानता था और उनकी व्यक्तिगत कमजोरियो को भी जानता था । पर एक तो वह उनसे छोटे मुँह बडी बात करे कैसे ? और कहने की हिम्मत करे भी तो उसके कहने का उसके पिता पर कोई असर होने वाला नही था, क्योंकि वे तो उसे अभी भी नादान ही समझ रहे थे ।

बेटा कितना भी बडा और समझदार क्यों न हो जावे, पर बाप के लिए तो सदैव बच्चा और अक्ल का कच्चा ही नजर आता है। बाप के सामने बेटा और पति के सामने पत्नी भी समझदारी की बात कर सकते है — यह बात सेठ सिद्धोमल की समझ के परे थी ।

उन्होंने अपने इसी सोच के कारण न सजू की कभी कोई बात सुनी और न अपनी पत्नी की सलाह पर ही कोई ध्यान दिया ।

परिणामस्वरूप सजू के हृदय मे पिता के प्रति विद्रोह की भावना पनप गई । अब उसे पिता की भली बाते भी बुरी लगने लगी । मानसिक सतुलन बिगड जाने से उसकी सोचने की क्षमता भी घट गई । उसने अपने गम को भुलाने के लिए सुरा का सहारा लिया तो उसके सहचारी अन्य अनेक दुर्व्यसनो ने भी उसे घेर लिया ।

× × ×

परिस्थितियो के झझावात मे उलझने के कारण आवारा बने सजू को सौभाग्य से जब ज्ञान, विज्ञान और सुदर्शन जैसे व्यक्तियो का सत्समागम मिला तो वह अपनी भूल का अहसास करते हुए अपने दुष्कृत्य पर लज्जित तो हुआ ही, उसने पश्चाताप के आँसुओ से अपने पूर्वकृत पापो का प्रक्षालन भी कर डाला और भविष्य मे ऐसी भूल कभी न करने का सकल्प भी कर लिया ।

इसप्रकार जब उसके दिन फिरे तो उसे सन्मार्ग पर आते देर नही लगी और वह रहे-सहे दुर्व्यसनो को दूर करने के प्रयास मे लग गया। परिणामस्वरूप प्रौढता की सीढी पर पग रखते-रखते उसमे काफी समझ आ गई ।

उधर उसके पिता भी सोच रहे थे कि — विज्ञान के बताये गुरुमत्र के अनुसार उसको सन्मार्ग पर लाने के लिए एक सर्वगुणसम्पन्न, सर्वांग सुन्दर कन्या से उसकी शीघ्र शादी कर दी जाये ।

सयोग से सेठ सिद्धोमल मनोवांछित सर्वश्रेष्ठ कन्या के साथ अपने पुत्र सजू की शादी करने मे सफल भी हो गये । इसतरह ज्ञान, विज्ञान और सुदर्शन के प्रयासो से और माता-पिता के प्रयत्नों से सजू पुन अपने घर वापिस आ गया ।

संजू की वापसी और योग्य कन्या से उसका विवाह सम्बन्ध हो जाने से उसके माता-पिता तो प्रसन्न हुए ही, नागरिको और उसकी मित्र-मंडली को भी भारी प्रसन्नता हुई ।

सरला एव सुनीता के सम्पर्क मे रहने से सजू के चरित्र के बारे मे जो भ्रम खडे हो गये थे, यथासमय उनका भी निराकरण हो गया।

गलतफहमियों से भी वातावरण बहुत विषाक्त हो जाता है । यदि यह जानना हो, इसका प्रत्यक्ष अनुभव करना हो तो संजू, सरला और सुनीता के चरित्रो से जाना जा सकता है । वे दोनों पूर्ण पवित्र और सदाचारिणी थीं, पर उन्हें समाज ने संजू को आश्रय देने के कारण संदेह की दृष्टि से देखा और पूर्ण दुराचारी मानकर समाज से बहिष्कृत कर दिया था । सजू के पिता सेठ सिद्धोमल ही उन्हें अपमानित और समाज से बहिष्कृत करने मे अग्रणी थे । वे समाज के सरपच जो थे । पुत्र मोह ने ही उन्हें अपने सरपच पद का दुरुपयोग करने को विवश कर दिया था । सजू के पथभ्रष्ट होने में उन्हें सारा दोष सरला व सुनीता का ही नजर आ रहा था । जबकि स्थिति कुछ और ही थी । पर वे क्या करें, मोह की महिमा ही विचित्र है । अस्तु. यदि संजू ने आगे आकर उन्हें अग्नि-परीक्षा की कसौटी पर न कसा होता तो बेचारी वे तो बेमौत मारी ही गई थीं ।

× × ×

सरला और सुनीता की समस्या सुलझाने के बाद संजू इस अवसर की तलाश मे था कि वह धीरे-धीरे अपने पापा को विश्वास मे लेकर उन्हें उनकी उन कमजोरियों का आभास कराये, जिनके कारण वे सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में इतना समय देने एव धन खर्च करने के बावजूद भी लोगो की दृष्टि मे श्रद्धेय नहीं बन पाये, बल्कि लोग उन्हें महत्वाकाक्षी और नाम तथा धन का लोभी ही समझते रहे ।

लोगों को सेठ सिद्धोमल के व्यक्तित्व को समझने में कोरा भ्रम नहीं था, कुछ-कुछ वस्तुस्थिति भी ऐसी ही थी । वे अपने को आवश्यकता

से अधिक चतुर और बुद्धिमान समझते भी थे । उन्हे अपने मे अपनी कमियो के बजाय विशेषताये ही अधिक दिखाई देती थीं, जबकि सत्य यह है कि मानव को दुनिया मे कुछ कर दिखाने के लिए अपनी विशेषताओ के साथ अपनी कमियाँ-कमजोरियाँ भी नजर आनी चाहिए ।

हमेशा अपनी कमियों एवं कमजोरियों पर और दूसरों की उन विशेषताओं पर विशेष ध्यान दो, जिससे उन्हें यश और सफलता मिली हो । तथा उनकी उन विशेषताओं को अपनी कमियों के स्थान में इस तरह भरो कि वे भद्दे पेबन्द न बनकर दूध में चीनी की तरह घुल जावें – एकमेक हो जावें ।

सजू अपने पापा को इसी सत्य के निकट लाना चाहता था । सजू छोटी उम्र मे भी अपने जीवन के उतार-चढावो के कारण अधिक अनुभवी हो गया था । और वैसे भी उम्र से समझदारी और बुद्धिमानी का कोई खास सम्बन्ध नही है । कम उम्र के व्यक्ति भी अधिक उम्रवालो से कही अधिक समझदार और बुद्धिमान हो सकते हैं ।

अत यदि सजू अपने पिता को सही राह दिखाने की सोच रहा था तो ऐसा कोई अनर्थ नही कर रहा था, और वह तो इतना समझदार था कि उसने पहले ही सोच लिया था कि बडो का पूरा बडप्पन और उनकी पूरी मान-मर्यादा के साथ विनयपूर्वक ही वह अपनी बात रखेगा। वह उन्हे ऐसा अहसास ही नही होने देगा, जो कहने-सुनने मे 'छोटे मुँह बडी बात' सी लगे ।

× × ×

अपने इकलौते बेटे सजू को भी सन्मार्ग पर न लगा पाने वाले और अपनी अक्ल की अजीर्णता से उसे घर छोडने तक की स्थिति मे पहुँचा देने वाले सेठ सिद्धोमल ने अपने धन-दौलत की बदौलत समाज का सरक्षक बनकर पूरे समाज को मार्गदर्शन देने का ठेका ले रखा था ।

इतना ही नहीं रुपये-पैसो के बलबूते पर वे न्यायपचायत के सरपच भी बने बैठे थे । समय-समय पर दान-दक्षिणा देकर और चन्दा-चिट्ठा

लिखाकर उन्होने अनेक सामाजिक सस्थाओं, सगठनो और ट्रस्टो के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष, कोषाध्यक्ष और कार्याध्यक्ष जैसे महत्वपूर्ण पदो को भी हथिया लिया था । इन पदों पर पदासीन होने से उन्हें अपने बडेपन का भ्रम भी हो गया था ।

बेचारे सेठजी को क्या पता कि यह सब तो माया की महिमा है, इसमे अपना क्या बडप्पन है । 'माया तेरे तीन नाम, परसा, परसु परसराम' वाली कहावत उन पर पूर्णरूपेण घटित होती थी । उन्होने भी 'सिद्धा, सिद्धो से लेकर सेठ सिद्धोमलजी तक की नाम-यात्रा इसी पीढी मे पूरी की है ।

एक व्यक्ति जब निर्धन था तब लोग उसे 'परसा' कहकर पुकारा करते थे, जब वह कुछ धनवान हुआ तो लोग उसे 'परसु' कहने लगे तथा जब वह और अधिक धन सम्पन्न हो गया तो उसे सेठ श्री परसरामजी कहकर पुकारा जाने लगा था ।

जब सिद्धोमल बडे आदमी बन गये तो अब समाज को अपने पक्ष मे रखने के लिए एव समाज मे अपना सर्वोच्च स्थान सुरक्षित रखने के लिए और अपने नाम की प्रसिद्धि के अनुसार समय-समय पर चन्दा-चिट्ठा तो लिखाना ही पडता था, पर इतने सारे ब्लैकमनी (काले धन) का खर्च कहाँ दिखावे ? एक यह समस्या भी तो उनके सामने रहा करती थी ।

एतदर्थ उन्होने अपने पूर्वजो के नामो पर ऐसे अनेक छोटे-मोटे ट्रस्ट बना रखे थे, जिनके माध्यम से वे अपनी अवैध सम्पत्ति को वैध एव सुरक्षित करके अपने कुटुम्ब परिवार के हित मे उसका मनमाने ढंग से सदुपयोग कर सकें और चन्दा-चिट्ठा भी दे सकें ।

समय-समय पर मुखर-नेताओ, शासकीय अधिकारियो और कर्मचारियो तथा पत्र-पत्रिकाओ को चन्दा-चिट्ठा या उपहारो के नाम पर मुँह मागा धन देकर उनका मुँह बद रख सकें और समय-समय पर समारोहों में उच्चासन पर सुशोभित होकर सम्मान पा सकें । इन सबके लिए निजी

ट्रस्ट बनाना भी बहुत जरूरी होता है, क्योंकि इन ट्रस्टों की भट्टियो मे तप कर ही तो काला धन सफेद हो सकता है न ?

इनके सिवाय सामाजिक ट्रस्टों के पदो पर आसीन होना भी उनकी आवश्यकता है, क्योंकि यदि उन पदो पर आसीन न हो पाये तो उन ट्रस्टो की धनराशि का सदुपयोग अपने ढग से कैसे कर सकेंगे ? अत थोडा-बहुत चन्दा-चिट्ठा लिखा करके उन ट्रस्टो मे भी अपनी घुसपैठ किए रहते थे ।

सेठ सिद्धोमल इन सब कामो मे सिद्धहस्त थे । वे हमेशा यह गणित लगाया करते थे कि कब/कहाँ/किस प्रयोजन से पहुँचना है ? अत कभी व्यापारिक कार्यों के नाम तो कभी सामाजिक मीटिंगो के नाम पर अपने दौरो के यात्रा भत्तो के बिल बना लिया करते थे । ताकि इन सब खर्चो को 'आयकर' मे मुजरा कराया जा सके ।

× × ×

इन सबके कारण सेठ सिद्धोमल आवश्यकता से अधिक व्यस्त दिखाई देते थे । अत कोई उनसे यह कहने की हिम्मत ही नही कर पाता था कि वे कुछ समय शान्ति से एक जगह ठहर कर धर्मलाभ ले, नियमित स्वाध्याय करें और अपनी जिन्दगी के अमूल्य क्षणो को सार्थक कर ले।

धर्म के नाम पर तो वे केवल धार्मिक मचो के किसी विशिष्ट पद पर पदासीन होकर अपना भीषण-भाषण देकर और यथायोग्य दान की घोषणा भर करते रहते थे । वहाँ भी विद्वानो की दो अच्छी बाते सुनने का सुयोग उन्हे नही मिल पाता था, क्योंकि बडे राजनेताओ की तरह यदि कार्य व्यस्तता बताकर बीच मे ही न उठ जावे तो वे भी बडे नेता कैसे कहलायेगे ? अब तो वे बीमार भी रहने लगे थे, अत अब उनसे अधिक दौड-धूप भी सभव नही थी । भले ही प्लेन की यात्रा ही क्यो न हो, पर थकान तो उसमे भी होती ही है । अत. डॉक्टर उन्हें अधिक यात्रा की परमीशन नही देते थे ।

संजू की चिन्ता का यही मुख्य विषय था । वह चाहता था कि एक तो उनकी यह दौड-धूप कम हो और दूसरे उनको अनावश्यक तनाव जो सस्थाओं की उपाधियो के कारण होता है, वह कम हो । तीसरे, वे एक जगह रहकर शान्ति से स्वाध्याय करें, तत्वाभ्यास करें तो धीरे-धीरे उनकी तनावजनित बीमारी भी ठीक होगी और उनकी ये महत्त्वाकाक्षाएँ भी अपने आप कम हो जायेगी ।

इसके लिए उसने अपने मित्र प्रो ज्ञान, विज्ञान और सुदर्शन से कहा कि वे लोग ही कोई ऐसा रास्ता निकाले, उपाय खोजे, जिससे उसके पिताजी स्वाध्याय एव तत्त्वाभ्यास मे रुचि लेने लगे । वे चाहे तो डॉ धर्मचन्द और राजू से भी सहयोग ले ले ।

× × ×

बडे आदमियो को आमतौर पर जो बडी-बडी व्याधियाँ और उपाधियाँ होती है, सेठ सिद्धोमल भी उसके अपवाद नही थे, उन्हें भी लगभग सभी आधियाँ-व्याधियाँ और उपाधियाँ थीं, क्योंकि उन्होने भी तो वे सब मुसीबते मोल ले रखी थीं, जो आमतौर पर सब श्रीमन्तो को घेरे रहती हैं ।

यद्यपि उनके सौभाग्य से अब उन्हें धन-दौलत कमाने की बिल्कुल ही चिन्ता नही थी, क्योंकि उनके पास अटूट-असीमित चल-अचल सम्पत्ति थी, जिसके ब्याज और भाडे से ही उन्हें लाखो रुपयों की आय का साधन हो गया था, पर प्राणी की इच्छाओ की भी तो सीमा नही है। उन्हें पैसे कमाने की चिन्ता नही थी तो वे नाम कमाने और यश-प्रतिष्ठा प्राप्त करने के चक्कर मे पड गये । इस कारण वे सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक सस्थाओ की नेतागिरी मे उलझे रहते थे ।

जगह-जगह का प्रदूषित पानी और टाइम-बे-टाइम खाना तथा दो-दो बजे रात तक जागना । पूर्ण अनियमित दिनचर्या; न कोई खाने-पीने और सोने का निश्चित समय और विश्राम का ठिकाना । कोई कितना भी लोह पुरुष क्यो न हो, आखिर इसतरह वह कबतक स्वस्थ रह सकता

है ? शरीर तो आखिर शरीर ही है, वह कभी न कभी तो शिथिल होगा ही । तब फिर तनाव से होने वाले रोगो की तो बात ही जुदी है ।

वैसे भी आचार्यों ने जहाँ आत्मा को ज्ञानमंदिर कहा है वही शरीर को व्याधि मंदिर भी कहा है और कहा है कि शरीर के एक-एक रोम मे छियानवे-छियानवे रोग रहते है, जिनका इन प्रतिकूल परिस्थितियो मे प्रकुपित हो जाना स्वाभाविक ही है । अत ऐसी प्रतिकूलताओ से जितना बचा जा सके, बचना चाहिए । पर सेठ सिद्धोमल ने ऐसा कुछ नही किया ।

तनाव से मुक्त रहने और आत्म शान्ति प्राप्त करने का एकमात्र उपाय जो स्वाध्याय, तत्वाभ्यास और चिन्तन-मनन है, सो उसमे उनका मन लगता नही था । मन को दोष देना भी व्यर्थ है, क्योकि उन्होने मन स्वाध्याय मे और धर्म-ध्यान मे लगाने का कभी प्रयत्न भी तो नही किया ।

कोई भी काम क्यो न हो ? तत्वाभ्यास के अभाव मे तनाव तो होता ही है । सेठ सिद्धोमल आजकल मानसिक तनाव मे ही जी रहे थे, इस कारण वे उच्च रक्तचाप से पीडित तो थे ही, एक बार मस्तिष्क ज्वर जैसे भयकर रोग का आक्रमण भी उन पर हो गया ।

यह खबर नगर मे करेन्ट की तरह फैल गई । ज्योही ज्ञान, विज्ञान और सुदर्शन को ज्ञात हुआ कि आज सजू के पापा को मस्तिष्क ज्वर हो गया है और डॉक्टरो ने उन्हे पूर्ण विश्राम—कम्पलीट बेडरेस्ट की सलाह दी है तो ये सभी डॉक्टर धर्मचन्द को लेकर उनके यहाँ पहुँचे। डॉक्टर धर्मचन्द प्रसिद्ध फिजीशियन तो थे ही, धर्मात्मा और धर्ममर्मज्ञ भी थे अत. उन्होने रोग की चिकित्सा का सत्यपरामर्श तो दिया ही, साथ मे उन्हे ससार शरीर और भोगों की क्षणभंगुरता का भान भी कराया । और सब सामाजिक और राजनैतिक झझटो से मुक्त होकर केवल धर्माराधना करने की सलाह दी ।

वैराग्यमय वातावरण बनाते हुए ज्ञान, विज्ञान और सुदर्शन ने भी उन्हें मोक्षमार्ग पर अग्रसर होने को प्रोत्साहित किया ।

कह नहीं सकते सेठ सिद्धोमल ने उस विकट परिस्थिति मे कितना क्या ग्रहण कर पाया, पर देखते ही देखते उन्हें ब्रेन हेमरेज हो गया, उनके मस्तिष्क की नस फट गई । और वे ऐसे अचेत (बे-होश) हुए कि पुन· होश मे आये ही नहीं ।

उनके आँख से झरती अश्रुधारा केवल यह बता रही थी कि शायद उन्हें अपनी अमूल्य मनुष्य पर्याय निष्फल खोने का भारी पश्चाताप हो रहा है । उनका तो जो हुआ सो हुआ, पर उनके इस दुखद निधन से दर्शको के हृदय अवश्य दहल गये । फलत सभी ने अपने शेष जीवन को स्वाध्याय और सयम से सार्थक करने का दृढ़ सकल्प कर लिया । •

उतावलेपन की हद

यदि आपको इस जगत का उतावलापन देखना है तो किसी भी नगर के व्यस्त चौराहे पर खडे हो जाइये और देखिये इस दुनिया का उतावलापन। चौराहे पर मौत की निशानी लालबत्ती है, एक सिपाही भी खडा है आपको रोकने के लिये, फिर भी आप नहीं रुक रहे हैं, अपनी मौत की कीमत पर भी नहीं रुक रहे है । यद्यपि आप अच्छी तरह जानते हैं कि लालबत्ती होने पर सडक पार करना खतरे से खाली नहीं, कभी भी किसी भारी वाहन के नीचे आ सकते हैं, पुलिस वाला भी आपको सचेत कर रहा है, फिर भी आप दौडे जा रहे हैं । क्या यह उतावलेपन की हद नहीं है ? इतनी भी जल्दी किस काम की ? पर ऐसा उतावलापन कहीं भी देखा जा सकता है ।

क्या यह देश का दुर्भाग्य नहीं है कि आप अपने उतावलेपन के कारण लालबत्ती होने पर भी किसी वाहन के नीचे आकर मर न जावें – मात्र इसलिये लाखों पुलिसमैनों को चौराहों पर खडा रहना पडता है ।

अपनी मौत की भी कीमत पर जिनको इतनी भी देरी स्वीकृत नहीं, पसन्द नहीं; ऐसे अधीरिया – उतावले लोगों की समझ में यह कैसे आ सकता है कि जो कार्य जब होना होगा, तभी होगा ।

– क्रमबद्धपर्याय, पृष्ठ ६४

२४

एक ओर तो प्राणप्रिय पतिदेव के चिर-वियोग जनित असीम विरह वेदना, दूसरी ओर वैधव्य जीवन की सहगामी असख्य सभावित-असभावित विपत्तियों-आपत्तियों के कष्ट-कटको से भरी पहाड-सी जिन्दगी । एक असहाय विधवा के लिए कितना दुखद प्रसग होता है यह ? क्या इसकी कोई कल्पना भी कर सकता है ?

नई उम्र की विधवाओ को आये दिन नई-नई समस्याओ का सामना करना पडता है सो अलग । वे बात-बात मे सदेह की दृष्टि से ही देखी जाती है । न वे किसी को आँख उठाकर देख सकती हैं, न कोई उन्हें । न वे किसी से सहयोग ले सकती हैं और न किसी को सहयोग दे सकती हैं, जहाँ हँसी वही फँसी । अत जीवनभर सहज होने का तो काम ही नही । जिन्दगी भर तनाव मे जीना ही उनकी नियति है । कदम-कदम पर असुरक्षा, जहाँ/जिसका सहारा लेने की सोचे, सबसे पहले वही इज्जत लूटने को आमादा । भले ही वह रिश्ते मे कुछ भी लगती हो, और उम्र मे भी बहू-बेटी के बराबर ही क्यो न हो? पर कामियो को न रिश्तो की परवाह न उम्र का लिहाज । भूखे भेडियो की तरह चौबीसो घटे इसी ताक में रहते हैं कि कहीं किसी तरह चगुल मे फँस जाय । अपने शील की सुरक्षा का कही कोई साधन नही, सदा सशक जीवन ।

ऐसी स्थिति मे कोई लज्जाशील नारी शान्ति से रहना भी चाहे तो कैसे रहे ? कोई कितने भी फूँक-फूँक कर कदम रखे, कैसे भी बच-बच कर क्यों न चले, पर कहीं न कही चक्कर मे आने की सभावना से इन्कार भी तो नहीं किया जा सकता, क्योंकि किस के मन मे कब/क्या भाव जग जाये — यह निर्णय करना बहुत कठिन है । ऐसा

कुछ न भी घटे तो भी अफवाहो की शिकार हुए बिना न रहे । शुभ प्रसगों पर उपेक्षा का शिकार होना पडता है सो अलग । इन सब परिस्थितियो के कारण उसे अपनी मन.स्थिति को सामान्य रख पाना तलवार की धार पर चलने जैसा कठिन काम है ।

यही सब सरला और सुनीता के चिन्ता के विषय थे । वे सोचती थीं कि इन सब समस्याओ का सामना हम कर भी सकेंगी या नही?

यदि अन्य कोई आलम्बन हो, तब भी कोई राहत मिल सकती है, पर उन दोनो के आगे-पीछे भी कोई नहीं था । सास-ससुर का तो उन्होने मुँह भी नही देखा था । वे तो रेल (ट्रेन) दुर्घटना में पहले ही स्वर्गवासी हो गये थे, सताने अभी हुई नहीं थी । बिल्कुल एकाकी शून्य जीवन था उनका ।

भले ही उनके पति लम्बी बीमारी के कारण कुछ कमाई नहीं कर पा रहे थे, पर अब तक उनका साया उनके सिर पर होने से उनमे मनोबल था, उन्हें अपने सौभाग्यवती होने का गौरव था और परिस्थितियों से जूझने का साहस था । यद्यपि उनके पतियो की असाध्य बीमारी के कारण वे निराश थी, पर किसी तरह गृहस्थी की गाडी तो खिंच ही रही थी, परन्तु उनके निधन से तो उनकी रही-सही हिम्मत भी टूट गई थी, पतियो का साया उठते ही उनके साहस का भी जनाजा निकल गया था । अब वे अपने को बहुत ही असहाय और दीन-हीन अनुभव कर रही थी ।

यद्यपि विद्या, विज्ञान और डॉक्टर दम्पति जैसे सज्जन और उदार व्यक्ति उन्हें काफी ढाढस बधा रहे थे, पर वे अभी भी किंकर्तव्यविमूढ़ थीं। उनकी आँखो के आगे घनघोर अधकार ही अंधकार छाया हुआ था । जीने के लिए कहीं भी कोई आशा की किरण दिखाई नहीं दे रही थी। उनका बार-बार मूर्छित हो जाना यह बता रहा था, मानों वे सदैव के लिए मूर्छित ही हो जाना चाहती हैं, मर ही जाना चाहती हैं ।

वे सोच रही थी अब जीवित रहकर करें तो करें भी क्या ?

नारी के जीवन मे उत्साहपूर्वक जीने के दो ही तो प्रमुख कारण होते हैं – एक पति और दूसरे पुत्र-पुत्रियाँ, जिनके लिए वह अनेक कष्ट सहकर भी समर्पित रहती हैं । उनके आगे-पीछे अब कोई नही था, अत वे पूरी तरह निराश हो चुकी थी ।

× × ×

पति कैसा भी क्यो न हो, पर पति तो आखिर पति ही होता है। वह भी भारतीय नारी का । भारतीय सस्कृति मे तो वैसे भी पति को परमेश्वर कहा जाता रहा है, न केवल कहा जाता है, माना भी जाता है । अत पत्नियाँ अपने पतियो के प्रति पूर्ण समर्पित रहती हैं ।

सरला और सुनीता के पति भी उनके लिए परमेश्वर तुल्य ही थे। उनके दुर्व्यसनो को वे परमेश्वर के द्वारा ली जा रही अपनी परीक्षा ही मान रही थीं । अत उनकी बीमारी मे उन्होने उनके लिए क्या-क्या नही किया ? लोकनिन्दा की भी परवाह न करते हुए बचपन मे प्राप्त अपनी नृत्यकला और संगीतकला द्वारा मित्रो का मनोरजन करके भी आजीविका चलाई और उनकी आवश्यकताओ की पूर्ति की । उन्होने कभी भी अपने पतियो का न अनादर किया और न किसी से उनका अनादर होने दिया ।

जिन परिस्थितियो मे वे जी रही थी और जिन लोगो से वे घिरी थीं, उन परिस्थितियो मे कोई भी व्यक्ति कभी भी भटक सकता था, पथभ्रष्ट हो सकता था, पर वे कीचड मे कचन की भाति निर्लिप्त रही। रावण के घर मे रही सती-सीता की भाति उन्होंने अपने सतीत्व को सम्पूर्णत सुरक्षित रखा ।

पर आरोप लगाकर बदनाम करने वाले धोबियो की तो न तब कमी थी, न अब है, सो जो जिसके मुँह मे आया, इनके बारे मे भी खूब कहा ।'

× × ×

यद्यपि होस्टल में पढ़ते समय एक बार संजू सुनीता की ओर आकर्षित हुआ था, और उसकी सहज मद-मद मुस्कान से भ्रमित होकर उसके हसने को प्रेम का संकेत समझकर, मिलने का आमत्रण मानकर, प्रेमान्ध हो गर्ल्स होस्टल के बेकडोर से घुस कर सुनीता से मिलने की कोशिश मे वहाँ की लडकियो द्वारा कच्चे चोर की तरह पकड लिया गया था, घेर लिया गया था। उसे तभी तत्काल अपनी भूल का अहसास भी हो गया था कि — वह तो उसकी नादानी पर हँसी थी, मूर्खता पर मुस्कुराई थी ।

यद्यपि सुनीता की वह मुस्कुराहट उस समय सजू को महगी पडी थी, पर उस घटना से उसने बहुत बडा सबक सीख लिया था । तब से वह कभी किसी लडकी के चक्कर मे नही पडा था । उसने उसी समय सकल्प कर लिया था कि मै इन महिलाओ के स्वभाव को समझने मे ऐसी भूल कभी नही करूँगा ।"

सजू को इसप्रकार का कोई शौक भी नही था । उसकी आवश्यकता तो केवल उसके पिता के कारण उत्पन्न हुई प्रतिकूलता का ग़म भुलाने के लिए शराब और समय बिताने एव मनोरंजन के लिए नृत्य-नौटकी देखना, सगीत सुनना तथा यदा-कदा रमी आदि खेलने तक ही सीमित थी, पर लोग तो उसे आवारा और सुनीता के प्रेम मे पागल समझ ही बैठे थे । लोगो का समझना भी निराधार नही था । एक तो परिस्थितियाँ ही कुछ ऐसी बनी थी, दूसरे — यह जरूरी भी तो नही है कि ज्ञेयो के अनुसार ही ज्ञान हो । जैसी वस्तु हो उसका वैसा ही ज्ञान हो यह — यह कोई नियम नही है । कभी-कभी बालों मे मच्छरो के होने का भ्रम भी तो हो जाता है ।

× × ×

यद्यपि सरला और सुनीता महासती सीता की भाँति पूर्ण पवित्र थीं, उनका दामन सदा बेदाग रहा । जिसतरह रावण के यहाँ रहने से निर्दोष

सीता को भी दोषी मान लिया गया था, यही परिस्थिति सजू के साथ घटी होस्टल की घटना से सरला व सुनीता के साथ बन गई थी ।

घरो से निष्कासित और प्रताडित सजू और राजू को जब कहीं कोई अवलम्बन नहीं दिखा तो वे अपने पुराने मित्र और सहपाठी अन्नू और अज्जू के घर पहुँच गये थे ।

उन्हें मालूम था कि उन दोनो ने पढ़ाई छोड दी है तथा उनकी शादियाँ भी उन्ही सगीत और नृत्य मे निपुण सुनीता और सरला से हो गई हैं । पहले तो वे उनसे मिलने को कतराते भी रहे, क्योंकि सजू को रह-रह कर होस्टल की घटना याद आ जाया करती थी, पर अब तो उन्होने मन पर पत्थर रखकर हिम्मत कर ही ली ।

उन्होने सोचा – "चलो चलकर अपनी भूल की क्षमायाचना भी कर लेगे और अपनी पूज्या भाभियो से मिलकर उन्हें वैवाहिक जीवन की बधाई भी दे देगे ।"

उन्हें क्या पता था कि हमारा उनसे मिलना उनके लिए अभिशाप भी बन सकता है । यद्यपि उनके मन मे कोई पाप नही था, पर पापियो का पाप भाव तो प्रगट हुए बिना नही रहता । जो जैसे होते है, वे सारी दुनिया को सदैव अपने चश्मे से ही देखते हैं ।

दुनिया का भी क्या दोष ? 'दूध कलारिन हाथ लखि मद समुझे सब ताहि' मदिरा बेचने वाली कलारिन के हाथ मे भले आज दूध हो, पर दुनिया तो उस दूध को भी मदिरा ही समझती है न ? उसे क्या पता कि अब उसकी मटकी मे मदिरा नही, दूध है ।

× × ×

यद्यपि सुनीता के कौमार्य काल में सजू का झुकाव सुनीता की ओर था। वह उसके रूप-लावण्य और नृत्य-सगीत की कला पर समर्पित था । कॉलेज के समय जब वह वार्षिकोत्सव मे सगीत व नृत्य के अति सुन्दर आकर्षक कार्यक्रम प्रस्तुत करती थी तो पूरा हाल तालियो की गडगडाहट से गूँज जाता था ।

पर वह उसी कॉलेज के एक साधारण क्लर्क की कन्या थी, अत उसके पिता को जहाँ एक ओर अपनी बेटी की सफलता पर गर्व था, वहीं वह सदा सशंकित भी बना रहता था कि कहीं-कोई उसकी बेटी की ओर आकर्षित होकर मेरे लिए सिरदर्द न बन जाये ।

जब से होस्टल की घटना उसके कानो मे पडी, तब से वह और भी अधिक चौकन्ना हो गया था । अब तो वह जल्दी से जल्दी अपनी बेटी के पीले हाथ करने की चिन्ता मे हो गया था ।

अज्जू उसी के मित्र का लडका था । मित्र की मृत्यु एक ट्रेन दुर्घटना मे हो गई थी । जाना-पहचाना होने से और देखने-दिखाने मे आकर्षक व्यक्तित्व होने से अज्जू सुनीता के पिता को पसन्द था तथा अच्छा खिलाडी होने के कारण सुनीता का भी उसके प्रति सहज आकर्षण था। अत सुनीता की मर्जी से ही उसके पिता द्वारा सुनीता का विवाह अज्जू के साथ कर दिया गया ।

अज्जू का मन पढने मे कम और खेलो मे अधिक होने से वह अधिक नही पढ सका था । और धधे मे नुकसान हो जाने से अब केवल मेहनत-मजदूरी ही उसके हाथ मे रह गई थी ।

× × ×

अन्नू भी इसी रुचि का था । उसके भाग्य ने पूरी तरह साथ नही दिया। वह ग्रेजुएट होकर भी बेकारी का शिकार बना रहा । थर्ड क्लास जो था । आजकल थर्ड क्लास पास होना तो फेल हो जाने से भी बदतर हो गया है । यह जानते हुए भी अन्नू अपनी पढाई के प्रति सीरियस नही हुआ । जब नौकरी के लिए दर-दर भटकना पडा तब कही उसे अपनी गल्ती महसूस हुई । पर जब समय ही बीत गया तो फिर पीछे पछताने से भी क्या होने वाला था ।

वह नौकरी तलाशते-तलाशते जब परेशान हो गया और कही कोई ढंग की नौकरी नहीं मिली तो वह भी 'वर्क इज वर्शिप' को याद करके मेहनत-मजदूरी करने लगा ।

भले ही मेहनत-मजदूरी को लोग हल्का काम समझते हैं, इज्जत की दृष्टि से नही देखते, पर मेहनत-मजदूरी पराई गुलामी से तो लाखगुणी अच्छी ही है ।

बस, यही सोचकर अपने मन को समझा-बुझाकर वे दोनो अपनी आजीविका आराम से कर रहे थे, पर दुर्दैव को यह भी रास नही आया।

जब सुनीता और सरला ने अन्नू और अज्जू के कहने पर अपने पतियो के पुराने मित्रो के नाते सजू और राजू को अपने घर मे आश्रय दिया, तब तो वे कुछ समझ न सकीं कि इनको आश्रय देने का परिणाम इतना दु खद हो सकता है । और जब समझ मे आया तब तक बात बहुत आगे बढ चुकी थी, पानी सिर पर से गुजर चुका था । अत अब उनका हटाना सभव नही रहा ।

सजू और राजू के साथ रहने से अज्जू और अन्नू को भी सिगरेट और शराब पीने की आदत पड गई । पहले तो वे होली-दिवाली यदा-कदा शौकिया पिया करते थे, पर अब तो रोज-रोज पीने-पिलाने से व्यसन बन गया था, अत अब पिये बिना चैन नही पडती थी । इस कारण अब उन्हे अलग-अलग करना आसान काम नहीं था ।

ये दुर्व्यसन सेवन करने वाले अपने सगे माता-पिता, भाई-बहिन, पुत्र और पत्नी का साथ भले ही छोड दे, पर दमभाई का साथ नही छोड सकते। एक साथ बैठकर गाँजा-चरस, बीडी-तम्बाकू, भग और मदिरापान करने वाले दमभाई के आगे सगे भाई की इन्हें कोई कीमत नही होती ।

यद्यपि सजू व राजू का साथ सुनीता व सरला को ही सबसे अधिक महगा पडा, क्योंकि एक तो उनके पति इनके साथ अधिक मात्रा मे शराब और सिगरेट पीने से ही मौत के शिकार हुए । दूसरे इनके सम्पर्क मे रहने से उनकी बदनामी हुई, सो अलग । पर वे करें तो करें भी क्या ?

पहले संजू और राजू इनकी शरण मे आये और बाद में अन्नू और अज्जू उनके अनुराग मे ऐसे फसे कि अब ये स्वय उनको छोडने की स्थिति मे नही रहे । अत सुनीता एव सरला न चाहते हुए भी अपने पतियों को अन्नू और अज्जू से जीते जी अलग नही कर सकीं ।

× × ×

सजू और राजू को दिन-रात सुनीता व सरला के घर आते-जाते, रात-रात भर गपशप लगाते, तथा खाते-पीते और वहीं उठते-बैठते एव सोते देखकर समाज की दृष्टि में ये दोनो तो दुराचारी बन ही गये, साथ मे सुनीता और सरला भी इनकी वजह से बिना कारण बदनाम हो गई ।

समाज क्या जाने इनके अन्तरग को, पर ध्यान रहे — बाप बेटे को धोखा दे सकता है, बेटा बाप को चकमा दे सकता है, पति पत्नी से झूठ बोल सकता है, पत्नी पति से बात छुपा सकती है, पर मित्र-मित्र के साथ दगा नही करता । चोर-चोर से कुछ भी छुपाता नही है, डाकू-डाकू को कभी धोखा देता नही है । जुआरी जुआरी के साथ कभी बेईमानी करता नही है, व्यापारी वर्ग मे यह कौन नही जानता कि नम्बर दो का करोडो का धन्धा केवल परस्पर के विश्वास के भरोसे ही चलता है । पक्की लिखा-पढी करने वाले भले ही फेल हो जाएँ, पर ये लोग आज तक तो कभी फेल होते देखे नही गये ।

इसी तथ्य के आधार पर छाती ठोक कर यह कहा जा सकता था कि सजू और राजू का व्यवहार सरला और सुनीता के साथ भाई-बहिन के पवित्र प्रेम की तरह था, उन्होंने उन्हें कभी भी बुरी निगाह से देखा तक नही था, क्योंकि अब वे उनकी प्रेमिकाएं नहीं, बल्कि मित्रों की पत्नियाँ जो थी ।

पर, समाज को कौन समझाये कि ये पवित्र हैं और समाज भी ऐसे कैसे मानता कि इन्होने ऐसा कोई पाप नहीं किया । समाज का

सोचना एक अपेक्षा से सच भी हैं, क्योंकि काजल की कोठरी मे रहकर कोई उसके दाग से कैसे बच सकता है ?

पर वे भी क्या करें ? उनके पास सीता सती जैसा कोई अग्नि-परीक्षा देने का उपाय भी तो नही है । वे सीताजी जैसा साहस कर भी नही सकती थीं, क्योंकि सभव है सीताजी जैसी पवित्रता होने पर भी सीताजी जैसा पुण्य उनके पास न हो और अग्नि का जल पवित्रता से नही पुण्य से होता है, अन्यथा पवित्रता तो पाँचो पाडवो के भी कम नही थी ।

पाँचो ही पाँडव पच महाव्रत के धारी थे, जिनमे तीन तो तद्‌भव मोक्षगामी भी थे । उनको भी अग्नि से तप्त लाल-लाल दहकते लोहे के गहने पहना दिए गये थे । समझ लो कि उनके पास सीता जैसा पुण्य नहीं था, पवित्रता तो सीता से भी अनन्तगुणी अधिक थी । इसके सिवाय और कोई उपाय था नही । अत चुपचाप बदनामी सहने मे ही उन्हें सार दिखाई दिया ।

पर, समाज भी तो आखिर समाज ही है, वह कब पीछे रहने वाला था । अन्नू और अज्जू के दिवगत होने पर जैसे-जैसे ज्ञान, विज्ञान और विद्या ने उन्हे सन्मार्ग मे लगाकर शान्ति से धर्म साधन करते हुए गौरव से जीने को तैयार किया, वैसे-वैसे ही समाज ने उनका विरोध करना प्रारंभ कर दिया । उनका बहिष्कार करने तक की योजना बन गई।

औरत औरत की जितनी बडी शत्रु होती है, शायद उतना बडा शत्रु उसका और कोई नहीं हो सकता ।

औरतों की ओर से काना-फूसी प्रारभ हो गई — 'साँच को आँच कहाँ ।' यदि सती है तो हाथ मे आग के अगारे लेकर दिखाये । अपने आप दूध का दूध और पानी का पानी हो जायेगा ।

समाज के सरक्षक सेठ सिद्धोमल भी औरतो का रुख देखकर उनकी हाँ मे हाँ भरने लगे । उन्हें उधर झुकता देख समाज के अध्यक्ष, मंत्री आदि पदाधिकारियो का मत भी उन्हें ही मिल गया ।

इस तरह एक ऐसा माहौल बन गया, मानो अग्नि परीक्षा दिए बिना समाज मे उनका जिन्दा रहना असभव हो जायेगा ।

सजू और राजू भी यह सब तमाशा देख रहे थे । यद्यपि सजू भी सामाजिक नेताओं के तीर का निशाना बन सकता था, पर बडे बाप का बेटा होने से उसकी तरफ उगली उठाने की किसी की हिम्मत नहीं हो रही थी।

संजू से चुप नहीं रहा गया, अत वह समाज के सामने आता हुआ बोला -- "चलो हमे मजूर है सुनीता और सरला की अग्नि परीक्षा। और उन्हें दोषी बनाने मे उनसे भी कहीं अधिक हमारा दोष है । अत उनसे पहले हम भी अपनी अग्नि परीक्षा देगे ।"

यह सुनते ही सजू के पिता सेठ सिद्धोमल घबडाये । अब उन्होंने पैतरा बदलने की कोशिश की, पर सजू ऐसा अडा कि पलटने का नाम ही न ले । अब सबकी बोलती बन्द । पर संजू ने पुन घोषणा की कि कल इसी समय यहीं पर अग्नि परीक्षा का कार्यक्रम होगा ।

रातभर हलचल मची रही, इस कार्यक्रम के निरस्त करने की नाना योजनाये बनती रहीं । सरला व सुनीता की हर बात मानने को समाज राजी हो गया, पर सजू और राजू अपनी बात पर अडे रहे ।

उनका कहना था कि जब सुनीता व सरला -- दोनो ही पूर्ण पवित्र हैं, तो फिर वे किसी की कृपा पात्र क्यो बनें ? जीवन भर औरतो द्वारा टीका-टिप्पणी की निशाना क्यो बनी रहें ? एक बार अग्नि परीक्षा मे खरी उतर कर क्यों न समाज मे गौरव से और इज्जत से रहें ? अत उन्होने किसी की कोई बात नही मानी ।

अन्ततोगत्वा, सबेरा होने पर अग्निपरीक्षा की तैयारियाँ प्रारंभ हुईं। अग्नि की भट्टी जला दी गई, पर सीता की अग्निपरीक्षा से इस अग्निपरीक्षा की कार्यशैली मे थोडा बहुत सुधार हो गया था, सीताजी को तो अग्निकुण्ड मे प्रवेश करना पडा था, पर यहाँ आग के अंगारों को केवल हाथों मे लेना था; ताकि पापी का पाप तो खुल जाये और जान जोखिम में

न पडे । काश । उस जमाने मे भी कोई ऐसा ही उपाय सोच लेता तो । खैर ।

जब पूरी तैयारी हो चुकी और सभी समाज एकत्रित हो गया तो सजू ने कहा समाज के संरक्षक, अध्यक्ष, महामत्री और मत्री चारो व्यक्ति सामने आवें और क्रम-क्रम से इन अगारो को अपने हाथ से उठा-उठाकर हम चारों के हाथो पर रखे ।

सभी एक-दूसरे का मुँह ताक रहे थे, कोई भी आगे आने को तैयार नही था ।

एक ने कहा – "हाथ से अगारे उठाकर ?"

दूसरे ने कहा – "ठीक ही तो है, पाप तो उन्होने किया है, पचो ने थोडे ही किया है, जलेगे तो वे जलेगे, पच क्यो जलेगे ?"

जब देखा कि कोई भी आगे नही आ रहा, सभी मुँह लटकाये खडे हैं, तब फिर सजू ने जोर-जोर से चिल्ला कर कहा – "छोडो सरक्षक, अध्यक्ष और मत्री-महामत्री आदि पचो को । समाज मे से जो भी आना चाहे, आगे आवे और हमारे हाथो पर अपने पवित्र हाथो से आग के अगारे रखकर हमारी परीक्षा ले ले ।

सभी एक-दूसरे का मुँह देख रहे थे, कोई भी आगे नही आया। इस तरह सजू की बुद्धिमानी से सुनीता और सरला बिना अग्नि परीक्षा दिए ही पवित्र सिद्ध हो गयीं ।

× × ×

अब तक सुनीता और सरला सम्पूर्ण रूप से सामान्य हो चुकी थी और उनमे जीने के प्रति नया उत्साह का सचार हो गया था। अब उनकी अन्तिम मंजिल केवल स्त्री धर्म निभाने तक ही सीमित नही रही थी, बल्कि अब उन्हें मोक्ष की मंजिल तक पहुँचने की तैयारी करनी थी ।

उन्हें समझ मे आ गया था कि मृत्यु के उपरान्त ही अपनी जीवन यात्रा समाप्त नहीं हो जाती । यदि स्वर्गीय पतिदेव की मोह-ममता

मे पडकर उन्हें ही दिन-रात स्मरण कर-कर के आर्तध्यान करती रहीं तो इससे उनको तो कोई लाभ होगा नहीं, अपना ही भविष्य अधकारमय बन जायेगा । और न जाने कितने जन्म-जन्मान्तरो तक ये जन्म-मरण, भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, सयोग-वियोग के अनन्त दुख भोगने पडेंगे । अत दैवयोग से जब ऐसा बनाव बन ही गया है तो क्यो न अब अपने इस शेष जीवन को स्व-पर कल्याण मे समर्पित कर दिया जाय?

दिल दहलाने वालीं, रोमाचित करने वालीं, बडी-बडी अविस्मरणीय घटनाएँ घट जाती है, पर धीरे-धीरे वे भी काल कवलित हो जाती हैं, काल के गाल मे समा जाती हैं, समय सबको अपने मे समा लेता है ।

ज्यो-ज्यो समय बीतता गया, वे सहज होती गई थी । फिर उन्हें ज्ञान और विज्ञान के सहयोग से तत्त्वज्ञान का सबल भी मिल गया था। अब उनके सामने वर्तमान पर्याय के क्षणिक वैधव्य दुख की तुलना मे अनन्त भविष्य का अपार ससार सागर पार करने का कार्य महत्त्वपूर्ण लगने लगा था । अत अब उन्होने वर्तमान दुख को गौण करके उसी महायात्रा की तैयारी मे जुट जाने का मानस बना लिया ।

एक दिन सुदर्शन, ज्ञान, विज्ञान एव विद्या ने परस्पर विचार करके यह निर्णय किया कि जिनवाणी के प्रचार-प्रसार की कोई ऐसी ठोस योजना बनाई जावे, जिससे घर-घर मे जिनवाणी पहुँचाई जा सके और घट-घट मे बिठाई जा सके ।

इसके लिए डॉक्टर दम्पति तो सम्पूर्णत निस्वार्थ भाव से समर्पित है ही, सजू और राजू का पूरा-पूरा सहयोग भी हमे मिल ही जायेगा। सुनीता और सरला को भी अब इसी काम मे प्रशिक्षित कर लिया जावे, ताकि उनकी सगीत कला का भरपूर सदुपयोग इस दिशा में हो सके, एतदर्थ इन सबकी एक मीटिंग अगले रविवार को बुलाई जावे । इस निर्णय के साथ सब अपने-अपने घर चले गये । •

२५

प्रो ज्ञान ने एक दिन विचार किया कि – "शुभ काम में देर क्यो ? शुभ काम तो जितना जल्दी सभव हो सके, प्रारंभ हो जाना चाहिए। ज्यो-ज्यों जल्दी करने की सोचते हैं, त्यो-त्यो देर हो रही है । एक-एक करके तीन रविवार तो बातो-बातो मे यो ही निकल गये । कभी किसी के यहाँ शादी है तो कभी किसी का स्वास्थ्य ठीक नहीं, कभी किसी को जरूरी काम से बाहर जाना है तो कभी किसी के घर मे मेहमान आ गये ।

किसी मनीषी ने ठीक ही कहा है कि – 'शुभ कामों मे विघ्न-बाधाये कुछ अधिक ही आती है ।' अस्तु अब तक जो हुआ सो हुआ, पर अब इस काम के लिए विशेष सक्रिय होकर आगे आना पडेगा और किसी की आशा/अपेक्षा एव प्रतीक्षा किए बिना ही काम का शुभारंभ कर देना होगा, तभी कुछ बात बन सकेगी ।

समाज को इकट्ठा करना मेंढ़क तौलने से कम कठिन नहीं है । जब तक एक को तराजू पर बिठाओ, तब तक दूसरा उछल कर नीचे कूद जाता है, दूसरे को बिठाओ तो तीसरा उछल जाता है । उनका यही सिलसिला चलता रहता है, उन्हें कोई कैसे तौले ? तराजू पर कैसे इकट्ठा करें ? यही स्थिति समाज की है, ऐसे तो कभी कोई इकट्ठे होगे नही ।"

यह विचार आते ही प्रो ज्ञान उसी समय रविवार के सवेरे छ बजे ही विज्ञान व सुदर्शन दोनो के पास दौडा-दौडा गया और दोनो से अपने मन की व्यग्रता व्यक्त करते हुए बोला – "देखो भाई ! अब बात बर्दाश्त के बाहर हो गई है । अब आज तो हर हालत मे बैठक होना ही है । भले कोई आये न आये । इस समय मुझे

अपने पिताजी की वह बात याद आ रही है, जिसे वे ऐसे अवसरों पर अक्सर कहा करते थे ।"

विज्ञान ने जिज्ञासा प्रकट की – "वह क्या ?"

ज्ञान ने बताया – "जब भी कोई किसी महत्त्वपूर्ण काम को कल पर टालने की कोशिश करता था तो उनके मुँह पर यह कहावत रखी ही रहती थी – 'अरे भाई ? करलो सो काम और भजलो सो राम'।

उनके कहने का तात्पर्य यह होता था कि – 'किसी भी शुभ काम को कल पर मत टालो । क्या भरोसा इस जीवन का ? इस जीवन मे कल आयेगा भी या नही ? यह कोई नही जानता, अत शुभ काम और आत्माराम की आराधना तो जितने जल्दी बने, उतनी ही जल्दी कर लेना चाहिए ।'

इस सदर्भ मे उनका एक अत्यन्त प्रिय भजन भी था, जिसे वे समय-समय पर गुनगुनाया करते थे । वह भजन इस प्रकार है –

"क्षण भगुर जीवन की कलियाँ, कल प्रातःकाल खिली न खिली,
यमराज कुठार लिए फिरता, तन पर वह चोट झिली न झिली ।
क्यो करती है तू कल-कल, कल यह श्वास मिली न मिली,
भज ले प्रभु नाम अरी रसना । फिर अन्त समय मे हिली न हिली ।।"

प्रो ज्ञान भावविभोर होकर गा रहा था और विज्ञान व सुदर्शन मत्रमुग्ध होकर सुन रहे थे ।

ज्यो ही प्रो ज्ञान का भजन पूरा हुआ तो विज्ञान ने गद्‌गद्‌ होकर कहा – "भाई । भजन तो बहुत ही मनभावन और सचेत करने वाला है । सीधी मन पर चोट करता है । वस्तुत हमें किसी भी काम को कल पर कतई नहीं छोडना चाहिए । आज मीटिंग हो ही जावे। जो आयेगा उसका स्वागत है और जो नहीं आ पायेगा, उससे फिर कभी क्षमायाचनापूर्वक परामर्श कर लेगे ।"

सुदर्शन ने विज्ञान की बात का समर्थन करते हुए कहा – "सबका एक साथ एकत्रित होना तो वैसे भी संभव नहीं है । जिसे रुचि नहीं

है, वे घर पर बेकार बैठे-बैठे गपशप करते रहेंगे, पर मीटिंग मे नहीं आयेगे । भाई। यह सब तो रुचि का खेल है । जिस काम में जिसकी रुचि है, उस काम के लिए तो उसके पास समय ही समय है और जिस काम मे रुचि नही है, उसके लिए बहानो की क्या कमी ? अत सभी के आने की आशा मे समय खराब करने की आवश्यकता नही है ।

विज्ञान ने कहा – "ज्ञान, बस तुम तो नोटिस निकाल दो और रामू को भेजकर सब सदस्यों के हस्ताक्षर करा लो । यदि चाहो तो तागा या रिक्शा द्वारा माइक से, ध्वनि विस्तारक यत्र से मुहल्ले-मुहल्ले मे मीटिंग की घोषणा करा दो । उससे सबको सूचना तो हो ही जायेगी। फिर उनकी मर्जी पर छोड दो । सयोग से आज समाज मे किसी के यहाँ कोई पारिवारिक आयोजन भी नही है, अत जिन्हें आना है, वे तो आ ही जावेगे ।"

× × ×

पुण्यात्माओ के मनोरथ तो प्राय पूरे होते ही है । ज्ञान और विज्ञान ने जो यह निश्चय कर लिया था कि वे इस रविवार को तो बैठक करके ही दम लेगे । वे उसमे पूर्ण सफल रहे ।

सौभाग्य से इस मीटिंग मे लगभग सभी आमन्त्रित विशेष व्यक्ति तो आ ही गये थे । घोषणा द्वारा प्राप्त एक साधारण-सी सूचना के आधार पर अन्य लोग भी अच्छी सख्या मे यथासमय उपस्थित हो गये।

प्रो ज्ञान ने बैठक बुलाने का उद्देश्य बताते हुए अपने सबोधन मे कहा – "बधुओ ! आज की यह बैठक किसी सामाजिक समस्या को लेकर नहीं बुलाई गई है और न किसी व्यक्ति विशेष की समस्या सुलझाने हेतु ही आप लोगो को कष्ट दिया गया है । आज की यह बैठक एक ऐसे पवित्र उद्देश्य को लेकर आयोजित की गई है, जिसमे हम सबका हित है ।

देखिए, हम लोग छोटे से वर्तमान मानव-जीवन को सुखपूर्वक जीने के लिए क्या-क्या नहीं करते ? दिन-रात एक किए रहते हैं। केवल आर्थिक व्यवस्था को व्यवस्थित रखने के लिए ही तो हम अपनी संतान को बीस-बीस वर्ष तक कठोर परिश्रम करके इंजीनियरिंग, डाक्टरी, वकालात, सी ए आदि की पढ़ाई पढ़ाते हैं । बताइये धनार्जन के सिवाय इस पढ़ाई का और क्या उपयोग है ?

यह तो आप जानते ही हैं कि मनुष्य और पशु में क्या अन्तर है ? खाना, सोना, डरना और विषयवासना आदि तो मनुष्यों और पशुओ मे समान ही होते हैं इनसे तो मनुष्य मे कुछ बडप्पन या विशेषता है नही । हाँ, मनुष्य जीवन में एक धर्म से ही विशेषता आ सकती है, जो बेचारे पशुओ को सरलता से नसीब नहीं होती । यदि मानव-जीवन मे धार्मिकता न हो तो धर्मविहीन मानव तो पशु तुल्य ही है । एक सस्कृत कवि ने कहा भी है —

आहारनिद्राभयमैथुनंच, सामान्यमेतत् पशुभिः नराणाम् ।
धर्मोहितेषामधिको विशेषः धर्मेण हीनः पशुभिः समान ॥

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त तो पतित (पापी) जनो पर व्यंग करते हुए यहाँ तक लिख गये हैं कि — 'पापी मनुष्यो को पशु कहकर पशुओ का अपमान क्यो करते हो ? अरे पापी पुरुषों से तो पशु बहुत अच्छे है, वे तो बेचारे अपने नैसर्गिक नियमों का भी उल्लघन नहीं करते' देखिये न उन्ही के शब्दो मे :—

पतित जनों में हम करते है, बहुधा पशुता का आरोप ।
किन्तु पशु भी करता है क्या निज निसर्ग नियमों का लोप ? ॥
मैं मनुष्यता को सुरत्व की जननी भी कह सकता हूँ ।
किन्तु पतित को पशु कहना मैं कभी नहीं सह सकता हूँ ॥

इससे स्पष्ट है कि धर्माचरण के बिना मनुष्य को मनुष्य कहलाने का भी अधिकार नही है, अत आज हम एक ऐसा सगठन बनाने को एकत्रित हुए हैं, जिसके द्वारा हम स्वय धर्माचरण सीखे और जन-जन

मे धर्म का प्रचार-प्रसार कर सकें । धर्म के बिना प्राणी कभी सुखी नहीं हो सकता । कहा भी है –

धर्म करत संसार सुख, धर्म करत निर्वान ।
धर्म पन्थ साधे बिना, नर तिर्यंच समान ॥

जिस माया और काया को आप केवल एक जन्म के सुख का साधन मानते हैं, उसे प्राप्त करने और ठीक रखने के लिए कितना और क्या-क्या करते हैं – कुछ पता है आपको ? केवल पैसा कमाने के लिए पच्चीस वर्ष की उम्र तक प्रतिदिन सोलह-सोलह घंटे परिश्रम करके अर्थकरी विद्या पढ़ते हैं या नही ? क्या डॉक्टरी, इंजीनियरिंग, चार्टर एकाउंटेन्सी और विजनिस मैनेजमेट जैसी तकनीकी विद्याये विशुद्ध अर्थकरी नहीं हैं ?

और इनके पढ लेने मात्र से थोडे ही धन आने लगता है, इन सबके साथ पूरे यौवन का क्रीम टाइम भी इसी रोटी, कपडा और मकान की समस्या हल करने मे बीतता है, तब कहीं कुछ हाथ लगता है।

उसमे भी यदि भाग्य ने साथ दिया तो, अन्यथा इतना करने के बाद भी जीवनभर धक्के खाने पडते है । खैर । जो भी करते हो, करो । इस विषय मे हमे कुछ नही कहना है ।

पर, हम यहाँ यह अवश्य पूछना चाहते है कि – "आप और हम सब यदि एक जनम के लिए इतना सब करते है तो हमे अपने आगामी अनन्त जन्मो को सुख पूर्वक बिताने के लिए भी कुछ करना चाहिए या नहीं ?"

प्रो ज्ञान के इस प्रभावशाली प्रेरणादायक सम्बोधन भाषण को सुनकर सभी विचार मे पड गये । उनके चेहरो से ऐसा लग रहा था कि मानो वे कह रहे हों कि – 'प्रो ज्ञान की बात मे दम तो है, यह भाषण कोरा भाषण नहीं है । उसमे उसकी जन-कल्याण की पवित्र भावना का पुट भी है ।

वस्तुत. हमने तो अब तक इस दिशा मे कभी सोचा भी नहीं था, हम तो केवल खाने-कमाने मे ही ऐसे मगन हो गये थे मानो यही हमारी अन्तिम मंजिल है । इसके आगे कुछ गतव्य या राह ही नही है ।'

एक सदस्य ने विनम्रता से कहा – "भाई । बात तो तुमने ठीक ही कही है, पर धरम ही तो सारे झगडों की जड है । देखो न आज मदिर, मस्जिद और गुरुद्वारे, जो धर्मस्थल कहलाते हैं, सब युद्धस्थल बने हुए हैं । इससे तो हम अधार्मिक लोग ही अच्छे हैं न ?"

"नहीं भाई, ऐसी बात नहीं है । झगडे धर्म से नहीं, धर्मान्धता से होते हैं । धर्म तो वीतरागता का दूसरा नाम है । क्या वीतरागी भी कभी किसी से झगडा-फसाद करते हैं ? धर्म की बाते तो बहुत लोग करते हैं, पर धर्म के रहस्य को बहुत कम लोग जानते हैं । धर्म की यथार्थ स्थिति को लोग जाने-पहचाने, इसके लिए ही तो आज हम यह सगठन बना रहे हैं ।

वैसे देश मे न तो युवाओ की कमी है और न युवा सगठनो की। पर वे सब सगठन शासन और समाज के लिए सिरदर्द बने हुए हैं, समस्या बने हुये हैं । नित्य नये आन्दोलन छेडना, तोड-फोड करना, बसो, रेलो और कल-कारखानो मे आग लगाना, लाखो की सख्या मे जन-धन की हानि करना-कराना ही जिनका काम है ।

परन्तु यह सगठन जनता मे अशान्ति की आग लगाने वाला नहीं, वरन् शान्ति, समता और अहिंसकक्रान्ति की शीतल अमृतधार बहाकर उस अशान्ति की आग को बुझाने वाला सगठन होगा, तोड-फोड करने वाला नहीं, धर्मस्नेह के धागे से समाज को एव राष्ट्र को जोडने वाला सगठन होगा ।

यह जन-जन मे धार्मिक भावना भरने वाला, दुराचार से हटाकर सदाचार के मार्ग पर लाने का रचनात्मक काम करने वाला संगठन होगा।

इस संगठन ने सरक्षक के रूप मे डॉ धर्मचन्द जैसे समाज के सेवाभावी वयोवृद्ध व्यक्तियों का मार्गदर्शन तथा आशीर्वाद प्राप्त करने का लक्ष्य भी रखा है, क्योंकि काम करने के लिए जहाँ युवाओं का जोश चाहिए वहाँ वृद्धों का होश भी चाहिए । युवकों में जोश तो बहुत होता है, पर होश की कमी रहती है । इसके विपरीत बुजुर्गों में होश बहुत

है, वे सोचते बहुत है, परन्तु उनकी भुजाओं में अब काम करने की ताकत नहीं रही । अतः युवकों का जोश और वृद्धों का होश मिलकर समाज में नई चेतना लाने वाला यह संगठन अपने उद्देश्य में अवश्य सफल होगा – ऐसा हमारा पूर्ण विश्वास है ।

हमारे इस सगठन मे एक महिला विभाग भी रहेगा, जिसका नेतृत्व हमारी भाभी श्रीमती विद्या, सुनीता एव सरला करेगी ।"

प्रो ज्ञान ने बैठक बुलाने का उद्देश्य बताकर अगले वक्ता को बुलाते हुए कहा – "अब मै आदरणीय विद्या भाभी से भी विनम्र प्रार्थना करता हूँ कि वे भी अपने विचार रखे ।"

"आदरणीय पिता तुल्य आज के अध्यक्ष डॉ धर्मचन्दजी, धर्मबन्धु प्रो ज्ञानजी, मि सुदर्शन एव उपस्थित सज्जनो, और माता बहिनो ।
"मै इस अवसर पर केवल इतना कहना चाहूँगी कि ससारी प्राणियो को इस ससार मे परिभ्रमण करते हुए यह दुर्लभ, अमूल्य मनुष्य पर्याय, उत्तम कुल और जिनवाणी सुनने-समझने का सौभाग्य बडी मुश्किल से मिलता है । यदि यह एक बार हमारे हाथ से यो ही खाते-कमाते और रोते-गाते निकल गया तो इसका बार-बार मिलना कठिन ही नही, असभव है ।

इस सदर्भ मे कविवर दौलतरामजी के छहढाला ग्रथ की निम्नांकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य है । वे लिखते हैं –

यह मानुष पर्याय सुकुल सुनबो जिनवाणी,
इह विधि गये न मिले सुमणि ज्यों उदधि समानी ।

इसलिए मै तो केवल इतना ही निवेदन करना चाहती हूँ कि – 'यह सगठन समय-समय पर जो भी आयोजन करे, कार्यक्रम बनाये, हम उसमे समर्पण भाव से अपना सहयोग दे और इसके धार्मिक आयोजनो का भरपूर लाभ उठाये ।

जीवन मे यदि कुछ प्राप्त करने लायक हैं तो वह केवल धर्म ही प्राप्त करने लायक है । और तो हम सब कुछ अनेक बार प्राप्त कर

चुके हैं, यदि नही किया है तो एक धर्माचरण नहीं किया है, अन्यथा वर्तमान मे हमे ये दु खद दिन नही देखने पडते । यह सगठन अपने उद्देश्य मे सफल हो इस शुभकामना के साथ मै यह विश्वास दिलाना चाहती हूँ कि मेरा इसमे तन-मन-धन से पूरा सहयोग और समर्पण रहेगा । मुझसे जो कुछ भी बन सकेगा, मैं इसके लिए करती रहूँगी।'

विद्या जैन की इस मार्मिक अपील ने धर्म से सर्वथा अपरिचित व्यक्तियो के हृदय मे भी जैन तत्व को जानने-समझने की जिज्ञासा एव धर्म को धारण करने की रुचि के बीज बो दिए ।

× × ×

एक जिज्ञासु ने विनम्रतापूर्वक कहा – "धर्माचरण की बाते तो सब करते है, पर धर्म क्या है और कैसे प्राप्त होता है ? यह आज-तक समझ मे नहीं आया । क्या आप मे से कोई हमे सक्षेप मे और सरल भाषा मे धर्म का स्वरूप समझाने की कृपा करेंगे ?"

प्रो ज्ञान ने कहा – "हाँ । हाँ ।। आपकी जिज्ञासा को तृप्त करने की कोशिश करना हमारा कर्त्तव्य है । हम आपको धर्म का यथार्थ स्वरूप समझाने का पूरा-पूरा प्रयत्न करेगे, पर कह नहीं सकते, अभी एकाध घण्टे मे कितना/क्या समझा पायेगे, और आप भी कितना/क्या ग्रहण कर पायेंगे ? इसके लिए तो आपको कुछ दिन तक नियमित रूप से प्रतिदिन एक घंटे का समय निकालना होगा, तब कहीं धर्म का सही स्वरूप समझ मे आ पायगा। यदि आप समय पर आ सकें तो हम तो कल से ही धर्म के स्वरूप को विस्तार से समझाने के लिए एक प्रौढ़ कक्षा का कार्यक्रम प्रारंभ कर सकते हैं । प्रवचन तो प्रतिदिन प्रात एव रात्रि में होता ही है, प्रवचनो मे भी आप सादर आमन्त्रित हैं ।"

प्रो ज्ञान ने राजेश शास्त्री को आह्वान करते हुए कहा – "अब मै युवा विद्वान पण्डित राजेश शास्त्री, जिन्हें हम प्यार से 'राजू' कहते हैं, से अनुरोध करता हूँ कि वे आगे आये और संक्षेप में बोल-चाल की भाषा मे धर्म का मर्म समझाने का कष्ट करें ''

पण्डित राजेश शास्त्री का सामान्य परिचय देते हुए प्रो ज्ञान ने आगे कहा – "पण्डित राजेश शास्त्री के विषय मे मैं कहना तो बहुत कुछ चाहता था, पर समयाभाव के कारण अभी मात्र इतना बता कर संतोष कर रहा हूँ कि शास्त्रीजी हमारे श्रद्धेय डॉक्टर धर्मचन्द जैन के ही होनहार सुपुत्र और हमारे बचपन के सहपाठी एव मित्र हैं । जो कभी राजू के नाम जाने-पहचाने जाते थे । इन्होने पाच वर्ष पूर्व जैन सिद्धान्त महाविद्यालय मे प्रवेश लिया था । महाविद्यालय के वातावरण से इनके जीवन का पूर्ण कायाकल्प तो हुआ ही, इन्होने राजस्थान विश्वविद्यालय से जैनदर्शन शास्त्री परीक्षा मे प्रथम श्रेणी मे प्रथम स्थान प्राप्त कर अपने माता-पिता को ढेरों खुशियाँ भी दी और हमारे नगर का भी गौरव बढाया है ।"

पण्डित राजेश शास्त्री ने अपने वक्तव्य मे स्वामी समन्तभद्राचार्य के रत्नकरण्डश्रावकाचार मे आये धर्म के स्वरूप का उल्लेख करते हुए कहा – "सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र को ही तीर्थंकर भगवान ने धर्म कहा है और इससे उल्टे मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र अधर्म हैं । धर्म जीवो को ससार के दु खो से निकाल कर उत्तम सुख मे पहुँचाता है और अधर्म प्राणियो को ससार के दु खसागर मे डुबा देता है ।

यहाँ कोई कह सकता है कि – 'आप यह क्या कह रहे हैं ? यह तो हम आपसे पहली बार सुन रहे है । ये सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र क्या वस्तु हैं ? और इनसे धर्म क्या सम्बन्ध है ?

हमे तो हमारे माता-पिता और पूर्वजो ने यह बताया था कि प्रतिदिन प्रात काल सूर्योदय के पूर्व उठते ही नौ बार णमोकारमत्र पढ़ना चाहिए, अपने इष्ट देव का स्मरण करना चाहिए, नित्यकर्म से निवृत्त होकर मदिर जाकर अपनी सुविधानुसार दर्शन-पूजन भी करना चाहिए । धार्मिक पर्वों पर विशेष पूजन-पाठ करना चाहिए । समय-समय पर शास्त्रो मे बताये अनुसार व्रत-उपवास, दान-पुण्य एव तीर्थयात्राओ के कार्यक्रम भी बनाते

रहना चाहिए । सो वह सब हम अपनी शक्ति व भक्ति के अनुसार बराबर कर रहे हैं ।

हमारे पूर्वज यह भी कहा करते थे कि यह सब करते हुए न्याय-नीति से अपने गृहस्थोचित कर्त्तव्यों का पालन करना भी गृहस्थों का धर्म है । आत्मा की साधना-आराधना करना तो साधु-सतो का काम है।

हमारी कुल परम्परा मे तो यही सब पीढ़ीयों से होता आया है और हाँ उन्होने यह भी बताया था कि जैन लोग रात्रिभोजन नही करते, अनछना पानी काम में नही लेते, जमीकन्द नहीं खाते, मद्य-मास-मधु का सेवन नही करते, कोई दुर्व्यसन भी जैनी मे नही होता । जो लोग सामान्य सदाचार का पालन नही करते वे तो नाममात्र के भी जैन नहीं है ।

उनका यह भी कहना था कि – जैन कोई जाति नहीं है, जो इन्द्रियो और मोह-राग-द्वेष को जीतता है, अहिंसात्मक आचरण करता है, वही जैन है । इसलिए हम अपनी कुल परम्परा से चली आई इन सभी धार्मिक क्रियाओ को दृढ़ता के साथ पालन करते हैं । हमारे पूर्वजों ने तो हमे यही सब बताया है, पर आप तो हमे धर्म का स्वरूप कुछ अलग ही बता रहे हैं। हमारी इन क्रियाओं मे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की बात तो कहीं आई ही नहीं है ? हम जो करते हैं, क्या वह धर्म नहीं है ?'

पण्डित राजेशजी ने बहुत प्रेमपूर्वक उन्हें समझाया – "नहीं भाई। ऐसी बात नहीं है, आप जो भी करते हैं, ज्ञानी धर्मात्मा लोग भी वही सब करते हैं । बाह्य क्रियाओं मे कोई अन्तर नहीं होता है, फर्क होता है समझ-नासमझ मे । समझ पूर्वक की गई यही सब क्रियायें सार्थक हो जाती हैं और नासमझी मे की जाने से यही सारा श्रम निरर्थक हो जाता है । अत· हम जो कुछ भी करें, समझपूर्वक करें ।

देखो, जिसप्रकार किसान खेत को साफ करे, जोते, नींदे, गोड़े, पानी भी देवे, बाड भी लगाये, पूरा परिश्रम करे और बीज न डाले तो क्या, उस खेत में धान की फसल उगेगी ?"

जिज्ञासु ने कहा — "नहीं बिल्कुल नहीं उगेगी, भला बीज बोए बिना भी कभी फसल उगती है ?"

राजेश ने कहा — "बस यही स्थिति धर्म की है । सम्यग्दर्शन धर्म का बीज है और बाह्य क्रियाये धर्म रूप खेत की निदाई-गुडाई, सफाई व सिंचाई करने के समान है ।

हम लोगो ने अब तक अपने-अपने धर्म के खेत को सब तरह से तैयार तो किया, पर उसमे सम्यग्दर्शन रूप धर्म का बीज नही बोया। इस कारण ही उसमे सम्यक् चारित्र रूप धर्म के फलो से भरपूर वीतरागता, समता एव सच्चा सुख-शान्ति देने वाली फसल नही लगी । हमने पुण्य-पाप के बीज ही बोए हैं, अत उसके फल मे ससार मे जन्म-मरण करने रूप आकुलता और दुख की घास ही घास उगती रही है ।

मै इसमे अपने पूर्वजो का दोष नही मानता, उन्होने तो हमे सही मार्गदर्शन ही दिया था, पर उसके समझने मे हम ही कही चूके है। देखिए कैसी-कैसी भूले हो जाती है हमसे ? जिनकी हम और आप कल्पना भी नही कर सकते ।

इस प्रसग मे मुझे अपनी भूल का अहसास कराने वाली एक कहानी याद आ रही है । यदि आपकी आज्ञा हो तो कहूँ ?

एक सज्जन ने कहा — "कहिए, अवश्य कहिए, यहाँ और इस समय नही कहेंगे तो कहाँ व कब कहेंगे ।

राजेशजी ने अपनी बात की पुष्टि में कहानी प्रारभ करते हुए कहा — "एक रोगी वैद्य के पास गया, वैद्यजी ने रोग का भली-भाति परीक्षण करके एक नुस्खा लिखा और बहुत ही जता-जताकर अच्छी तरह समझाया कि — इसे कूटकर, पीसकर कपडछन करके खाली पेट मिश्री की चासनी मे मिलाकर चाटना, भगवान, ने चाहा तो एक ही खुराक मे गारंटी से तुम्हारा रोग ठीक हो जायेगा । परसो आकर मुझे रिपोर्ट देना ।"

पर उस नुस्खे से उसे बिल्कुल भी आराम नही मिला । अत वह शिकायत की मुद्रा मे वैद्यजी के पास पहुँचा और व्यग मे बोला —

"क्या आपकी सब दवाये भगवान के भरोसे पर ही काम करती हैं ? आपके भगवान ने नहीं चाहा और मुझे एक रत्ती भर भी आराम नही मिला ।"

वैद्यजी को भारी आश्चर्य हुआ – "यह हुआ कैसे ? दवा तो रामबाण औषधि है, लाभ न हो – ऐसा तो हो नही सकता ? पर मरीज भी तो असत्य नहीं बोल रहा है ।"

सोचते-विचारते वे निराशा के स्वर मे बोले – "लाओ दिखाओ पर्चा देखे, नुस्का लिखने मे कहीं कोई भूल-चूक तो नही हुई ?"

रोगी बोला – "क्या ? पर्चा । कैसा पर्चा ?"

"अरे । वही पर्चा, जो मैने लिखकर दिया था" – वैद्यजी ने कहा।

"वह तो दवा थी न ? उसे ही तो मैने कूटकर, पीसकर, छानकर चासनी मे चाटा है ।"

वैद्यजी ने रोगी की नासमझी पर अपना माथा ठोक लिया ।

"लगता है धर्म का स्वरूप समझने मे यही स्थिति हमारी हुई है।"

राजू ने आगे अपने वक्तव्य मे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर जोर देते हुए कहा – "भला जिसे तीर्थंकर भगवान ने धर्म कहा हो; उसे कैसे नकारा जा सकता है ? आचार्यदेव ने सम्यग्दर्शन का स्वरूप समझाते हुए यह भी तो लिखा है कि – व्यवहार से सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का यथार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शन है । देव-शास्त्र-गुरु व आत्मा के श्रद्धान-पूर्वक इनका ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है तथा निज आत्मा मे रमना, जमना और उसी मे समा जाना सम्यक्चारित्र है । देखो । देव-गुरु-धर्म के श्रद्धान से सात-तत्व का श्रद्धान भी यथार्थ हो जाता है ।

जिस वीतरागी देव, निर्ग्रन्थ गुरु और स्याद्वाद वाणी का दर्शन-पूजन और अध्ययन-मनन हम करते हैं, उनका स्वरूप क्या है ? हमारे द्वारा किए जा रहे दर्शन-पूजन का प्रयोजन क्या है ? ये सब हम क्यों करते हैं? इनके सिवाय और भी जो-जो क्रियाये हम धर्म के नाम पर करते हैं, वे क्यो करते हैं ? उनके करने से हमे क्या लाभ है?

यदि हम इस दिशा में सोचेंगे-विचार करेंगे तो हमे स्वयं समझ में आ जायेगा कि — वस्तुत· धर्म क्या है और उससकी प्राप्ति कैसे होती है ?

अरे भाई । धर्म कोरी परम्पराओं के पालने या निर्वाह करने में नहीं है, वह तो स्व-परीक्षित साधना है । अत हमे परीक्षा प्रधानी बनना पडेगा। केवल परम्परागत बाह्य आचरण धर्म नहीं हो सकता; क्योंकि उसमें तो केवल राग की ही पूर्ति होती है, वीतरागता की प्राप्ति नहीं होती ।

अकेली धर्म की परिभाषाये याद कर लेने और उन्हें भले प्रकार अभिव्यक्त करने से भी धर्म प्रगट नही होता । परिभाषाओ की पुनरावृत्ति तो हमसे अच्छी टेपरिकार्डर कर लेता है तो क्या वह धर्मात्मा हो जायेगा ? अरे । जब वह आत्मा ही नहीं तो धर्मात्मा कैसे हो सकता है ? उन परिभाषाओ का भी प्रयोग करना होगा, उन्हे अपने जीवन का अभिन्न अग बनाना होगा — तभी वीतराग धर्म की प्राप्ति हो सकेगी ।

वस्तुतः धर्म तो अपना स्वभाव है । क्रोध-मान-माया-लोभ, राग-द्वेष-मोह, अज्ञान आदि आत्मा के स्वभाव के विपरीत भाव हैं, अतः ये धर्म नहीं, बल्कि अधर्म है । त्यागने योग्य जानकर इनका हेयरूप श्रद्धान करना तथा वीतरागता, सर्वज्ञता, समता, शान्ति, निराकुलता, दर्शन-ज्ञान-चारित्र आत्मा के स्वभाव हैं; अतः ये सब आत्मा के धर्म हैं । इन्हें उपादेय रूप जानकर दोनों का यथार्थ श्रद्धान करना ही सम्यग्दर्शन है और यही वास्तविक धर्म है । ऐसे आत्मधर्म की प्राप्ति हम सबको शीघ्र हो, ऐसी शुभकामना के साथ मै अपने वक्तव्य से विराम लेता हूँ ।"

राजू के इस मार्मिक वक्तव्य को सुनकर लोगो ने दाँतों तले उंगली दबा ली ।

एक ने कहा — "अरे । वाह भाई वाह ।। यह वही राजू है जो एक दिन सजू के साथ रहकर आवारा बन गया था । धन्य है

भाई तुझे और तेरे उन माता-पिता को, जिन्होने अपना पुत्रमोह छोडकर पाँच वर्ष के लिए सिद्धान्त महाविद्यालय मे भेजकर और ऐसा पढ़ा-लिखा कर तुझे इस योग्य बना दिया ।"

राजेश के वक्तव्य पर श्रोताओं की सामूहिक प्रतिक्रिया देखकर प्रो ज्ञान ने सबको धन्यवाद देते हुए मि सजय जैन को आमत्रित किया और उसका परिचय कराते हुए कहा – 'यह वही सजय जैन है, जिन्हें आप लोग संजू नाम से जानते-पहचानते रहे हैं । इन्होंने अनेक प्रतिकूलताओ के बाद भी जो पुरुषार्थ किया है, वह आप स्वय इनके ही श्रीमुख से सुनकर देखेगे – आइये मि सजय ।"

संजू ने सभी को सम्बोधित करते हुए कहा – "लोक मे धर्म की भिन्न-भिन्न परिभाषाये और मान्यताये प्रचलित हैं, जिनमे अधिकांश कपोलकल्पित हैं, जिनसे भोले जीव भ्रमित हो रहे हैं । धर्म के सही स्वरूप से अनभिज्ञ कुछ लोग धर्म के स्वरूप को अपने-अपने तरीके से इस तरह परिभाषित करते आ रहे हैं, पालते आ रहे हैं, जो वास्तविकता से परे हैं ।

कोई तो अपनी अत्यन्त पुरानी परम्पराओ से चिपके हैं, ऐसे लोग कुलाचार को ही धर्म माने बैठे हैं, और कोई अत्याधुनिक बनकर सम्पूर्ण परम्पराओ को भूलकर खाओ-पियो और मोज करो, धर्म सब ढोग है, आडम्बर है, – ऐसी धारणा बनाकर धर्म को तिलाजलि दे बैठे हैं । पर वे सभी भूल मे है । मेरी भी कुछ समय पूर्व तक यही स्थिति थी, पर मेरा सद्‌भाग्य ही समझो कि मुझे किसी तरह सन्मार्ग मिल गया है । एतदर्थ मैं अपने मित्रो को जितना भी धन्यवाद दूँ, उनका कितना भी उपकार क्यो न मानूँ, कम ही होगा ।"

बधुओ । धर्म की प्राप्ति न तो केवल धर्म की परिभाषाओं को याद कर लेने से ही होती है और न कोरी परम्पराओं के पालने से ही धर्म की प्राप्ति सभव है ।

पण्डित सदासुखदासजी ने रत्नकरण्डश्रावकाचार में लिखा है कि — "भगवान अरहंतदेव के मुखारबिन्द से प्रगट हुआ क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि दसधर्म आत्मा का स्वभाव है, पर वस्तु नहीं है । क्रोधादि कर्मजनित उपाधि दूर होने पर आत्मा का वह स्वभाव स्वयमेव प्रगट होता है।

धर्म को कोई छीन नहीं सकता, चुरा नहीं सकता, बिगाड नही सकता ? इसे धन के द्वारा खरीदा नहीं जा सकता । यह तीर्थ, मन्दिरों, नदी, पर्वतों में धरा नहीं है, जो वहाँ जाकर लाया जा सके । यह तो आत्मा का निज स्वभाव है । इसकी प्राप्ति तो आत्म स्वभाव के सम्यक्ज्ञान व सत्य श्रद्धान से होती है ।

तथा यह इतना सुगम है कि बालक, वृद्ध-युवा, धनवान-निर्धन, बलवान-निर्बल, रोगी-निरोगी, अनाथ-असहाय-सभी को स्वाधीनता से सहज ही प्राप्त हो सकता है ।

धर्म के धारण करने में कुछ खेद, क्लेश, अपमान, भय, विषाद, कलह आदि किसी प्रकार का कोई बोझ नहीं लगता, भाग-दौड भी नही करनी पडती । धर्म अत्यन्त सुगम समस्त क्लेश-दु ख रहित स्वाधीन आत्मा का ही सत्य परिणाम है । तथा अनन्त दर्शन-ज्ञान-चारित्र व सुख इसका फल है ।

इस धर्म और धर्म के फल की प्राप्ति हम सबको हो — यही मेरी भावना है । मै सकल्प करता हूँ कि — मेरा तन-मन-धन इसी की सेवा मे सदा समर्पित रहेगा ।"

अन्त मे डॉ धर्मचन्द जैन ने अपने अध्यक्षीय भाषण मे कहा — "भाई । घर-द्वार और कुटुम्ब-परिवार के राग की आग मे तो सभी जलते-मरते हैं, अपने बाल-बच्चों की चिन्ता कौन नहीं करता ? चिडिया जैसे साधन विहीन प्राणी भी अपने बच्चो को घोसला बनाते है और उन्हें पालते-पोसते हैं, उन्हें चुग्गा ला-लाकर चुगाते हैं, अत· अपने कुटुम्ब-परिवार के भरण-पोषण में ही सारा जीवन बिता देना कोई बुद्धिमानी की बात नहीं है ।

बुद्धिमानी की बात तो यह है कि कुटुम्ब-परिवार की जिम्मेदारी का निर्वाह करते हुए हम धर्म और समाज की सेवा मे समर्पित रहें।

इस मौके पर सबसे पहले मै विज्ञान के स्व दादाजी को धन्यवाद देना चाहता हूँ, जिनके द्वारा बाल्यकाल मे सस्कार पाकर विज्ञान ने अपने मानव जीवन को तो सफल और सार्थक कर ही लिया, युवा-वर्ग के मार्गदर्शक भी बने । कदाचित् उनके द्वारा वे पौराणिक कथाये सुना-सुनाकर विज्ञान को धार्मिक सस्कार न दिये गये होते तो आज हम धर्म के प्रचार-प्रसार के क्षेत्र मे जो यह चमत्कार देख रहे हैं, देखने को नहीं मिलता ।

मै इस अवसर पर अपने स्व पूज्य पिताजी को स्मरण किए बिना भी नहीं रह सकता, क्योंकि उन्होंने न केवल कहकर बल्कि धार्मिक जीवन जीकर भी मुझे जीवनभर प्रत्यक्ष व परोक्ष प्रेरणा दी एवं सन्मार्ग दिखाया।

यद्यपि कार्य की व्यस्तता के कारण मै उनके द्वारा सग्रहीत सत्साहित्य एव धार्मिक पत्र-पत्रिकाओ का उनके जीवनकाल मे अधिक उपयोग नहीं कर पाया, कल पर ही टालता रहा । और जब तक वह कल आने का समय आया, मै अपने पारिवारिक उत्तरदायित्वो से निवृत्त हुआ तब तक वे दिवगत हो गये, महाप्रयाण कर गये । इसका मुझे अफसोस है । पर होनी को कौन टाल सकता है ।

वे मुझे अपने जीवन काल में तो प्रेरणा देते ही रहे, मरणोपरान्त आज भी स्वप्नो मे आ-आकर सावधान करते हैं । मैं उनके जीते-जी तो अधिक कुछ नहीं कर पाया, पर उनके अभाव में मैंने अपने जीवन को भी उनकी भावना के अनुरूप बनाने का प्रयत्न किया है और अपने बेटे राजू को भी उनकी भावना के अनुरूप विद्वान बनाने में सफल हो गया हूँ — इसका मुझे विशेष हर्ष है ।

वे जहाँ भी होंगे, राजू को एक युवा विद्वान के रूप में देखकर अवश्य प्रसन्न और संतुष्ट होंगे ।

मुझे उनके द्वारा मगाई जा रही आध्यात्मिक मासिक पत्रिका की विज्ञप्ति से ही राजू को उस महाविद्यालय मे प्रवेश दिलाने की जानकारी मिली थी, जिस कारण राजू आज इस योग्य बन सका है ।

उन्होने हमे धन-सम्पत्ति तो दी ही, धर्म के सस्कार भी दिये, अत हम उनका जितना भी उपकार माने कम है । वे सर्वोच्च न्यायालय के सर्वोच्च पद पर पदासीन होकर भी धार्मिक भावनाओ से ओत-प्रोत थे । इससे स्पष्ट है कि लौकिक शिक्षा व सर्वोच्च पदो से धर्म का कोई विरोध नहीं है । और न धर्म मात्र अनपढ़ो के दकियानूसी विचारो का नाम ही है । धर्म तो एक वैज्ञानिक व्याख्या है, प्राकृतिक वस्तु व्यवस्था है ।

मै इस अवसर पर प्रोफेसर ज्ञान के पिताश्री को भी धन्यवाद देना चाहूँगा, क्योकि उन्होने भी हमे प्रो ज्ञान जैसा कठोर परिश्रमी, ईमानदार, सज्जन और सस्कारी सपूत दिया है । प्रो ज्ञान लौकिक शिक्षा के तो गुरु है ही, धार्मिक मार्ग दर्शन देकर धर्म के क्षेत्र मे भी वे गुरु बन गये है । और तो ठीक, पर विज्ञान जैसे मित्र को सन्मार्ग पर लाने वाला यदि कोई है तो वह प्रो ज्ञान ही हैं ।

प्रो ज्ञान के पिताश्री भी एक आदर्श अध्यापक और सच्चे धर्मात्मा पुरुष थे । उनका आदर्श जीवन हम सबके लिए अनुकरणीय है । वे मेरे भी प्रारंभिक शिक्षा गुरु रहे थे, मै उन्हें परोक्ष प्रमाण करता हूँ।

मि सुदर्शन के सहयोग की तो कोई होड ही नही है । उनकी दैनिकचर्या अपने लिए अद्वितीय और अनुकरणीय है । इतने बडे एडवोकेट होने पर भी अपने व्यस्त जीवन मे से समय निकालकर धर्म और समाज के लिए सदा समर्मित रहते है, एतदर्थ मै आप सबको धन्यवाद देता हूँ और सबके दीर्घ जीवन की मगल कामना करता हूँ ।"

उपस्थित जन-समुदाय को सम्बोधित करते हुए डॉ धर्मचन्द ने कहा—

"मैं इस समय अधिक कुछ न कहकर आप सबसे भी यही अपील करना चाहता हूँ कि आप लोग भी इस सगठन द्वारा आयोजित कार्यक्रमो

मे सक्रिय भाग लेकर सदैव लाभ लेते रहें, क्योंकि जीवन मे केवल यही एकमात्र करने योग्य कार्य हैं ।

मेरा संगठन और सगठन के सभी कार्यकर्ताओ के लिए यही मंगल आशीर्वाद है कि आप सब प्रगति के पथ पर आगे बढ़ते हुए आत्मोन्नति के चरम लक्ष्य को प्राप्त करें ।

मै अपनी ओर से अपने पूज्य पिताजी की पुण्य स्मृति मे आपके इस संगठन को ध्रुवपण्ड मे एक लाख एक सौ एक रुपये देने की सहर्ष घोषणा करता हूँ तथा आपको वचन देता हूँ कि आगामी पाँच वर्ष तक आप जितने भी धार्मिक शिक्षण के विशेष आयोजन कर सकें, करें, उनका सम्पूर्ण खर्च मै वहन करूँगा । मै अपने पूज्य पिताजी द्वारा प्राप्त सारी सम्पत्ति का सदुपयोग तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार मे ही करना चाहता हूँ।

सजू ने भी अपने पिता स्व सेठ सिद्धोमल की पुण्य स्मृति मे एक लाख एक सौ एक रुपया देने की घोषणा की । सभा मे उपस्थित अन्य धर्मप्रेमी बन्धुओ ने भी सगठन को अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार दिल खोलकर दान दिया ।

सम्पूर्ण सभा ने सजू के सघर्षशील जीवन तथा धार्मिक भावनाओं का और डॉ धर्मचन्द की पवित्र भावनाओ और उदार सहयोग का करतल ध्वनि से स्वागत किया ।

अन्त मे सुदर्शन ने सगठन की ओर से सब सहयोगियो के प्रति आभार व्यक्त करके धन्यवाद देते हुए सर्वप्रथम उपवन में विराजमान साधु संघ को परोक्ष रूप से साधुवाद दिया और कहा कि – "हमारे सौभाग्य से इस वर्ष हमें आचार्य सघ के चातुर्मास से जो प्रवचन सुनने का अपूर्व और अद्भुत लाभ मिला, उसे व्यक्त करने के लिए हमारे पास ऐसे शब्द ही नहीं हैं, जिनके द्वारा हम उनके प्रति अपने हृदय के भक्तिभावो को व्यक्त कर सकें। उनके प्रति हमारा शत्-शत् नमन है ।

डॉ धर्मचन्द, प्रो ज्ञान, उद्योगपति विज्ञान, प्रिय मित्र संजू, राजू, श्रीमती विद्या, सरला, सुनीता एव सभी सदस्यो एव सहधर्मी सज्जनो ने हमारे संगठन को मजबूत बनाने और कार्यक्रमों को सफल बनाने मे जो प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से सहयोग दिया है, उसके लिए मै सगठन की ओर से उन सबका आभार मानता हूँ और धन्यवाद देता हूँ । तथा आशा और अपेक्षा करता हूँ कि आप सबका इसीप्रकार का स्नेह व सहयोग बना रहेगा । जयजिनेनद्र । •

यह एक सर्वमान्य सत्य है कि युवकों में जोश और प्रौढ़ो में होश की प्रधानता होती है । युवकों में जितना जोश होता है, कुछ कर गुजरने की तमन्ना होती है, उतना अनुभव नही होता । इसीप्रकार प्रौढ़ो में जितना अनुभव होता है, उतना जोश नहीं ।

कोई भी कार्य सही और सफलता के साथ सम्पन्न करने के लिए जोश और होश — दोनों की ही आवश्यकता होती है। अत देश व समाज को दोनों की ही आवश्यकता है । ये दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं, विरोधी नहीं ।

— 'जोश एवं होश' नामक निबन्ध से

अभिमत

पत्र-पत्रिकाओं एवं समीक्षकों की दृष्टि में प्रस्तुत प्रकाशन

- **अत्यन्त उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण कृति :**

पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल द्वारा लिखित 'संस्कार' को आद्योपांत पढकर चित्त प्रफुल्लित हो गया। इस पुस्तक मे ज्ञान, विज्ञान और सुदर्शन के सशक्त कथानकों द्वारा सस्कार रूप गागर में सागर भरने का सफल प्रयत्न किया गया है। बालको के जीवन पर सुसस्कारो और कुसस्कारो का क्या प्रभाव पडता है, इसे ज्ञान और विज्ञान के माध्यम से आसानी से समझा जा सकता है। आधुनिक शिक्षा सस्थानो का जीता-जागता चित्रण, अस्पतालो मे डॉक्टरो द्वारा मरीजो की उपेक्षा, परिवार नियोजन की आवश्यकता, दहेज की वास्तविकता, अभक्ष्य पदार्थों का वास्तविक रूप, बालको के प्रति माता-पिता की उपेक्षा का परिणाम, कुसगति का फल आदि अनेक महत्त्वपूर्ण बातो का सजीव चित्रण इस पुस्तक मे उपलब्ध है।

विज्ञान, राजू, सजू, विद्या, सरला और सुनीता के जीवन मे हुए नैतिक और धार्मिक परिवर्तन से न केवल उनका कल्याण हुआ है, किन्तु इससे समाज का भला हुआ है। पुस्तक के अन्त मे धर्म के यथार्थ स्वरूप को समझाया गया है, जिसके पालन करने से इस लोक के साथ हमारा परलोक भी सुधर सकता है।

पुस्तक की भाषा सरल और शैली मनोहारी है जिससे पुस्तक पढने मे आनन्द का अनुभव होता है। यह पुस्तक बालक, युवक, प्रौढ, वृद्ध आदि सभी के लिए अत्यन्त उपयोगी है। जो भी इसे एक बार पढ लेगा, उसे बार-बार पढने की इच्छा होगी तथा उसके जीवन मे कुछ न कुछ सुधार अवश्य होगा। वर्तमान मे ऐसी ही पुस्तको की आवश्यकता है।

ऐसी अत्यन्त उपयोगी कृति के लिए लेखक बधाई का पात्र है।

- **प्रो. उदयचन्द जैन**, सर्वदर्शनाचार्य

सेवानिवृत्त आचार्य, हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ.प्र)

• अक्षरशः पठनीय :

मानवमात्र उत्तम सस्कारो का धनी हो - इसी प्रशस्त भावना से प्रेरित होकर विद्वान साहित्यकार पण्डित श्री रतनचन्दजी भारिल्ल ने इस 'सस्कार' उपन्यास की रचना की है, जो सभी श्रेणियो के पाठको को अक्षरशः पठनीय है।

इसका सशक्त कथानक सदाचार प्रेरक है। इसमे सिद्धहस्त लेखक ने प्रबल युक्तियाँ दे-देकर सदाचार के सत्फल और दुराचार के दुष्फल पर विशद प्रकाश डाला है और कठिन से कठिन सैद्धान्तिक एव दार्शनिक विषयो को सरल रीति से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है। बीच-बीच मे ग्रथान्तरों से प्रसगोचित शिक्षाप्रद विषय-वस्तु देने से ग्रथ की रोचकता और भी अधिक बढ गयी है।

ऐसे उत्तम पुरस्कारार्ह प्रकाशन के लिए लेखक और प्रकाशक दोनो ही बधाई के पात्र हैं। वर्तमान मे कु-सस्कारो के प्रभाव से उत्पन्न चिन्तनीय स्थिति को यदि बदलना है तो भारिल्लजी के प्रस्तुन ग्रथ 'सस्कार' को अवश्य पढना चाहिए।

- **पण्डित अमृतलाल शास्त्री**, साहित्याचार्य, प्रो ब्राह्मी विद्यापीठ, लाडनू

सन्मति संदेश (मासिक) दिल्ली (मार्च-अप्रैल 1991)

• संस्कार जैसे कथा साहित्य का महती आवश्यकता

सदाचार और आनन्दमय जीवन बनाने की प्रेरणा देने वाला यह स्वतत्र मौलिक कथानक "सस्कार" दिग्भ्रमित सतप्त प्राणी को दिशाबोध देने मे पूर्ण सक्षम सिद्ध होगा। आज के इस भौतिक युग मे बच्चो मे सुसस्कार डालने के इस 'सस्कार' जैसे कथा साहित्य की महती आवश्यकता है, जो जीवन उत्कर्ष की प्रेरणा देता है। उक्त प्रकाशन एक सशक्त उपन्यास है, जो भूले-भटके युवको को सन्मार्ग दिखाता है।

आप इस कथानक को पढिये, यह घोर अधकार मे प्रज्वलित दीपक का काम देगा। - **पण्डित प्रकाशचन्द हितैषी**, सम्पादक

• समन्वय वाणी (पाक्षिक), जयपुर :

पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल की यह कृति 'सस्कार' यथा नाम तथा गुण सम्पन्न है। वर्तमान पीढ़ी सस्कार-विहीन होने से दिशाहीन होकर दिग्भ्रमित हो रही है। कथानक शैली मे लिखी गई यह पुस्तक उन्हें निश्चित ही मील का पत्थर साबित होगी। पुस्तक का कलेवर आकर्षक है। - **अखिल बंसल**, एम ए , सम्पादक

• जिनागम में अभिनव साहित्य प्रयोग :

पण्डित रतनचन्द भारिल्ल द्वारा रचित 'सस्कार' कृति एक कथात्मक अभिनव प्रयोग है, जो साहित्य धरातल पर एक नैतिक शिक्षाप्रद एव आध्यात्मिक प्रेरणा देने वाली है। इसकी यह विशेषता है कि यह केवल समस्याये ही चित्रित नही करती, वरन् सतोषजनक समाधान भी प्रतिबिम्बित करती है।

जिनागम मे यह अभिनव साहित्य प्रयोग सराहनीय है, अभिनन्दनीय है।

- **डॉ. देवेन्द्रकुमार जैन शास्त्री**, प्रो शा महाविद्यालय, नीमच (म प्र)

• मननीय और सग्रहणीय भी

'सस्कार' नामक ग्रथ पढा, इसमे वीतरागी जैन तत्त्वज्ञान को कथानक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। भाषा सरल और सशक्त है। कथानक मे आधुनिक सदर्भो के न केवल मर्मस्पर्शी चित्रण हैं, अपितु उनके समाधानो को भी प्रभावक ढग से प्रस्तुत किया है।

सदाचार प्रेरक प्रसगो से ओत-प्रोत यह ग्रथ न केवल पठनीय है, अपितु मननीय और सग्रहणीय भी है।

- **डॉ. सुदर्शनलाल जैन**, रीडर, बी एच यू , वाराणसी (उ प्र)

• सुन्दर कृति के लिए बधाई ·

पण्डित रतनचन्द भारिल्ल द्वारा लिखित 'सस्कार' पुस्तक वास्तव मे बहुत अच्छी लिखी गई है। पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल प्रभावी लेखक और प्रौढ विद्वान हैं। इस सुन्दर कृति के लिए बधाई।

- **पण्डित राजकुमार शास्त्री**, सम्पादक - अहिंसावाणी, निवाई

• सदिच्छा और सन्मार्ग का प्रवर्तक :

'सस्कार' नामक कृति को पढने का सुयोग मिला। इसमें कहानी, उपन्यास और निबन्धो जैसा संकर आस्वाद मिलता है।

अपने नामानुरूप 'सस्कार' मे सत् सस्कारो को जगाने की शाब्दिक प्रेरणा व्यजित है। सस्कार के स्वाध्याय मे जो रस आता है, वह सदिच्छा और सन्मार्ग का प्रवर्तन करता है।

आज के विषैले वातावरण मे इसका वाचन पाठक को सुथरे और सुघड मनोभावों का आमंत्रण देगा।

हिन्दी के नवोदित पाठको को 'सस्कार' पढने की मै सस्तुति करता हूँ। इतने उपयोगी लेखन के लिए अनेकश: साधुवाद।

- **डॉ. महेन्द्रसागर प्रचण्डिया**, अलीगढ (उ प्र)

• श्रेष्ठ औपन्यासिक कथावृत्त :

पण्डित रतनचन्द भारिल्ल अब तक जैनदर्शन के अध्यात्म के अधिकारी प्रवक्ता के रूप मे प्रतिष्ठित थे, किन्तु इस श्रेष्ठ औपन्यासिक कथावृत्त के माध्यम से वे अब एक सक्षम कथाकार के रूप मे भी प्रतिष्ठित होगे।

'सस्कार' नामक इस कथा वृत्त मे ज्ञान और विज्ञान नामक दो प्रतीकात्मक पात्रो के माध्यम से सस्कार बनाम आधुनिकता के द्वन्द को सुन्दर रीति से प्रदर्शित किया गया है।

आज की नई पीढी को दर्शन व समाज के उपयोगी सस्कारो का महत्व बोध करने मे यह कथानक अपनी सार्थक भूमिका निभायेगा। लेखक को उनकी श्रेष्ठ रचना के लिए बहुश: साधुवाद।

- **डॉ दामोदर शास्त्री**, प्रो केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली

• सदाचार के प्रेरक प्रसगों से अनुस्यूत :

लौकिक कथ्यो और पात्रो-चरित्रो के हेय-उपादेय के चित्रण के माध्यम से धार्मिक सस्कारो के बीजवपन का कार्य करती है प्रस्तुत कृति 'सस्कार'।

पण्डितप्रवर रतनचन्दजी भारिल्ल की यह कृति जैनदर्शन के सिद्धान्तो और सदाचार के प्रेरक प्रसगो से अनुस्यूत है, अनुप्राणित है।

- **डॉ. आदित्य प्रचण्डिया**, प्राध्यापक, वि. वि , आगरा (उ प्र)

• जनोपयोगी व चित्ताकर्षक सत्साहित्य :

'सस्कार' कथानक के माध्यम से लेखक ने वर्तमान लोक प्रवृत्ति के अनुरूप सामाजिक समस्याओ का चयन करके जो सटीक समाधान प्रस्तुत किए हैं, पाठक उन्हे अपनी ही समस्याओं के रूप मे देखता हुआ उनसे जुडा रहकर कथानक को आद्योपान्त पढने के लिए मजबूर हो जाता है, क्योकि उसे व्यक्तिगत जीवन से जुडी हुई परेशानियो और उनका निराकरण भी इसमे प्राप्त होता जाता है।

पात्रो का चयन और उनके कथोपकथन (सवाद) कथानक को गति देने वाले एव प्रेरक हैं। फलत. फलागम की प्राप्ति चर्मोत्कर्ष के पश्चात् पाठक को सुखद एव समाधान की स्थिति मे होती है।

इतने अल्प मूल्य मे ऐसे जनोपयोगी व चित्ताकर्षक सत्साहित्य के लेखक व प्रकाशक के लिए साधुवाद।

- **डॉ विद्यानन्द जैन**, एस एस एल जैन मा विद्यालय, विदिशा (म प्र)

• कृति बड़ी ही रोचक व शिक्षाप्रद ·

'सस्कार' कथानक बडा ही रोचक व शिक्षाप्रद है तथा सरल भाषाशैली में लिखा गया है। ऐसे जनोपयोगी साहित्य के प्रचार-प्रसार की महती आवश्यकता है। लेखक को बधाई।

- **डॉ राजाराम जैन**, प्रोफेसर - शा महाविद्यालय, आरा (बिहार)

• पंचतंत्र की तरह सरल व सुगम कृति :

मेरी कामना है कि पचतत्र और हितोपदेश की तरह आपका यह 'सस्कार' कथानक भी समकालीन सामाजिक जीवन मे घुल-मिल जाये और वह प्रभाव पैदा करे जो कि आज अपेक्षित है।

जहाँ तक आपकी शैली का प्रश्न है, वह काफी सरल व सुगम है, उसमे प्रवचन व उपदेश का प्राधान्य है। आप जैसे धार्मिक क्षेत्र मे काम करने वाले विद्वानों से यही सहज अपेक्षित है। यद्यपि समकालीन समाज के चित्रपट पर चीकट के असख्य दाग पडे हुए है, फिर भी आपके द्वारा प्रस्तुत इन नैतिक मूल्यो का समाज पर कुछ न कुछ दबाव या प्रभाव तो पडेगा ही। आप अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर रहे, यही मगल कामना है।

- **डॉ. विजयबहादुर सिंह**, आचार्य, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, विदिशा

• उपन्यास विधा के निकट .

पण्डित रतनचन्द भारिल्ल द्वारा लिखित 'सस्कार' हिन्दी साहित्य की उपन्यास विधा के निकट है। धर्म की धरा पर समाज की सलोनी कॉलोनी बसाने का यह सीधा-सच्चा प्रयास है।

मुशी प्रेमचन्द के आदर्शोन्मुख यथार्थवाद को झलकाती कथावस्तु का ताना-बाना घटनाक्रम और पात्रो से बखूबी बुना गया है। पात्र-परिस्थितियों से नियत्रित होते है। परिस्थितियाँ जहाँ जैसी बनी है, वहाँ चरित्र भी तदनुरूप अच्छा हो गया है।

भाषा सरल है, शैली और प्रस्तुति लोकप्रिय है। इस पठनीय और प्रशसनीय रचना के लिए लेखक अभिनन्दन के पात्र है।

- **गोपीचन्दजी "अमर"**, शोध अधिकारी, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली

• 'संस्कार' कथा साहित्य मुझे बहुत अच्छा लगा .

सरल स्वभावी, जिनवाणी रसिक पण्डित श्री रतनचन्द भारिल्ल की साहित्यिक कृति को मै जैनपथप्रदर्शक मे किस्तो मे पढता था, तभी से मैं इस कृति से प्रभावित था। पुस्तक रूप मे आते ही समाज ने इसे जिस त्वरित गति से अपनाया, इसकी मुझे भी कल्पना नही थी।

महावीर जयन्ती के निमित्त मैं इन्दौर गया था। सस्कार के सम्बन्ध मे वहाँ के एक पाठक का अभिप्राय जानकर मै अत्यधिक प्रभावित हुआ। उसने बडे ही उत्साह से कहा -

'संस्कार' कथा साहित्य मुझे बहुत अच्छा लगा। उसे पढकर मैंने अपने पुत्र को जयपुर मे पढाने का निर्णय लिया है।

मै अपने पुत्र को धन तो कितना दे पाऊँगा, कह नही सकता, पर अब मै उसे सु-सस्कार का धन अवश्य ही भरपूर दूँगा। सु-सस्कारो से उसका जीवन तो सुधरेगा ही, मेरा मरण भी सुधर जायेगा। मै अपना शेष जीवन सुख-शान्ति से बिता सकूँगा।''

इस कारण मेरा हार्दिक अनुरोध है कि युवा-वर्ग और बालक तो इसे पढे ही, उनके पालक भी यह पुस्तक अवश्य पढे।

मराठी तथा कन्नड भाषा-भाषियो को भी 'सस्कार' कृति का लाभ यथा शीघ्र मिले, यह मेरी हार्दिक भावना है, इस दिशा मे मै वैसे प्रयास मे हूँ।

साथ ही इस कृति के बाचने से पाठको को उपन्यास रस की अनुभूति होती है, यह अत्युक्ति नही है।

- **ब्रह्मचारी यशपाल जैन**, एम ए , जयपुर (राज)

• उपन्यास सरस, रोचक एव पठनीय :

'सस्कार' हिन्दी साहित्य की उपन्यास विधा की श्रेष्ठं कृति है। उपन्यास की विषयवस्तु सुसस्कार एव कुसस्कार के व्यक्तिगत एव सामाजिक प्रभावो को दर्शाकर सस्कारो का महत्व दर्शाना है, जिसमे लेखक सफल सिद्ध हुआ है।

उपन्यास सरल, रोचक एव पठनीय है। भाषा सहज एव विचारोत्तेजक है। अध्यात्म नीति तथा आदर्श वाक्यो का भी सफल प्रयोग हुआ है, जो पाठक को विचार चिन्तन हेतु प्रेरित करता है।

मुझे विश्वास है कि न केवल अभिभावक, किन्तु युवा-वर्ग भी इसके सार को हृदयगम कर जीवन को सुसस्कारित करेंगे।

लेखक इस अभिनव प्रयोग के लिए बधाई का पात्र है।

- **डॉ. राजेन्द्रकुमार बंसल**, ओरियंट पेपर मिल्स, अमलाई (म प्र)

• अत्यन्त प्रभावपूर्ण ग्रंथ :

सस्कार ग्रंथ आद्योपान्त पढा, अत्यन्त प्रसन्नता हुई। बहुत दिनो से अन्तर्भावना थी कि वर्तमान पीढी को बालकों एव युवको के लिए नैतिक उत्थान की दृष्टि से कोई उपयोगी सत् साहित्य प्रकाशित हो तथा माता-पिता को भी बालको में संस्कार डालने की दृष्टि मिले।

मुझे हार्दिक प्रसन्नता है कि आपके इस ग्रथ से यह रास्ता खुल गया है। वृद्ध, युवा और बालक सभी के लिये यह ग्रथ सुनिश्चित उपयोगी मार्गदर्शक हो गया है। इस ग्रथ मे जिस सरलतम और रुचिकर आकर्षक पद्धति से महत्त्वपूर्ण विषय का सर्वांग सुन्दर विन्यास हुआ है, वह अत्यन्त प्रभावपूर्ण है। जैसी इच्छा थी वैसी ही यह रचना सस्कारक्षम, प्रभावक बनी है। अनायास भावनाओ की पूर्ति हुई।

अब भावना यह है कि इस ग्रथ का मराठी, गुजराती, कन्नड आदि भाषाओ मे ऐसा ही अच्छा अनुवाद हो और इसके द्वारा समाज मे सस्कारो की वृद्धि हो।

इस महत्त्वपूर्ण कलापूर्ण रचना के लिए आपको अनेकशः हार्दिक धन्यवाद। - **ब्र गजाबैन,** बाहुबली-कुम्भोज (महाराष्ट्र)

चैतन्यसुख (मासिक), उदयपुर

• सदाचार प्रेरक सशक्त कथानक :

'सस्कार' सदाचार प्रेरक सशक्त कथानक है। इसकी कथावस्तु पापाचार एवं कुसस्कारो को झकझोरने वाली है। मुझे विश्वास है कि इस कृति मे प्रदत्त सस्कारो से पाठक अवश्य सस्कारित होगा और अपने जैनत्व की जड़ों में अमृत सिचन करेगा।

लेखक के सादे जीवन और उच्च विचारो ने उनकी रचनाओ मे अमिट छाप छोडी है। - **मांगीलाल जैन,** एम ए , बी एड , सम्पादक

• **अत्यन्त सराहनीय**

'सस्कार' पुस्तक को पढा, पुस्तक अत्यन्त सुन्दर एव सराहनीय है। जिन अध्यायों मे ज्ञान, विज्ञान एव मुनिराजों के भाषणों व उपदेशो के रूप मे लेखक ने अपना चिन्तन प्रस्तुत किया है, वह अत्यन्त प्रभावक और शिक्षाप्रद है। आशा है आपकी भविष्य मे भी ऐसी ही महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित होती रहेगी।

- **सेठ अभिनन्दनप्रसाद जैन**, सहारनपुर (उत्तरप्रदेश)

• **हार्दिक अभिनन्दन :**

'सस्कार' मानव मात्र को सस्कारित करने में एक सफल उपन्यास है। स्वतत्र मौलिक कथानक के आश्रय से जैनत्व के आदर्शो का सयोजन रचनाकार का वैशिष्ट्य प्रगट करती है। सम-सामयिक समस्याओ के चित्रण एव तत्समाधान मे सस्कार कृति सावचेत है।

इस अभिनव मौलिक रचना के लेखन के लिए विद्वान लेखक का हार्दिक अभिनन्दन।

- **डॉ प्रेमचन्द रांवका**, आचार्य, महाविद्यालय, मनोहरपुर (राज)

• **पढ़ने में आनन्द आता है :**

प्रस्तुत पुस्तक मे ज्ञान, विज्ञान, सुदर्शन और राजू जैसे अनेक पात्रो के विचित्र चरित्रो द्वारा जो युवा-पीढी को मार्गदर्शन दिया है, वह देखते ही बनता है।

माता-पिता की लापरवाही या आवश्यकता से अधिक सावधानी कभी-कभी क्या गुल खिलाती है, यह सदेश हमें सेठ सिद्धोमल और डॉ धर्मचन्द के चरित्रो में देखने को मिलता है।

उपन्यास की भाषा सरल व शैली रोचक है। तत्त्वज्ञान व सदाचार की शिक्षा भी मिलती है और पढने में आनन्द भी आता है।

- **पूनमचन्दजी छाबड़ा**, मत्री, प टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

• समष्टि रूप में पुस्तक पठनीय :

सामाजिक समस्याओ के विश्लेषण मे तत्पर और उसके तात्त्विक समाधान मे प्रशस्त पटुता का परिचय देती आलोच्य कृति 'सस्कार' का यह एक भागीरथी प्रयास हिन्दी जैन साहित्य की उपन्यास विधा मे रत्नजडित रहेगा।

इसमे मानवीय व्यवहार जैसा नर-नारी का पारस्परिक सहज आकर्षण, तदुत्पन्न स्नेह, किशोरावस्था की दहलीज का कम्पन व उससे प्रभावित परिवार, समाज व देश, संगति का जीव पर प्रभाव, दहेज प्रथा, नारी का सौन्दर्य प्रसाधन, उनकी प्रसन्नता, विवाहित जीवन, नेतृत्व की वुभुक्षा मे बढता आधुनिक परिवेश और उनसे पददलित शैक्षणिक सस्थाए, भारतीय सस्कृति के परिप्रेक्ष्य और उसके बदलते रूप मे शिक्षक, न्यायविद, चिकित्सक व व्यापारीगण आदि परिदृश्यो को जितने स्वच्छ, स्पष्ट, तर्कसगत व निश्छल रूप से लेखक की लेखनी ने निहारा है, और उसे सस्कारित करने का प्रयास किया है, वह श्लाघनीय है।

समष्टिरूप मे पुस्तक पठनीय व मननीय है। विशेष रूप से जिनको जैन तत्त्वज्ञान सस्कृति व सभ्यता पर गर्व है, उनके गर्व का विषय प्रस्तुत कृति बन सकती है, ऐसा मै मानता हूँ।

- **डॉ योगेशचन्द जैन,** एम ए , पीएच डी , अलीगंज (उ प्र)

धन्यवाद

द्वितीय सस्करण प्रकाशित होने के बाद भी पाठको के प्रशसात्मक पत्र तो और भी बहुत आये हैं, यदा-कदा अब भी आते रहते है, परन्तु स्थानाभाव के कारण उन सबको प्रकाशित करना सभव नही है, एतदर्थ क्षमाप्रार्थी है।

जिन पाठको एव समीक्षको ने अपने अभिमत प्रेषित कर एव पत्र लिखकर लेखक एव प्रकाशक सस्था को प्रोत्साहित किया है, उन्हे पुनः-पुनः धन्यवाद। - **प्रकाशक**